तत्रपदस्य ग्रहपरत्वेऽधिकरणत्वायोगात् । निमित्तपरत्वे च तद्ग्रहनिमित्तकस्नानादेरस्तात् प्रागप्यभावापत्तेः ॥ अथ तत्रेति रात्रिदिने उच्येते-'सा वैश्वदेवी ' इतिवद्गुणभूते अपि । तन्न । तादृशमन्त्रलिंगाभावात् तयोर्निमित्तत्वेऽधिकरणत्वे वाऽन्यप्रयुक्तस्नानाद्यभावापत्तेश्च ॥ किंच-"नेक्षेतोद्यन्तमादित्यं नास्तं यन्तं कदाचन । नापरक्तं न वारिस्थं न मध्यं नभसो गतम् ॥ " इति मनुवचनं बाध्येत । 'दृष्टोऽरिष्टप्रदो राहुः ' इत्यादि च । न चात्र विहिते दर्शने निषेधाप्रवृत्तिवत् पर्युदासनीयतापि न युक्तेतिवाच्यम् । दर्शनस्यानुवादेन विधेयत्वाभावात्।एतच्चाग्रे वक्ष्यामः। तत्त्वे वा विरुद्धात्रिकद्वयापत्तेः ॥ अस्तु सकृद्दर्शनविधानेन संकोच इति चेन्न । 'मुक्तिं दृष्ट्वा ततः स्नायात्' इति मुक्तिस्नानेऽपि चाक्षुषज्ञानस्य निमित्तत्वापत्तेः ॥ अस्तु किं नश्छिन्नमिति चेत् न ग्रस्तास्ते तयोः परेद्युरुदये दृष्ट्वाभ्यवहरेच्छुचिरिति दर्शनोत्तरं भोजनविधानादन्धस्य पूर्ववेधकाल इव यावद्दर्शनं भोजननिषेधापत्तिः ॥ मध्येऽन्धीभूतस्य सुतरां यावच्चक्षुःप्राप्त्युपवासप्रसंगश्च । अथान्नलोलुपतया तत्र

कारण कि, यह ग्रहपद ग्रहणका वाचक है, उसको ग्रस्तास्त समयपर नहीं माना जा सकता और यदि निमित्तका बोधक मानोगे तो अस्तसे प्रथम भी ग्रहणके निमित्त स्नान आदि न होंगे और यदि कहो कि, उक्त वचनमें तंत्र पदसे 'सा वैश्वदेवी' (विश्वेदेवादेवतावाली) आमिक्षाके तुल्य गौण भी रात्रि दिन कहे हैं सो भी यथार्थ नहीं। इस प्रकार कोई मन्त्ररूप प्रमाण नहीं और जो रात अथवा दिनको निमित्त वा अधिकरण मानोगे तो दूसरेके निमित्त भी स्नानादिका अभाव प्राप्त हो जायगा और उदय वा अस्त हो तो राहुसे संयुक्त जलमें प्रतिविम्ब और मध्याह्नके सूर्यको आकाशमें न देखे इस मनुवचनका बाध होजायगा, ग्रहणके समय देखनेसे रोग करता है इत्यादि । और जैसे शास्त्रमें लिखे दर्शनमें निषेधकी प्राप्ति नहीं वैसे ही निषेध मानना भी युक्त नहीं, ऐसी शंका करनी न चाहिये । कारण कि, निमित्तरूप दर्शनकी अनुवादता होनेसे वह शास्त्रोक्त नहीं कहा जा सकता और यह वार्ता आगे वर्णन करेंगे और जो निमित्तको भी विधेय कहोगे तथा स्नानविधि मानोगे तो परस्पर विरुद्ध दो स्थानमें तीन तीन मानने पड़ेंगे । अस्तु-एकबार दर्शनके विधिसे संकोच मानना भी यथार्थ नहीं कारण. कि, राहुसे मोक्ष देखकर स्नान करे, इस मोक्षसे भी नेत्रदर्शनकी निमित्तता प्राप्त होगी; जो कहो कि, इसमें हमारी क्या हानि है; सो भी उचित नहीं । कारण कि,ग्रस्तास्त होनेपर ग्रहणके अगले दिन दर्शन कर शुद्ध हो भोजन करे इस वाक्यके अनुसार पश्चात् भोजन करना कहा है। इससे जिस प्रकार पूर्ववेधमें अन्धे मनुष्यको भोजनका निषेध है इसी प्रकार चन्द्र सूर्यके देखने तक भोजनका निषेध हो जायगा । जो मनुष्य मध्यमें अन्धा हुआ है उसको जबतक दर्शन न हो तबतक उपवास करना होगा (बहुत सूर्यके दर्शनसे नेत्रज्योति मलीन होजाती है) । यदि कोई अन्नके लोभसे दर्शनसे ज्ञानमात्रका ग्रहण करे सो भी ठीक नहीं । कारण कि, यह अलज्जावाल

ज्ञानमात्रं विवक्ष्यते, तत् पूर्वमपि निर्लज्जेन स्वीक्रियताम्। एतेन यत् केनचिदुक्तं स्पर्शस्नानं मुक्तिस्नानं च यस्य दर्शनं तेनैव कार्यं नान्येन। 'क्त्वाप्रत्ययेन समानकर्तृकत्वावगते' इति तन्निरस्तम्। का तर्हि तस्य गतिः। दृशेरुद्देश्यावि-शेषणत्वात् ग्रहैकत्ववदविवक्षयार्थतः सिद्धज्ञानमात्रानुवादत्वे सर्वं सुस्थम्। अंगुल्याद्यनादेश्यग्रहव्यावृत्त्या वा दर्शनस्यार्थवत्त्वम्। न चोक्तयोग्यतापि साध्वी-दर्शनोत्तरं मेघच्छन्ने योग्यताभावापत्त्या दानाद्यभावापत्तेः। तेन तत्तद्रेखात्वच्छेदेन ज्योतिःशास्त्रवेद्यत्वमेव योग्यता। किंच-'रजसो दर्शने नारी त्रिरात्रमशुचिर्भवेत्' इत्यत्राप्यन्धस्त्रीणामाशौचाभावप्रसंगः। यत्तु वर्धमानेनोक्तम्-'ज्ञानोत्तरं त्वधिकारो न ज्ञानकाले' स्नानकाले ज्ञानाभावात्। एवं दर्शनोत्तरं मुक्तिपर्यन्तमस्त्येव योग्य-तेति तदपि प्रतिज्ञामात्रम्। किंच ग्रस्तास्ते-'तयोः परेद्युरुदये दृष्ट्वाऽभ्यवहरेच्छु-चिः' इत्यादिवाक्यवैयर्थ्यापत्तिः। चाक्षुषज्ञानान्यथानुपपत्त्यैवार्थादुदये स्नानसिद्धेः। ननु मुक्तिस्नाने शास्त्रीयमेव ज्ञानं निमित्तं न चाक्षुषम्॥ "चन्द्रसूर्यग्रहे नाऽद्यात्त-स्मिन्नहनि पूर्वतः। राहोर्विमुक्तिं विज्ञाय स्नात्वा कुर्वीत भोजनम्" इति वृद्धगौत-

---

उससे प्रथम भी ज्ञानमात्रको पहले क्यों नहीं मान लेता, इससे यह वार्ता भी परास्त हुई। जो कोई कहते हैं कि, स्पर्श और मुक्तिका स्नान उस मनुष्यको करना चाहिये जिसने देखा हो दूसरेको नहीं। जिससे कि, क्त्वाप्रत्यय 'दृष्ट्वा'के सदृश दर्शन और स्नानका कर्ता ही प्रतीत होता है तो इसकी दशा क्या होगी। ऐसा कहनेपर इसकी गति यह है कि, दर्शन उद्देश्यका विशे-षण है। ग्रहणके एकत्वके समान इसकी विवक्षासे अर्थात् प्राप्तज्ञानमात्रके अनुवाद दर्शनको स्वीकार करनेसे सम्पूर्ण यथार्थ है, अंगुली आदिके विना बताये ग्रहणके निषेधसे ही दर्शनपद सफल हो जायगा और पूर्वोक्त दर्शनकी योग्यता ठीक करनेकी शंका उचित नहीं। कारण कि, दर्शनके पश्चात् मेघोंसे आच्छादित हो जाय तो दर्शनकी योग्यतासे अभावके दान आदिका भी अभाव प्राप्त हो जायगा, इससे ज्योतिःशास्त्रसे उस रेखामें ग्रहणके अज्ञानको अदर्शनकी योग्यता कही है। रज दीखनेसे स्त्री तीन रात अपवित्र होती है इस वाक्यमें अन्धी स्त्रियोंको आशौच न होगा और जो वर्द्धमान यह कहते हैं कि, ज्ञान होनेके पीछे स्नानका अधिकार होगा। कारण कि, स्नानके समयमें ज्ञानका अभाव है। इसी प्रकार दर्शनसे राहुग्राससे मुक्तिपर्यन्त योग्यता है। वह वर्द्धमानका वाक्य प्रतिज्ञामात्र जानना यथार्थमें नहीं। कारण कि, ग्रस्तास्ते-अर्थात् सूर्य और चन्द्रमाके ग्रस्तास्तमें दोनोंको देखकर ही भोजन कर, नेत्रविषयकज्ञान होनेसे अन्यथा अनु-पपत्तिसे ही उदयमें स्नान सिद्ध है। यदि कहो कि, राहुसे मोक्षके स्नानमें शास्त्रीय ज्ञान निमित्त है, नेत्रसे नहीं, सो भी ठीक नहीं। कारण कि, चन्द्र सूर्य ग्रहणमें उस दिन प्रथम भोजन न करे; किन्तु राहुमुक्तिको जानकर स्नानके उपरान्त भोजन करना चाहिये। विज्ञायपदसे वृद्धगौतमने

मेन विज्ञायेति ज्ञानमात्रोक्तेः॥यत्तु–'मुक्तिं दृष्ट्वा तु भोक्तव्यं स्नानं कृत्वा ततः परम्" इति। तदपि ज्ञानमात्रपरम्। "मेघमालादिदोषेण यदि मुक्तिर्न दृश्यते। आकलय्य तु तं कालं स्नात्वा भुञ्जीत वाग्यतः" इति गौडनिबन्धे वचनात्। मैवम्। अज्ञातस्य निमित्तत्वाभावेन निमित्तमहिम्नैव ज्ञानलाभे वाक्यवैयर्थ्यात्। ग्रस्तास्तेऽपि तदापत्तेश्च। किं च दर्शनं पुंसो विशेषणमुपलक्षणं वा। नाद्यः। दर्शनावच्छिन्ने काले स्नानतुलादानादेर्बाधात्। दर्शनविच्छेदे कृतमपि स्नानादि न ग्रहणनिमित्तं स्यात्। नान्त्यः। 'यावद्दर्शनगोचरः' इति यावत्पदवैयर्थ्यप्रसंगात्। दृष्टग्रहस्य ग्रहणोत्तरमपि स्नानाद्यापत्तेश्च। ज्ञानपक्षेऽप्येष दोषस्तुल्य इति चेत्।मूर्खोऽसि। यदि ज्ञानवाचकं पदं श्रूयते ततस्तस्यान्वयो विचार्येत। दृशिस्तु श्रूयत इति वैषम्यम्। कथं तर्हि ज्ञानं लभ्यते। 'संक्रान्तौ स्नायात्' इतिवदर्थादित्येवाहि। अश्रुतत्वादेव नोद्देश्यविशेषणविवक्षाकृतो वाक्यभेदोऽपि। अस्तु तर्हि दृष्टं ग्रहणं निमित्तमिति चेत्। ग्रस्तास्तेऽस्तोत्तरं स्नानापत्तेः। विशिष्टोद्देशे वाक्यभेदाच्च। तथाप्येतत्तुल्यमिति चेत्। 'यावद्दर्शनगोचरः' इति वचनेन तन्निषेधात्। तत्त्व-

---

ज्ञानमात्र अर्थ किया है और जो गौडनिबन्धमें यह लिखा है कि, पुनः राहुसे मोक्षको देख स्नान करने उपरान्त भोजन करे और जो मेघोंके आच्छन्न रहनेसे मुक्ति न दीखे तो मोक्षके समयको शास्त्रसे जान स्नानके उपरान्त मौन हुए ही भोजन करे, यह गौडनिबन्धका कथन ठीक नहीं। कारण कि, जब अज्ञानकी निमित्तता हुई तो उसके निमित्तकी महिमासे ही ज्ञानकी प्राप्ति हो जायगी तो वाक्य व्यर्थ हो जायगा और ग्रस्तास्तमें भी भोजनकी प्राप्ति होजायगी। दर्शन पुरुषका विशेषण या उपलक्षण है, विशेषण अपने विशेष्यमें स्थित रहकर दूसरेको हटाता है, इसमें पहला विशेषण नहीं होसकता. कारण कि, ग्रहण दर्शनसे युक्त कालमें स्नान और तुलादानादि नहीं हो सकते और जब दर्शनका अभाव अर्थात् सूर्यग्रहणकी ओरसे दृष्टि हटी हुई है तब इस विचारसे किये हुए स्नानादिमें ग्रहण निमित्त न होगा। दूसरा उपलक्षण भी ठीक नहीं। कारण कि, जबतक दीखे इसमें यावत् पद व्यर्थ होजायगा और दृष्टग्रहणके पश्चात् भी स्नान तुलादानादि करने होंगे। यदि कहो यह दोष तो ज्ञानपक्षमें भी तुल्य है, तो यह अज्ञता है। कारण कि, ज्ञानवाचकपद वाक्यमें दृष्ट होनेसे किस प्रकार ज्ञान प्राप्त होगा सो ठीक नहीं। संक्रान्तिमें नहाना चाहिये, जिस प्रकार यहां संक्रांतिका ज्ञान ग्रहण करते हैं उसी प्रकार दर्शनसे दर्शनका ज्ञान ग्रहण करते हैं, इस प्रकार जानना चाहिये। और वाक्यमें अश्रूयमाण होनेसे विशेषतासे जब देवताके निमित्त विवक्षा की उस समय भी वाक्यभेद तो होगा ही, यदि कोई शंका करे जो ऐसा है तो दर्शनको ही ग्रहणमें मिमित्त मानो तो ग्रस्तास्तके उपरान्त भी स्नानकी प्राप्ति होगी और विशेषणके सहितको उद्देश स्वीकार करोगे तो वाक्यभेद होगा। जो शंका करो–तुम्हारे मतमें भी यह समान है सो ठीक नहीं। कारण कि, जबतक दर्शन हो

न्यग्रह इव ग्रस्तास्तेऽपि स्यात् ॥ किं च दर्शनस्य विधिरपवादो न वा । आद्ये ग्रहणोद्देशेन दर्शनविधिः, न तु दर्शनविशिष्टस्नानविधिः, उत स्नानोद्देशेन दर्शनविधिः । नाद्यः ॥ ग्रहोद्देशेन स्नानविधाने दर्शनविधाने च वाक्यभेदात् । एतेन द्वितीयोऽपि परास्तः । न तृतीयः स्नानस्याप्राप्तेः । दर्शनस्य निमित्तत्वेनाविधेयत्वाच्च । अन्यथा सोमवमनादौ प्रसज्जनविधिः केन वार्येत । अथ नानावाक्येषु क्वचिद्दर्शनविशिष्टस्नान विधिः क्वचिच्च प्राप्तं दर्शनं निमित्तीकृत्य स्नानमात्रविधिः । तन्न । स्नानस्य प्रधानस्य प्राप्तौ तदङ्गदर्शनप्राप्तिः तस्यां च निमित्ते सति स्नानमित्यन्योन्याश्रयात् । एवं दर्शनविधौ सति तन्निमित्तकस्नानविधिः । सति च प्रधानस्नानविधौ तदंगदर्शनविधिः । एवमधिकारे प्रयोजकत्वे च योज्यम् । दृष्ट्वेति उक्तार्थपूर्वकालत्वविधौ चास्त्येव वाक्यभेदः । अन्यथा स्नानोत्तरमपि दर्शनमंगं स्यात् । न द्वितीयः । तत्रापि दर्शनग्रहयोर्निमित्तत्वे स्नानद्वयापत्तेः।दर्शनावृत्तौ नैमित्तिकावृत्तिप्रसंगात् । दर्शनविशिष्टग्रहस्य विशिष्टस्यानुवादे वाक्यभेदापत्तेः । न च हाविरार्तिवद्विशिष्टं निमित्तमिति वाच्यम् ।

इस वाक्यसे हमारे मतमें तो दर्शनके अभावमें स्नानकी मनाई है । हां, तुम्हारे मतमें दूसरे ग्रहणके समान ग्रस्तास्तमें भी स्नानकी प्राप्ति होगी और यह तो कहो यहां दर्शनका विधान है वा अपवाद ? पहला नहीं हो सकता । कारण कि, ग्रहणके उद्देश्यसे दर्शनकी विधि है अथवा दर्शनके सहित स्नानकी विधि है वा स्नानके उद्देश्यसे दर्शनका विधान है इन तीनोंमें भी प्रथमका विधान नहीं हो सकता । जो ग्रहणके उद्देश्यसे दर्शनका विधान तथा स्नानविधान स्वीकार करोगे तो वाक्यभेद आवेगा, इससे दूसरा पक्ष भी खण्डित हुआ । तीसरा पक्ष भी ठीक नहीं, कारण कि; जब स्नान ही प्राप्त नहीं और दर्शनका निमित्त होनेसे निषेध भी संभव नहीं होसकता, अन्यथा सोमवमनमें प्रसंगविधिको कौन निवारण कर सकता है ? यदि कहो विविध वाक्योंमें कहीं तो दर्शनके सहित स्नानकी विधि है और कहीं प्राप्तदृष्टको निमित्त मानकर स्नानमात्रका विधान है सो यह कथन ठीक नहीं । कारण कि, इसमें अन्योन्याश्रयदोष प्राप्त होता है कि, प्रधान स्नानविधिके विना प्राप्त हुए उसके अंगदर्शनकी प्राप्ति नहीं हो सकती और यदि दर्शनको निमित्त स्वीकार करो तो स्नानकी प्राप्ति होगी, इस प्रकारसे दर्शनविधि होवेगी तो उसके निमित्तवाले स्नानकी विधि प्राप्त होगी और प्रधान स्नानकी विधि होनेपर उसके अंगदर्शनका विधान प्राप्त होगा और अधिकारक प्रेरक स्वीकार करनेमें भी इसी प्रकार जानना चाहिये । तथा दृष्ट्वा इस पूर्वोक्त पदमें क्त्वाप्रत्ययके अर्थसे पूर्वकालकी विधिमें वाक्य भेद अवश्य होता ही है, नहीं तो स्नान अंगके पीछे भी दर्शन अंगकी प्राप्ति हो जायगी. दूसरा पक्ष भी ठीक नहीं है । यदि उसमें दर्शन और ग्रहणको निमित्त मानोगे तो दो स्नानकी प्राप्ति होगी । यदि दर्शनकी आवृत्ति स्वीकार करोगे तो उसके नैमित्तिककी आवृत्तिका प्रसंग हो जायगा और यदि दर्शनविशिष्ट ग्रहणको अनुवाद स्वीकार करो तो वाक्यभेद होगा और जो यह कहो कि, दुःखमें हाविके समान विशिष्टको निमित्त स्वीकार करेंगे, यह पक्ष भी ठीक नहीं । कारण कि, दुःखमात्रको

आर्तिमात्रस्य हि निमित्तत्वे निर्निमेषाद्यार्तेरपि तत्त्वापत्तेर्नैमित्तिकत्वभङ्गाद्युक्तं विशिष्टोद्देशत्वम्। इह तु ग्रहणमात्रस्य निमित्तत्वे न काचित् क्षतिः। तस्माद्दर्शनवाक्यानां ग्रस्तास्तविषयत्वादनादेश्यग्रहपरत्वाद्वा ज्ञानस्य चार्थतः प्राप्तेस्तदेव निमित्तं तेन मेघाद्याच्छादनेऽन्धादेश्च स्नानादि भवत्येवेत्यलं वेदबाह्यैः संलापेन। इति ग्रहणनिर्णयः। समुद्रस्नाननिर्णयः। अथ समुद्रस्नानम्॥ आश्वलायनः-"समुद्रे पर्वसु स्नायादमायां च विशेषतः। पापैर्विमुच्यते सर्वैरमायां स्नानमाचरन्॥ भृगुभौमदिने स्नानं नित्यमेव विवर्जयेत्"॥ भारते-"अश्वत्थसागरौ सेव्यौ न स्प्रष्टव्यौ कदाचन। अश्वत्थं मन्दवारे तु सागरं पर्वणि स्पृशेत्॥" पृथ्वीचन्द्रोदये स्कांदे-"पुनाति पर्वणि स्नानात्तर्पणैः सरितां पतिः। कदाचिदपि नैवात्र स्नानं कुर्यादपर्वणि॥" अस्यापवादस्तत्रैव प्रभासखण्डे-"पर्वकाले च संप्राप्ते नदीनां च समागमे। सेतुबन्धे तथा सिन्धौ तीर्थेष्वन्येषु संयुतः॥ एवमादिषु सर्वेषु मध्येऽन्ये तु स्वकर्मणि"॥ तथा-"विना मंत्रं विना पर्व क्षुरकर्म विना नरैः। कुशाग्रेणापि देवेशि न स्प्रष्टव्यो महोदधिः॥" तथा-'न कालनियमः सेतौ समुद्रस्नानकर्मणि'।

निमित्त माननेसे निमेषके दुःखको भी निमित्तताकी प्राप्ति होगी तब निमित्तकता भंग होगी, इससे विशिष्टको उद्देश्यतायुक्त मानना पड़ेगा। और इस स्थलमें तो ग्रहणका निमित्त स्वीकार करनेंमें कोई क्षति नहीं है। इस कारण दर्शन वाक्योंका ग्रस्तास्तविषय होनेसे वा अनुद्दिश्य (जो कहीं कथन न किया हो) ग्रहणका विषय होनेसे अर्थसे ज्ञान ही प्राप्त है, इस कारण यही निमित्त है। इसी कारणसे बादलोंके घिरे रहनेसे भी अन्ध आदिकोंको स्नानादिक करने ही पड़ेंगे। अब वेदबाह्य चलनेवालोंके साथ बहुत वार्ता नहीं करते। इति ग्रहणनिर्णयः। अब समुद्रस्नान कहते हैं। आश्वलायन कहते हैं-समुद्रमें पर्वमें और विशेषकर, अमावास्याको स्नान करे तो उसके सम्पूर्ण पाप दूर होजाते हैं। शुक्र और मंगलको कभी सागरमें स्नान न करे। भारतमें कहा है-पीपल और सागरकी सेवा करे पर इनको छुवे नहीं, शनिको पीपल और पर्वमें सागरको स्पर्श करे। पृथ्वीचन्द्रोदयमें स्कन्दपुराणका वाक्य है कि, पर्वमें स्नान और तर्पण करनेसे समुद्र पवित्र करता है और इसके विना स्नान न करे। वहीं प्रभासखण्डमें इसका अपवाद लिखा है, कि, पर्वके प्राप्त होनेपर नदियोंके संगम, सेतुबन्ध, तीर्थ तथा और सब तीर्थोंमें स्नान करनेसे पवित्रता होती है तथा दूसरे कर्म करनेसे भी पवित्रता है. तथा हे पार्वति! विना मन्त्र विना पर्व और विना क्षौर कराये कुशाके अग्रभागसे भी मनुष्योंको सागरका स्पर्श करना न चाहिये तथा समुद्रके स्नानमें सेतुबन्धपर कालका नियम नहीं है। उसी स्थलमें स्नानका विधान भी कहा है।

तीर्थविधिश्च तत्रैव–" पिप्पलादसमुत्पन्ने कृत्ये लोकभयंकरे। पाषाणस्ते मया दत्त आहारार्थं प्रकल्प्यताम्" इति पाषाणं प्रक्षिप्य "विश्वाची च घृताची च विश्वयोने विशांपते। सान्निध्यं कुरु मे देव सागरे लवणाम्भसि॥ नमस्ते विश्वगुप्ताय नमो विष्णो अपांपते। नमो जलधिरूपाय नदीनां पतये नमः॥ नमस्ते जगदाधार शंखचक्रगदाधर। देव देहि ममानुज्ञां तव तीर्थनिषेवणे॥ त्रितत्त्वात्मकमीशानं नमो विष्णुमुमापतिम्। सांनिध्यं कुरु देवेश सागरे लवणाम्भसि॥ ४॥" " अग्निश्च योनिरनिलश्च देहे रेतोधा विष्णुरमितस्य नाभिः। एतद्ब्रुवन्पाण्डवसत्यवाक्यं ततोऽवगाहेत पतिं नदीनाम्॥" इति भारतोक्तमन्त्रान् पठित्वा विधिवत्स्नात्वा। "सर्वरत्नो भवाञ्छ्रीमान् सर्वरत्नाकरो यतः। सर्वरत्नप्रधानस्त्वं गृहाणार्घ्यं महोदधे॥" इत्यर्घ्यं दत्त्वा तर्पयेत्॥ यथोक्तं पृथ्वीचन्द्रोदये–"पिप्पलादं विकण्वं च कृतान्तं जीविकेश्वरम्। वसिष्ठं वामदेवं च पराशरमुमापतिम्॥ वाल्मीकिं नारदं चैव वालखिल्यांस्तथैव च। नलं नीलं गवाक्षं च गवयं गन्धमादनम्॥ जाम्बवन्तं हनूमन्तं सुग्रीवं चाङ्गदं तथा। मैन्दं च द्विविदं चैव ऋषभं शरभं तथा॥ रामं च लक्ष्मणं चैव सीतां चैव यशस्विनीम्। एतांस्तु तर्पयेद्वि-

---

हे पिप्पलादसे प्रगट राक्षसी! लोकोंको भय देनेवाली! मैं यह पाषाण तुझे देता हूं तू इसे भोजनके निमित्त कल्पना कर, इस प्रकार सागरमें पाषाण फेंककर इन भारतके मन्त्रोंको उच्चारण करे, हे विश्वाचि, हे घृताचि, हे विश्वके कारण जगत्के रक्षक! क्षार समुद्रमें तुम इस समय विराजो, हे विश्वरक्षक विष्णु, जलोंके स्वामी, सागररूप नदियोंके पति! आपको प्रणाम है, हे जगत्के आधार शंख, चक्र, गदा, पद्म धारण करनेवाले! आपको प्रणाम है, हे देव! तीर्थ सेवनके निमित्त मुझे आज्ञा दीजिये, तीन तत्त्वस्वरूप ईशान, विष्णु और शिवको प्रणाम है, हे देवेश! इस क्षारसमुद्रके जलमें सन्निधि करो, जो भगवान् अग्नि और वायुके कारण हैं, अमृतके स्थान और वीर्यके देनेवाले हैं वे प्राप्त हों, हे पाण्डव! इस प्रकार सत्यवाक्योंको उच्चारण कर सागरमें स्नान करे। इस प्रकार भारतके मन्त्र पढ़ विधिपूर्वक स्नान करके इस मन्त्रसे अर्घ्य देकर तर्पण करे. हे सागर! आप सब रत्नोंके देनेवाले श्रीमान् और रत्नोंके आकर सब रत्नोंके प्रधान हैं, हे सागर! हमारा अर्घ्य ग्रहण करो। इस प्रकार अर्घ्य दे तर्पण करे। पृथ्वीचन्द्रोदयमें स्कन्दपुराणके वचनसे यह तर्पण लिखा है कि, पिप्पलाद, विकण्व, कृतान्त, जीविकेश्वर, वशिष्ठ, वामदेव, पराशर, शिव, वाल्मीकि, नारद, वालखिल्य, नल, नील, गवाक्ष, गवय, गन्धमादन, जाम्बवन्त, हनूमान, सुग्रीव, अंगद, मैन्द, द्विविद, ऋषभ, शरभ, राम, लक्ष्मण, यशस्विनी सीता, विद्वान् इनको जलके मध्यमें स्थित हो विशेषकर तर्पण करे।

द्वाञ्जलमध्ये विशेषतः ॥ आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं यत्किञ्चित्सचराचरम् । मया दत्तेन तोयेन तृप्तिमेवाभिगच्छतु ॥ ९ ॥ इति ॥

इति श्रीमीमांसकनारायणभट्टसूरिसूनुरामकृष्णभट्टात्मजदिनकरभट्टानुजकमलाकभट्टकृते निर्णयसिन्धौ प्रथमः परिच्छेदः समाप्तः ॥ १ ॥

ब्रह्मासे स्तम्भपर्यन्त जो कुछ चराचर हैं वे सब इस हमारे दिये हुए जलसे तृप्ति प्राप्त करें ॥

इति श्रीकमलाकरभट्टकृते निर्णयसिन्धौ कान्यकुब्जवंशावतंसमिश्रसुखानंदसूरिसूनु-पण्डितज्वालाप्रसादमिश्रकृतनितर्णयसागरसेतुनामके भाषानुवादे प्रथमः परिच्छेदः समाप्तः ॥ १ ॥

इति निर्णयसिन्धौ प्रथमः परिच्छेदः ।



श्रीः ।

निर्णयसिन्धौ—

द्वितीयः परिच्छेदः २.

श्रीगणेशाय नमः ॥ अथ सांवत्सरप्रतिपदमारभ्य "तिथिकृत्ये च कृष्णादिं व्रते शुक्लादिमेव च ॥ विवाहादौ च सौरादिं मासं कृत्ये विनिर्दिशेत् ॥" इति ब्राह्मं प्रायशोऽनुसृत्य तिथिनिर्णयस्तत्कृत्यं च निरूप्यते । तत्र मीनसंक्रान्तौ पश्चात् षोडश घटिकाः पुण्यकालः । रात्रौ तु निशीथात्प्राक् परतश्च संक्रमे पूर्वोत्तरदिनार्धं पुण्यम् । निशीथे तु दिनद्वयं पुण्यमिति सामान्यनिर्णयादवसेयम् ॥ तिथिनिर्णये चैत्रशुक्लप्रतिपन्निर्णयः ॥ अथ तिथिनिर्णयः ॥ तत्र चैत्रशुक्लप्रतिपदि वत्सरारम्भः तत्रौदयिकी ग्राह्या । "चैत्रे मासि जगद्ब्रह्मा ससर्ज प्रथमेऽहनि ॥ शुक्लपक्षे समग्रं तु तदा सूर्योदये सति ॥" इति

दोहा—राम लखन सीता सहित, भरत चरण शिर नाय ॥
तिथिनिर्णयतिथिकृत्यकी, भाषा लिखत बनाय ॥ १ ॥

अब संवत्सरकी प्रतिपदासे आरम्भ कर प्रायः इस ब्रह्मपुराणके कथनानुसार तिथिनिर्णय और तिथियोंका कृत्य लिखते हैं:-तिथियोंके कार्यमें कृष्णपक्षसे और व्रतोंमें शुक्लपक्षसे और विवाह आदिमें संक्रांतिसे मासको माने । वहां मीनसंक्रांतिमें पिछली सोलह घड़ीका पुण्यकाल होता है और रात्रिमें आधी रातसे प्रथम संक्रांति हो तो पूर्व दिनमें और आधीरातसे परे हो तो पर; निर्णयसे जानना चाहिये । और आधीरातमें होनेसे दोनों दिनमें पुण्यकाल होता है यह सामान्य निर्णय है ॥ चैत्रशुक्ला प्रतिपदाको वर्षका प्रारम्भ होता है, उसमें उदयसमयकी प्रतिपदा लेनी । कारण कि, हेमाद्रिमें ब्रह्मपुराणका यह कथन लिखा कि, चैत्र महीने प्रथम दिन शुक्लपक्षमें सूर्योदयके समय ब्रह्माने सब जगत्को रचा है । यदि दोनों दिन सूर्योदयमें हो वा दोनों दिन सूर्योदयमें

हेमाद्रौ ब्राह्मोक्तेः । दिनद्वये तद्व्याप्तावव्याप्तौ वा पूर्वैव । तदुक्तं ज्योतिर्निबन्धे—"चैत्रसितप्रतिपदि यो वारोऽर्कोदये स वर्षेशः । उदयद्वितये पूर्वो नोदययुगलेऽपि पूर्वः स्यात् ॥ यस्माच्चैत्रसितादेरुदयाद्भानोः प्रवृत्तिरब्दादेः ॥" इति । "वत्सरादौ वसन्तादौ बलिराज्ये तथैव च । पूर्वविद्धैव कर्तव्या प्रतिपत्सर्वदा बुधैः ॥" इति ॥ वृद्धवसिष्ठोक्तेः ॥ "चैत्रमासस्य या शुक्लप्रथमा प्रतिपद्भवेत् ॥ तदाह्नि ब्राह्मणः कृत्वा सोपवासस्तु पूजनम् ॥ संवत्सरमवाप्नोति सौख्यानि भृगुनंदन॥" इति हेमाद्रौ विष्णुधर्मोक्तेः । यदा तु चैत्रो मलमासो भवति तदा दैवकार्यस्य तत्र निषिद्धत्वाच्छुद्धे मासि संवत्सरारम्भः कार्य इति केचिदाहुः । निष्कर्षस्तु-'शुक्लादिर्मलमासस्य सोऽन्तर्भवति चोत्तरे' इत्यादिवचनादग्रिमवर्षान्तःपातान्मलमासमारभ्यैव वर्षप्रवृत्तेः शुक्रास्तादाविव मलमास एव कार्य इति वयं प्रतीमः । ननु शुक्रास्तादौ चैत्रशुक्लप्रतिपदन्तरस्याभावाद्युक्तं तन्मध्य एवानुष्ठानम् । मलमासे तु शुद्धप्रतिपदन्तरस्य सम्भवात् शुद्ध एव वत्सरारम्भो युक्त इति चेत् भ्रान्तोऽसि नहि प्रतिपदन्तरसत्त्वं प्रयोजकं द्विःकरणापत्तेः वर्षद्वयापत्तेश्च । अपि तु वत्सरारंभः स तु मलमासेऽपीत्युक्तं प्राक् । नहि 'चैत्रशुक्लादिर्मलमासः पूर्ववर्षेऽन्तर्भवति' इति

न हो तो पहली माननी । यही ज्योतिर्निबन्धमें लिखा है कि, चैत्रके शुक्लपक्षकी प्रतिपदाको सूर्योदयमें जो दिन हो वही वर्षका राजा होता है। यदि दोनों दिन सूर्योदयमें प्रतिपदा हो वा दोनों दिन न हो तो प्रथम प्रतिपदाका दिन ही राजा होता है । कारण कि, चैत्रशुक्ला प्रतिपदाको सूर्योदयसे ही वर्षा आदिका प्रारम्भ होता है। कारण कि, वृद्धवसिष्ठने यह लिखा है कि, वत्सर और वसन्तकी आदिमें और बलिके राज्यमें बुद्धिमान् मनुष्यको पूर्वविद्धा ही प्रतिपदा करनी चाहिये । कारण कि, हेमाद्रिके विष्णुधर्ममें यह लिखा है कि, हे भृगुनन्दन ! चैत्र मासके शुक्लपक्षकी जो प्रथम प्रतिपदा हो उसी दिन ब्रह्माका अर्चन और व्रत करनेसे मनुष्य वर्ष दिनतक सुखको प्राप्त करता है । यह किन्हींका मत है. सिद्धान्त तो यह है कि, शुक्लपक्ष आदि मलमासके अन्तर्गत वह अगला मास आ जाता है, इत्यादि वाक्यसे अग्रिम वर्षके अन्तरमें आये हुए मलमाससे ही वर्षकी प्रवृत्ति होती है, इससे मलमासमें ही शुक्र आदिके अस्तके तुल्य वर्षका प्रारम्भ करना यह हम जानते हैं । यदि कोई शंका करे कि, शुक्रास्त आदिमें चैत्रकी दूसरी शुक्लप्रतिपदा नहीं है, इससे शुक्र आदिके अस्तके मध्य ही वर्षका आरंभ करते हैं। मलमासमें तो शुद्धप्रतिपदा प्राप्त हो सकती है, इससे शुद्धमें ही वर्षका आरम्भ उचित है । इस शंका करनेवालेको कहना चाहिये कि, तुम भ्रान्त हो । कारण कि, दूसरी प्रतिपदाका होना पूजन और उपवासमें प्रयोजक नहीं है, अन्यथा दो वार पूजन करना पड़ेगा। वर्षके नृपति दो होजायँगे, किन्तु वर्षका आरम्भ ही पूजनमें प्रयोजक है वा मलमासमें भी होता है यह पहिले कह आये हैं । चैत्र शुक्ल आदि मलमास पूर्ववर्षमें नहीं होते, यह ब्रह्माका भी कथन

ब्रह्मणापि सुवचम् । तत्र तैलाभ्यंगो नित्यः । "वत्सरादौ वसन्तादौ बलिराज्ये तथैव च । तैलाभ्यङ्गमकुर्वाणो नरकं प्रतिपद्यते ॥" इति वसिष्ठोक्तेः । अस्यामेव नवरात्रारम्भः । तदुक्तं मार्कण्डेयपुराणे--'शरत्काले महापूजा क्रियते या च वार्षिकी' इति । तत्र परयुतैव ग्राह्या-"अमायुक्ता न कर्तव्या प्रतिपच्चण्डिकार्चने । मुहूर्तमात्रा कर्तव्या द्वितीयादिगुणान्विता ।" इति देवीपुराणात् ॥ "तिस्रो ह्येताः पराः प्रोक्तास्तिथयः कुरुनंदन । कार्तिकाश्वयुजोर्मासोश्चैत्रे मासि च भारत ॥" इति हेमाद्रौ ब्राह्मोक्तेः । पराः परयुताः । अत्र विशेषः । पारणानिर्णयश्च शारदनवरात्रे वक्ष्यते । अत्र प्रपादानमुक्तमपरार्के भविष्ये-"अतीते फाल्गुने मासि प्राप्ते चैत्रमहोत्सवे । पुण्येऽह्नि विप्रकथिते प्रपादानं समारभेत् ॥" इत्युपक्रम्य "ततश्चोत्सर्जयेद्विद्वान्मंत्रेणानेन मानवः । प्रपेयं सर्वसामान्या भूतेभ्यः प्रतिपादिता ॥ अस्याः प्रदानात्पितरस्तृप्यन्तु हि पितामहाः । अनिवार्यं ततो देयं जलं मासचतुष्टयम् ॥" इति ॥ तथा-"प्रपां दातुमशक्तेन विशेषाद्धर्ममीप्सुना । प्रत्यहं धर्मघटको वस्त्रसंवेष्टिताननः ॥ ब्राह्मणस्य गृहे देयः शीतामलजलः शुचिः ।" तत्र मंत्रः-"एष धर्मघटो दत्तो ब्रह्मविष्णुशिवात्मकः । अस्य प्रदानात्सकला मम सन्तु मनोरथाः ॥

ठीक है । वर्षके प्रारम्भ होनेमें तेलका मलना नित्य है । कारण कि, वृद्धवसिष्ठने यह कहा है कि, वर्ष और वसंतके आरम्भमें और बालिके राज्यमें जो तेल न मले वह नरकमें जाता है । इस प्रतिपदामें ही नवरात्रका आरम्भ होता है । यही मार्कण्डेयपुराणमें लिखा है कि, शरत्कालमें और वर्षके प्रारम्भमें जो पूजा हो जाती है उसमें मेरे माहात्म्यको पढ़ना चाहिये । नवरात्रके आरम्भमें दूसरी (२) तिथिसे युक्त प्रतिपदा ग्रहण करनी । कारण कि, देवीपुराणमें लिखा है कि, चण्डिकाके पूजनमें अमावस्यासे युक्त प्रतिपदाका ग्रहण न करना किन्तु द्वितीया आदिके गुणोंसे युक्त मुहूर्तमात्र प्रतिपदा भी हो तो वही करनी।और हेमाद्रिमें ब्रह्मपुराणका वाक्य है कि, हे कुरुनन्दन ! ये तीनों प्रतिपदा तिथि परतिथियोंसे युक्त करनी चाहिये । कार्तिक, आश्विन और चैत्रकी इनमें विशेष और पारण आदिका निर्णय शरदृतुके नवरात्रमें लिखेंगे । इसमें प्रपाका दान भी अपरार्कमें भविष्यपुराणके वाक्यसे लिखा है कि, फाल्गुन महीनेके बीतनेपर और चैत्रके महोत्सवके आनेपर ब्राह्मणके बताये पवित्र दिनमें प्रपाके दानका प्रारम्भ करे । यह लिखकर कहा है कि, फिर इस मन्त्रसे प्रपादान करे, कि प्रपा सब प्राणियोंके निमित्त सामान्यरीतिसे की हुई है, इसके देनेसे पितर और पितामह तृप्त हों, चार मासतक जल देना और किसीको निषेध न करे । इसी प्रकार कहा है, कि जो मनुष्य प्रपाके देनेमें अशक्त है और धर्मकी इच्छा करता है, वह वस्त्रसे ढककर शीतल और निर्मल जलसे भरा घड़ा ब्राह्मणके घरमें प्रतिदिन पहुँचा दे । उसका मन्त्र यह है कि, ब्रह्मा विष्णु शिवरूप यह धर्मघट आपको दिया

अनेन विधिना यस्तु धर्मकुम्भं प्रयच्छति । प्रपादानफलं सोऽपि प्राप्नोतीह न संशयः" इति ॥ चैत्रशुक्लतृतीयानिर्णयः ॥ चैत्रशुक्लतृतीयायां गौरीमीश्वरसंयुतां संपूज्य दोलोत्सवं कुर्यात् । तदुक्तं निर्णयामृते देवीपुराणे-"तृतीयायां यजेद्देवीं शंकरेण समन्विताम् । कुंकुमागुरुकर्पूरमणिवस्त्रसुगन्धकैः ॥ स्रग्गन्धधूपदीपैश्च दमनेन विशेषतः । आन्दोलयेत्ततो वत्सं शिवोमातुष्टये सदा॥"इति । अत्र चतुर्थीयुता ग्राह्या 'मुहूर्तमात्रसत्त्वेऽपि दिने गौरीव्रतं परे।' इति माधवोक्तेः। अत्रैव सौभाग्यशयनव्रतमुक्तं मात्स्ये-" वसन्तमासमासाद्य तृतीयायां जनप्रिये । सौभाग्याय सदा स्त्रीभिः कार्यं पुत्रसुखेप्सुभिः ॥" इति । तत्रापि परयुतैव । इयं च मन्वादिरपि । मन्वादिनिर्णयः । अत्रैव प्रसंगात्सर्वमन्वादिनिर्णय उच्यते । ताश्चोक्ता दीपिकायाम्-"तिथ्यग्नी न तिथिस्तिथ्याशे कृष्णेभोऽनलो ग्रहः । तिथ्यर्कौ न शिवोऽश्वोऽमा तिथी मन्वादयो मधोः ॥" इति । तिथिः पूर्णिमा । अग्निस्तृतीया । नेति वैशाखे नास्तीत्यर्थः । आशा दशमी । कृष्णेभः कृष्णाष्टमी । अनलस्तृतीया । ग्रहो नवमी । अर्कौ द्वादशी । नेति मार्गशीर्षे नास्तीत्यर्थः । शिव एकादशी । अश्व सप्तमी । मधोश्चैत्रादारभ्यैता मन्वादय इत्यर्थः । अत्र मूलवचनानि हेमाद्यादेर्ज्ञेयानि । एताश्च मन्वादयो हेमाद्रिमते शुक्लपक्षस्थाः, पौर्वाह्णिकाः कृष्णपक्षस्था अपराह्णिका

है, इसके दानसे मेरे मनोरथ सब पूर्ण हों । इस विधिसे जो धर्मघटको देते हैं, वह भी इस लोकमें प्रपादानके फलको प्राप्त होते हैं, इसमें सन्देह नहीं है । चैत्रशुक्ला तृतीयाको शिवजीसे युक्त गौरीका पूजन करके दोलोत्सव करे। यही निर्णयामृतमें देवीपुराणके वाक्यसे लिखा है कि, तृतीयामें शंकरसे संयुक्त देवीका कुंकुम, अगर, कपूर, मणि, वस्त्र, सुगन्ध, माला, गन्ध, धूप, दीपसे और विशेषकर मौलसरीके फूलोंसे पूजन करे । फिर शिव और पार्वतीकी प्रसन्नताके निमित्त झुलावे । माधव कहते हैं-यह चतुर्थीयुक्त लेनी । मुहूर्तमात्र भी होनेपर दिनमें गौरीव्रत करे। इसी तिथिको मत्स्यपुराणमें सौभाग्यशयनव्रत लिखा है कि, वसंत मासकी तृतीयाको मनुष्योंको प्रिय शयन पुत्रसुखकी इच्छावाली स्त्रीको अपने सौभाग्यके निमित्त करना चाहिये । इनमें भी चतुर्थीयुक्त तृतीयाका ग्रहण करना, और यह मन्वादि भी है । यहांपर ही प्रसंगसे सब मन्वादि तिथियोंका निर्णय लिखते हैं, और वे दीपिकामें लिखी हैं कि, चैत्रमें पूर्णिमा और तृतीया, ज्येष्ठमें पूर्णिमा और आषाढमें पूर्णिमा और दशमी, श्रावणमें कृष्णपक्षकी अष्टमी, भाद्रपदमें तृतीया, आश्विनमें नवमी, कार्तिकमें पूर्णिमा और द्वादशी, पौषमें एकादशी, माघमें सप्तमी, फाल्गुनमें अमावस्या और पूर्णिमा यह चौदह तिथि चैत्रसे लेकर मन्वादि होती हैं । और वैशाख और मार्गशिरमें नहीं होती । इनके प्रमाणके वाक्य हेमाद्रिमें लिखे हैं और ये मन्वादितिथि हेमाद्रिके मतसे शुक्लपक्षकी पूर्वाह्णव्यापिनी ग्रहण करनी । कारण कि, गरुडपुराणका यह वाक्य है कि, मनु आदि और युगआदि तिथि शुक्लपक्षकी सदैव पूर्वाह्णमें और कृष्णपक्षकी

ग्राह्याः । "पूर्वाह्णे तु सदा ग्राह्याः शुक्ला मनुयुगादयः । दैवे कर्मणि पित्र्ये च कृष्णे चैवापराह्णिकाः ॥ " इति गारुडवचनात् । 'अथो मन्वादियुगादिकर्मतिथयः पूर्वाह्णिकाः स्युः सिते विज्ञेया आपराह्णिकाश्च बहुले' इति दीपिकोक्तेश्च ॥ कालादर्शे त्वपराह्णव्यापित्वं मन्वादिषूक्तं तत्त्वयुक्तमिति युगादिनिर्णये वक्ष्यामः । अत्र च श्राद्धमुक्तं मात्स्ये-"कृतं श्राद्धं विधानेन मन्वादिषु युगादिषु । हायनानि द्विसाहस्रं पितॄणां तृप्तिदं भवेत् ॥ " इति । मन्वादिश्राद्धं च मलमासे सति मासद्वयेऽपि कार्यम् । 'मन्वादिकं तैर्थिकं च कुर्यान्मासद्वयेऽपि च' इति स्मृतिचन्द्रिकोक्तेः । अत्र पिण्डरहितं श्राद्धं कुर्यात् । तदुक्तं कालादर्शे-"विषुवायनसंक्रान्तिमन्वादिषु युगादिषु । विहाय पिण्डनिर्वापं सर्वं श्राद्धं समाचरेत् ॥" इति । मन्वादिश्राद्धं नित्यम् । अकरणे प्रायश्चित्तदर्शनात् । तदुक्तमृग्विधाने-" त्वं भुवः प्रतिमन्त्रं च शतवारं जले जपेत् । मन्वादयो यदा न्यूनाः कुरुते नैव चापि यः " इति । एवं यत्र प्रायश्चित्तवीप्सादिदर्शनं तानि षण्णवतिश्राद्धानि नित्यानि ॥ तानि तु-"अमायुगमनुक्रान्तिधृतिपातमहालयाः ॥ अन्वष्टक्यं च पूर्वेद्युः षण्णवत्यः प्रकीर्तिताः ॥" इत्युक्तानि । चकारादष्टकाग्रहणम् । द्वासप्ततिः पुत्रकाम्यानि श्राद्धानि-"पित्रोः क्षये त्वमा-

---

सदा अपराह्णमें,देव और पितरोंके कर्ममें ग्रहण करनी। और दीपिकामें भी यही लिखा है कि, मन्वादि और युगादि कर्म तिथि शुक्ल पक्षमें पूर्वाह्णकी और कृष्णपक्षमें अपराह्णकी जाननी चाहिये। कालादर्शग्रंथमें तो यह लिखा है कि,मन्वादि तिथि अपराह्णव्यापिनी भी लेनी सो युक्त नहीं है। यह युगादि निर्णयमें लिखेंगे। इन तिथियोंमें श्राद्ध करना भी मत्स्यपुराणमें लिखा है। मन्वादि और युगादि तिथिमें विधिपूर्वक श्राद्ध करनेसे दो सहस्र वर्षतक पितरोंकी तृप्ति होती है और मलमास हो तो मन्वादि श्राद्ध दोनों महीनोंमें करना चाहिये,कारण कि, स्मृतिचंद्रिकामें यह लिखा है कि, मन्वादि श्राद्ध और तीर्थश्राद्ध दोनों महीनोंमें करे और इनमें पिंडरहित श्राद्ध करे। यही कालदर्शमें कहा है कि, विषुव (तुला मेष) और अयनकी संक्रांति और मन्वादि और युगादिमें पिण्डदानको त्यागकर सम्पूर्ण श्राद्ध करे और मन्वादि नित्य लिखा है। कारण कि, इसके न करनेमें प्रायश्चित्त लिखा है।यही ऋग्विधानमें लिखा है कि,जो पुरुष मन्वादिकोंको पिंडरहित श्राद्ध नहीं करता है वह त्वंभुवः प्रति इस मंत्रको जलमें सौ १०० बार जप करे। इस प्रकार प्रायश्चित्तके देखनेसे दर्श आदि अनन्त पर्यन्त छानवे ९६ श्राद्ध नित्य करने लिखे हैं। और वे इस प्रकार कहे हैं कि, अमावास्या १२, युगादि ४, संक्रान्ति १२, वैधृति १२, व्यतिपात १२ । महालय (कन्यागत) १६, अन्वष्टका १२, ये बानवें लिखे हैं और चकारसे चार अष्टका ग्रहण है,और बहत्तर श्राद्ध पुत्रकाम्य कहे हैं, कि माता पिताके मरनेके दिन २, अमावास्या

---

१ 'त्वं भुवः प्रतिमानं पृथिव्या ऋष्ववीरस्य बृहतः पतिर्भूः । विश्वमाप्रा अन्तरिक्षं महित्वा सत्यमद्धा नकिरन्यस्त्वावान्' ऋ० १।४।१४।१३.

बस्या ऋतुसंक्रान्त्यनन्तकाः। अपरपक्षे नवान्ने द्वे मन्वादिषु युगादिषु ॥ आषाढी कार्तिकी माघी वैशाखीयेत्यनन्तकाः॥" २। १२। ६। १२। १६। २। १४। ४। ४। मिलित्वा द्वासप्ततिः। दशावतारजयन्त्यः। चैत्रशुक्लतृतीयैव मत्स्यजयन्ती। अत्रैव प्रसंगाद्दशावतारजयन्त्यो निर्णीयन्ते। तत्र पुराणसमुच्चये-"मत्स्योऽभूद्धुतभुग्दिने मधुसिते कूर्मो विधौ माधवे वाराहो गिरिजासुते नभसि यद्भूते सिते माधवे॥ सिंहो भाद्रपदे सिते हरितिथौ श्रीवामनो माधवे रामो गौरितिथावतः परमभूद्रामो नवम्यां मधोः॥ कृष्णोऽष्टम्यां नभसि तु शितौ चाश्विने यद्दशम्यां बुद्धः कल्की नभसि समभूच्छुक्लषष्ठ्यां क्रमेण॥ अह्नोर्मध्ये वामनो रामरामौ मत्स्यः क्रोडश्चापराह्णे विभागे॥ कूर्मः सिंहो बौद्धकल्की च सायं कृष्णो रात्रौ कालसाम्ये च पूर्वे॥ २॥" इति। केचित्तु स्फुटान् श्लोकान् पठन्ति। तथा-"चैत्रे तु शुक्लपञ्चम्यां भगवान्मीनरूपधृक्॥ ज्येष्ठे तु शुक्लद्वादश्यां कूर्मरूपधरो हरिः चैत्रे कृष्णे नवम्यां तु हरिर्वाराहरूपधृक्॥ नरसिंहश्चतुर्दश्यां वैशाखे शुक्लपक्षके॥ मासि भाद्रपदे शुक्लद्वादश्यां वामनो हरिः। राधशुद्धतृतीयायां रामो भार्गवरूपधृक्॥ चैत्रशुक्लनवम्यां तु रामो दशरथात्मजः। नभस्ये तु द्वितीयायां बलभद्रोऽभवद्धरिः॥ श्रावणे बहुलेऽष्टम्यां कृष्णोऽभूल्लोकरक्षकः। ज्येष्ठे शुक्लद्वितीयायां बौद्धः कल्की भविष्यति॥" इति। कौंकणास्तु वराहपुराणस्थानि वाक्यानि पठन्ति-

---

१२, ऋतु ६, संक्रान्ति १२, अनन्त्य आषाढ़, कार्तिक, माघ और वैशाखकी पूर्णिमासी ४ अपरपक्ष (कन्यागत) १६, नवान्न २, मन्वादि १४, युगादि ४, ये सब जोडनेसे बहत्तर होते हैं। चैत्रशुक्ल तृतीया ही मत्स्यजंयती होती है। यहां ही प्रसंगसे दश अवतारोंकी जयन्तियोंका निर्णय लिखते हैं। वे पुराणसमुच्चयमें लिखी हैं, कि, चैत्रशुक्ल तृतीयाके दिन मत्स्य, वैशाखकी अमावस्याके दिन कूर्म, श्रावण शुक्ल षष्ठीके दिन वाराह, वैशाख शुक्ल चतुर्दशीके दिन नृसिंह, भाद्रपद शुक्ल द्वादशीके दिन वामन, वैशाख शुक्ल तृतीयाके दिन परशुराम, चैत्र शुक्ल नवमीके दिन रामचन्द्र, भाद्रपद कृष्ण अष्टमीके दिन श्रीकृष्ण, आश्विन शुक्ल दशमीके दिन बुद्ध और श्रावण शुक्ल छठीके दिन कल्की अवतार क्रमसे हुए होंगे। और वामन, परशुराम, रामचन्द्र ये तीनों मध्याह्नमें, मत्स्य, वराह अपराह्णमें, कूर्म, नरसिंह, बुद्ध, कल्की ये चारों सायंकालमें जानने और श्रीकृष्णचन्द्र अर्द्धरात्रके समय हुए, कोई आचार्य इन स्फुट (प्रकट) श्लोकोंको इस प्रकार पढते हैं कि, चैत्रशुक्ल पंचमीको भगवान् मत्स्यरूप, ज्येष्ठ शुक्ल द्वादशीको कच्छपरूप, चैत्र शुक्ल नवमीको वाराहरूप, वैशाख शुक्ल द्वादशीको नरसिंहजी, भाद्रपद शुक्ल द्वादशीको वामनजी, वैशाख शुक्ल तृतीयाको परशुराम, चैत्र शुक्ल नवमीको राजा रामचन्द्रजी, भाद्रपदकी द्वितीयाको बलरामजी, श्रावण कृष्ण अष्टमीको लोकोंके रक्षक श्रीकृष्णचन्द्रजी और ज्येष्ठ शुक्ल द्वितीयाको बुद्ध और कल्की अवतार होंगे, कौंकण देशके वासी तो वाराहपुराणके इन वाक्योंको कहते हैं कि,

"आषाढे शुक्लपक्षे तु एकादश्यां महातिथौ ॥ जयन्ती मत्स्यनाम्नीति तस्यां कार्यमुपोषणम् ॥ नभोमासि तृतीयायां हरिः कमठरूपधृक् । नभस्यशुक्लपञ्चम्यां वराहस्य जयन्तिका ॥ वैशाखे तु चतुर्दश्यां नृसिंहः समपद्यत । मासि भाद्रपदे शुक्लैकादश्यां वामनो हरिः ॥ वैशाखे शुक्लपक्षे तु तृतीयायां भृगूद्वहः । चैत्रे नवम्यां रामोऽभूत्कौसल्यायां परः पुमान् ॥ श्रावणे बहुलेऽष्टम्यां वासुदेवो जनार्दनः ॥ पौषशुक्ले तु सप्तम्यां कुर्याद्बौद्धस्य पूजनम् ॥ माघशुक्लतृतीयायां कल्किनः पूजनं हरेः ॥ प्रातः प्रातस्तु मध्याह्ने सायं सायं तथा निशि॥मध्याह्ने मध्यरात्रे च सायं प्रातरनुक्रमात्॥" ॥ ६ ॥ इति । तदत्र समूलत्वनिर्णये सति कल्पभेदेन व्यवस्था द्रष्टव्या । एताश्च तदुपासकानां नित्याः अन्येषां तु काम्याः । जन्माष्टम्यादौ तु विशेषं वक्ष्यामः ॥ चैत्रशुक्लपञ्चमीनिर्णयः । चैत्रशुक्लपञ्चमी कल्पादिः । तदुक्तं हेमाद्रौ मात्स्ये—"ब्रह्मणो या दिनस्यादिः कल्पादिः सा प्रकीर्तिता ॥ वैशाखस्य तृतीया या कृष्णा या फाल्गुनस्य च ॥ पञ्चमी चैत्रमासस्य तथैवान्त्या तथापरा ॥ शुक्ला त्रयोदशी माघे कार्तिकस्य तु सप्तमी ॥ नवमी मार्गशीर्षस्य सप्तैताः संस्मराम्यहम् । "कल्पानामादयो ह्येता दत्तस्याक्षयकारकाः॥" अत्र सर्वोऽपि निर्णयो मन्वादिवज्ज्ञेयः । हेमाद्रौ ब्राह्मे—"शुक्लायामथ पञ्चम्यां चैत्रे मासि शुभानना । श्रीर्ब्रह्मलोकान्मानुष्यं सम्प्राप्ता केश-

---

आषाढ शुक्ल एकादशी महातिथि मत्स्यनाम जयंती है उसमें व्रत करे। श्रावणकी तृतीयामें कच्छप भगवान्का व्रत करे और भाद्रपदशुक्ल पञ्चमीको वाराहजयन्ती । वैशाख शुक्ल चतुर्दशीको नृसिंहजयन्ती । वैशाख शुक्ल एकादशीको वामनजयंती । चैत्र शुक्ल नवमीको रामचन्द्रजयंती, श्रावणकृष्ण अष्टमीको श्रीकृष्णचन्द्रजयंती होती है । पौष शुक्ल सप्तमीको बौद्धका, माघ शुक्ल तृतीयाको कल्की भगवान्का पूजन करना चाहिये। और ये पूर्वोक्त दशों अवतार क्रमसे उक्त तिथियोंमें हुए हैं कि, प्रातःकाल १, प्रातःकाल२, मध्याह्न ३, सायंकाल ४, सायंकाल ५, रात्रिमें ६, मध्याह्नमें ७, अर्द्धरात्रि ८, सायंकाल ९, प्रातःकाल १० इससे यहां प्रमाणका निर्णय होनेपर कल्पके भेदसे व्यवस्था देखनी चाहिये और ये अवतारोंकी तिथि उस उस अवतारके उपासकोंको नित्य हैं (सदैव करनी चाहिये) और दूसरोंको काम्य हैं अर्थात् कामना हो तो करनी । जन्माष्टमी आदिकोंमें विशेष लिखेंगे । चैत्रशुक्ल पंचमी कल्पादि है, सोई हेमाद्रिमें मत्स्यपुराणका वाक्य है कि, ब्रह्माके दिनको प्रथम तिथि कल्पादि कहलाती है। वैशाख तृतीया और फाल्गुन कृष्ण तृतीया और चैत्रमासकी दोनों पंचमी, माघ शुक्ल त्रयोदशी और कार्तिककी सप्तमी और मार्गशिरकी नवमी इन सातोंका मैं स्मरण करता हूं । कारण कि, ये सातों कल्पकी आदि हैं, इनमें दान करनेका अक्षय फल होता है, इन सबका निर्णय मन्वादि तिथियोंके तुल्य जानना चाहिये । हेमाद्रिमें ब्रह्मपुराणका वाक्य है कि, चैत्रशुक्ल पंचमीके दिन लक्ष्मीने ब्रह्मलोकसे मनुष्यलोकमें आगमन किया, उस दिन जो कोई लक्ष्मीका अर्चन करता

वाञ्छया ॥ अतस्तां पूजयेत्तत्र यस्तं लक्ष्मीर्न मुञ्चति ॥" चैत्रशुक्लाष्टमीनिर्णयः । चैत्रशुक्लाष्टम्यां भवान्या उत्पत्तिः तत्र नवमीयुता ग्राह्या । 'अष्टमी नवमीयुता' इति ब्रह्मवैवर्तात् । अत्र भवानीयात्रोक्ता काशीखण्डे-"भवानीं यस्तु पश्येत शुक्लाष्टम्यां मधौ नरः । न जातु शोकं लभते सदानन्दमयो भवेत् ॥". इति । अत्रैवाशोककलिकाप्राशनमुक्तं हेमाद्रौ लैंगे-"अशोककलिकाश्चाष्टौ ये पिबन्ति पुनर्वसौ ॥ चैत्रे मासि सितेऽष्टम्यां न ते शोकमवाप्नुयुः ॥ प्राशनमन्त्रस्तु-"त्वामशोकवराभीष्टं मधुमाससमुद्भवम् । पिबामि शोकसन्तप्तो मामशोकं सदा कुरु ॥" इति । अत्र विशेषः पृथ्वीचन्द्रोदये विष्णुः-"पुनर्वसुबुधोपेता चैत्रे मासि सिताष्टमी । प्रातस्तु विधिवत्स्नात्वा वाजपेयफलं लभेत् ॥" इति । तिथितत्त्वे कालिकापुराणे-"चैत्रे मासि सिताष्टम्यां यो नरो नियतेन्द्रियः । स्नायाल्लौहित्यतोयेषु स याति ब्रह्मणः पदम् ॥ चैत्रे तु सकलं मासं शुचिः प्रयतमानसः । लौहित्यतोये यः स्नायात्स कैवल्यमवाप्नुयात् ॥" लौहित्यो ब्रह्मपुत्रः । मन्त्रस्तु-"ब्रह्मपुत्र महाभाग शंतनोः कुलसंभव । अमोघगर्भसम्भूत पापं लौहित्य मे हर ॥" श्रीरामनवमीनिर्णयः । चैत्रशुक्लनवमी रामनवमी । तदुक्तमगस्त्यसंहितायाम्-"चैत्रे नवम्यां प्राक्पक्षे दिवा पुण्ये पुनर्वसौ । उदये गुरुगौराश्वोः स्वोच्चस्थे ग्रहपञ्चके ॥ मेषे पूषणि सम्प्राप्ते लग्ने

है उसको कभी लक्ष्मी नहीं त्यागती । चैत्रशुक्ल अष्टमीको भवानीकी उत्पत्ति हुई, वह नवमीयुक्त लेनी चाहिये । कारण कि, ब्रह्मवैवर्तपुराणमें यह लिखा है कि, अष्टमी नवमीसंयुक्त, और नवमी अष्टमीसंयुक्त लेनी और इसमें भवानीकी यात्रा भी काशीखण्डमें लिखी है कि, जो मनुष्य चैत्र शुक्ल अष्टमीको भवानीका दर्शन करता है वह कभी भी शोकको प्राप्त नहीं होता, सदा आनन्दमय रहता है, इसीमें अशोक वृक्षकी कलिका भी भक्षण करनी । हेमाद्रिमें लिंगपुराणके कथनसे कहा है, जो मनुष्य पुनर्वसु नक्षत्रमें और चैत्रशुक्ल अष्टमीके दिन आठ अशोककी कलिकाओंको भक्षण करते हैं वे शोकको नहीं प्राप्त होते और अशोकका मंत्र यह है कि, अशोकवर ! चैत्रमें उत्पन्न हुए तुमको अपने अभीष्ट शोकसे तप्त हुआ मैं पान करता हूं, तुम मुझे सदैव अशोक करो, इसमें विशेष पृथ्वीचन्द्रोदयमें विष्णुने सिद्धिके निमित्त लिखा है कि, पुनर्वसु और बुधसे युक्त चैत्रशुक्ल अष्टमीको प्रभातकाल विधिसे स्नान करके वाजपेय यज्ञका फल मिलता है । तिथितत्त्वमें कालिकापुराणका कथन है कि, जो मनुष्य जितेंद्रिय होकर चैत्रशुक्ल अष्टमीको ब्रह्मपुत्रके जलमें स्नान करता है उसकी ब्रह्मलोकमें गति होती है । जो मनुष्य मनको नियम कर चैत्रभर ब्रह्मपुत्रमें स्नान करता है उसकी मुक्ति होती है। स्नानका मंत्र यह है कि, हे शंतनुके वंशमें उत्पन्न हुए ब्रह्मपुत्र ! हे अमोघके गर्भसे उत्पन्न ! मेरे पापको दूर करो । चैत्रशुक्ल नवमीको रामनवमी होती है वही अगस्त्यसंहितामें लिखा है कि, चैत्रशुक्ल नवमीको मध्याह्नसे प्रथम पवित्र पुनर्वसुनक्षत्रमें और बृहस्पति तथा सूर्यके उदयमें और पांच ग्रहोंके उच्च-

कर्कटकाह्वये ॥ आविरासीत्स कलया कौसल्यायां परः पुमान् ॥ तस्मिन्दिने तु कर्तव्यमुपवासव्रतं सदा। तत्र जागरणं कुर्याद्रघुनाथपरो भुवि ॥ ३ ॥" इति। इयं च मध्याह्नयोगिनी ग्राह्या-"चैत्रशुक्ले तु नवमी पुनर्वसुयुता यदि। सैव मध्याह्नयोगेन महापुण्यतमा भवेत् ॥" इति तत्रैवोक्तेः। तथा-"चैत्रमासे नवम्यां तु जातो रामः स्वयं हरिः। पुनर्वस्वृक्षसंयुक्ता सा तिथिः सर्वकामदा ॥ श्रीरामनवमी प्रोक्ता कोटिसूर्यग्रहाधिका ॥". तथा-" केवलापि सदोपोष्या नवमी शब्दसंग्रहात्। तस्मात्सर्वात्मना सर्वैः कार्यं वै नवमीव्रतम् ॥" पूर्वेद्युरेव मध्याह्नयोगे कर्मकालव्याप्तेः सैव ग्राह्या। दिनद्वये मध्याह्नव्याप्तौ तदभावे वा पूर्वदिने पुनर्वस्वृक्षयुक्तामपि त्यक्त्वा परैव कार्या। तदुक्तं माधवीयेऽगस्त्यसंहितायाम्-"नवमी चाष्टमी विद्धा त्याज्या विष्णुपरायणैः। उपोषणं नवम्यां च दशम्यां चैव पारणम् ॥" इति। अष्टमीविद्धा सऋक्षापि नोपोष्येति माधवः। रामार्चनचन्द्रिकायामपि-"विद्धैव चेदृक्षयुक्ता व्रतं तत्र कथं भवेत्। विद्धा निषिद्धश्रवणान्नवमी चेति वाक्यतः। वैष्णवानां विशेषात्तु तत्र विष्णुपरैरपि। दशम्यादिषु वृद्धिश्चेद्विद्धा त्याज्यैव वैष्णवैः। तदन्येषां च सर्वेषां व्रतं तत्रैव निश्चितम् ॥ २ ॥" इति। अत्र-'दशम्यादिषु वृद्धिश्चेत्' इति। 'तदन्येषाम्' इति च वदन् यदा प्रातस्त्रिमुहूर्ता नवमी

स्थके समयमें मेषके सूर्य, कर्क लग्नमें अपनी कलाओंसहित परमात्मा कौसल्याके उदरमें प्रकट हुए। उस दिन सदैव व्रत करना और भगवान्का भक्त उस दिन पृथ्वीपर शयन कर जागरण करे और यह मध्याह्नव्यापिनी ग्रहण की है। कारण कि, यह वहां ही लिखा है कि, चैत्रशुक्ल पक्षकी नवमी जो पुनर्वसुनक्षत्रसे युक्त हो तो वह मध्याह्नके योगसे अत्यन्त पवित्र होती है। इसी प्रकार ये वाक्य हैं कि, चैत्रमासकी नवमीको रामचन्द्रभगवान् स्वयं प्रकट हुए और पुनर्वसुनक्षत्रयुक्त वह तिथि सब मनोरथोंको देती है। वही श्रीरामनवमी सूर्यके कोटियों ग्रहणोंसे अधिक पुण्यफलयुक्त होती है, लिखा भी है कि केवल नवमीका भी सदैव व्रत करे, कारण कि, जहां तहां वाक्योंमें नवमी यह शब्द पढ़ा है, इससे भले प्रकार श्रद्धासे नवमीका व्रत करे। यदि पहले दिन ही मध्याह्नका योग हो तो कर्मसमयमें होनेसे वही ग्रहण करनी चाहिये, यदि दोनों दिन मध्याह्नमें पूर्ण हो वा नहीं हो तो पुनर्वसु नक्षत्रसे युक्त भी प्रथम दिनकी नवमीको छोड़कर परली ही करनी चाहिये। सोई माधवीयग्रन्थमें अगस्त्यसंहिताके वाक्यसे लिखा है कि, विष्णुके भक्तोंको अष्टमीसे मिली नवमी नहीं करनी और नवमीको व्रत और दशमीको पारणा करे। माधवने भी लिखा है कि, नक्षत्रसहित भी अष्टमीसे विद्ध नवमीको व्रत न करे। रामार्चनचन्द्रिकामें भी कहा है कि, अष्टमीसे विद्धा भी नवमी नक्षत्रयुक्त हो तो उसमें व्रत किस प्रकार हो, विद्धाके निषेध सुननेसे और नवमी इस वाक्यसे और वैष्णवोंको विशेषसे विष्णुके भक्त भी दशमी आदिकी वृद्धि हो तो वैष्णवोंको विद्धा तो छोड़नी ही चाहिये और वैष्णवोंसे और सबको भी इन दो वाक्योंसे यह कथन किया कि, जब प्रातःकालमें नवमी तीन मुहूर्त्त हो और दशमी

दशमी च क्षयवशात् सूर्योदयात् प्रागेव समाप्यते तदा स्मार्त्तानां तत्रैव एकादशी- निमित्तोपवासात् नवमीव्रतांगपारणालोपः स्यात् । अतोऽष्टमीविद्धैव स्मार्तैः कार्या । वैष्णवानां त्वरुणोदयविद्धैकादश्या हेयत्वान्न पारणालोपप्रसंग इति द्वितीयैव तैः कार्येति सूचयति । 'दशमी वृद्ध्यभावेऽष्टमीविद्धाया एव मध्याह्नव्यापित्वे क्षये च वैष्णवैरपि विद्धैवोपोष्या ' इत्यर्थसिद्धम् । इदं च व्रतं संयोगपृथक्त्वन्यायेन काम्यं नित्यं च । तदुक्तं हेमाद्रावगस्त्यसंहितायाम्—"उपोषणं जागरणं पितॄनुद्दिश्य तर्पणम् । तस्मिन्दिने तु कर्तव्यं ब्रह्मप्राप्तिमभीप्सुभिः । सर्वेषामप्ययं धर्मो भुक्ति- मुक्त्येकसाधनः । अशुचिर्वापि पापिष्ठः कृत्वेदं व्रतमुत्तमम् । पूज्यः स्यात्सर्वभू- तानां यथा रामस्तथैव सः । यस्तु रामनवम्यां तु भुङ्क्ते मोहाद्विमूढधीः । कुम्भी- पाकेषु घोरेषु पच्यते नात्र संशयः ॥ ४ ॥" तथा—"अकृत्वा रामनवमीव्रतं सर्व- व्रतोत्तमम् । व्रतान्यन्यानि कुरुते न तेषां फलभाग्भवेत् । प्राप्ते श्रीरामनवमीदिने मर्त्यो विमूढधीः । उपोषणं न कुरुते कुम्भीपाकेषु पच्यते ॥ २ ॥" अत्र केचित्—'तदुपासकानामेवेदं नित्यं न त्वन्येषाम्' इत्याहुः । अन्ये तु—'अकरणे दोष- श्रवणात् (तस्मात्सर्वात्मना सर्वैः कार्यं वै नवमीव्रतम्) इति पूर्वोक्तवचनाच्च जन्मा- ष्टम्यादिवदिदमपि सर्वेषां नित्यम् । अन्यथा जन्माष्टम्यादावपि तदुपासकानामेव

क्षयके वशसे सूर्योदयसे प्रथम ही पूर्ण हो जाय तब स्मार्त्तोंको एकादशीका व्रत उसी दिन होनेसे नवमीके व्रत अंग पारणाका लोप हो जायगा, इससे स्मार्त्तोंको अष्टमीविद्धा नवमीका व्रत करना चाहिये, वैष्णवोंको तो अरुणोदयविद्धा एकादशीका त्याग है इससे पारणाके लोपका प्रसंग नहीं है इससे वे दूसरी ही करें और दशमीकी वृद्धि न हो तो अष्टमीसे विद्धाके तुल्य मध्याह्नव्यापिनी हो वा क्षय हो तो वैष्णवोंको भी विद्धाका ही व्रत करना यह बात अर्थसिद्ध है । और यह व्रत संयोग (अष्टमीका मेल) और पृथक्त्व (केवलत्व) न्यायसे इष्ट है और नित्य है । सोई हेमाद्रिमें अगस्त्यसंहिताका कथन है कि, व्रत, जागरण, पितरोंका तर्पण इनको ब्रह्मप्राप्तिकी इच्छावाले मनुष्य नवमीके दिन करें, भुक्ति और मुक्तिके निमित्त यह सबके निमित्त धर्म कहा है, अशुद्ध हो वा पापात्मा हो इस श्रेष्ठ व्रतको करके मनुष्य सब प्राणियोंको रामचन्द्रके समान पूज्य होता है, जो मूढबुद्धि रामनवमीके दिन अज्ञानसे भोजन करता है वह कुम्भीपाकनरकमें जाता है, इसमें सन्देह नहीं। कहा भी है कि, सब व्रतोंमें श्रेष्ठ रामनवमीके व्रतको त्यागकर जो मनुष्य और व्रतोंको करता है उसको उनका फल नहीं मिलता। जो मूर्ख मनुष्य रामनवमीके दिन व्रत नहीं करता वह कुम्भीपाक नरकोंमें पक जाता है। इसमें किसीने यह कहा है कि, रामचन्द्रके उपासकोंको ही यह व्रत नित्य करना चाहिये, औरोंको नहीं। और दूसरे तो यह कहते हैं कि, न करनेमें दोषके सुननेसे सब प्रकार सबको ही नवमीव्रत करना चाहिये। इस पूर्वोक्त वाक्यसे जन्माष्टमी आदिके तुल्य यह भी सबको नित्य करनी है, अन्यथा

नित्यतां वक्तुः को वारयिता' इत्याहुः। अत्र विशेषो हेमाद्रावगस्त्यसंहितायाम्—"आचार्यं चैव संपूज्य वृणुयात्प्रार्थयेन्निशि। श्रीरामप्रतिमादानं करिष्येऽहं द्विजोत्तम॥ भक्त्याचार्यो भव प्रीतः श्रीरामोऽसि त्वमेव च॥" श्रीरामपूजाविधिः। तथा—'स्वगृहे चोत्तरे देशे दानस्योज्ज्वलमण्डपम्। शंखचक्रहनूमद्भिः प्राग्द्वारे समलंकृतम्॥ गरुत्मच्छार्ङ्गबाणैश्च दक्षिणे समलंकृतम्। गदाखड्गांगदैश्चैव पश्चिमे सुविभूषितम्॥ पद्मस्वस्तिकनीलैश्च कौबेर्यां समलंकृतम्। मध्ये हस्तचतुष्काढवेदिकायुक्तमायतम्॥ ततः सङ्कल्पयेद्देवं राममेव स्मरन्मुने। अस्यां रामनवम्यां च रामाराधनतत्परः॥ उपोष्याष्टसु यामेषु पूजयित्वा यथाविधि। इमां स्वर्णमयीं रामप्रतिमां च प्रयत्नतः॥ श्रीरामप्रीतये दास्ये रामभक्ताय धीमते। प्रीतो रामो हरत्वाशु पापानि सुबहूनि मे॥ अनेकजन्मसंसिद्धान्यभ्यस्तानि महान्ति च। ततः स्वर्णमयीं रामप्रतिमां पलमात्रतः॥ निर्मितां द्विभुजां दिव्यां वामाङ्कस्थितजानकीम्। बिभ्रतीं दक्षिणकरे ज्ञानमुद्रां महामुने॥ वामेनाधः करेणाराद्देवीमालिंग्य संस्थिताम्। सिंहासने राजतेऽत्र पलद्वयविनिर्मिते॥ ९॥' तथा—"अशक्तो यो महाभाग स तु वित्तानुसारतः। पलेनार्धतदर्धार्धतदर्धार्धेन वा मुने॥

जन्माष्टमी आदिको भी कृष्णके उपासकोंको ही नित्य कथन करनेवाला कौन निषेध करेगा? इसमें विशेष हेमाद्रिमें अगस्त्यसंहिताके वाक्यसे कहा है कि, आचार्यका पूजन और प्रार्थना करके वरण करे कि, हे द्विजोंमें श्रेष्ठ! मैं श्रीरामचन्द्रकी प्रतिमाका दान भक्तिपूर्वक करूंगा, तुम मेरे आचार्य हो और आप ही श्रीराम हो। इसी प्रकार अपने घरकी उत्तरदिशामें दानका उज्ज्वल मण्डप इस प्रकार बनावे कि, जिसके पूर्वद्वारके आगे शंख, चक्र, महावीरकी प्रतिमा शोभित हो और दक्षिणके द्वारपर गरुड, शार्ङ्ग, बाण शोभित हो और पश्चिमका द्वार गदा, खड्ग, अंगदसे शोभित हो, उत्तरका द्वार पद्म, स्वस्तिक, नीलमणिसे शोभित हो, जिसका मध्यभाग चार हाथ तथा और वेदियोंसे युक्त हो। हे मुने! फिर रामचन्द्रका स्मरण करता हुआ देव रामचन्द्रका संकल्प करे कि, इस रामनवमीको रामकी सेवामें तत्पर मैं आठ प्रहर उपवास और यथाविधि पूजन करके इस स्वर्णकी प्रतिमाको प्रयत्नसे श्रीरामकी प्रीतिके निमित्त बुद्धिमान् रामचन्द्रके भक्तके निमित्त देता हूं, प्रसन्न हुए रामचन्द्र मेरे बहुत और अनेक जन्मोंके किये बड़े बड़े पापोंको दूर करें। फिर सुवर्णकी एक पलकी इस प्रकार प्रतिमाको बनावे जिसके दो भुजा हों और बायें अंगमें जानकी हो और जानकीके दक्षिण करमें हे महामुने! इस प्रकार ज्ञानमुद्रा हो जो बांये हाथके नीचेसे देवी (जानकीका) स्पर्श किये स्थित हो और जो मूर्ति दो पल सुवर्णसे बने हुए सिंहासनपर स्थित हो, वैसे ही हे महाभाग जो निर्धन हो वह अपने वित्तके अनुसार पल (चार कर्ष वा तोले)

सौवर्णं राजतं वापि कारयेद्रघुनन्दनम् । पार्श्वे भरतशत्रुघ्नौ धृतच्छत्रकरावुभौ ॥ चापद्वयसमायुक्तं लक्ष्मणं चापि कारयेत् । दक्षिणाङ्गे दशरथं पुत्रावेक्षणतत्परम् ॥ मातुरङ्कगतं राममिंद्रनीलसमप्रभम् । पञ्चामृतस्नानपूर्वं संपूज्य विधिवत्ततः ॥ ४ ॥" कौसल्यामन्त्रस्तु—"रामस्य जननी चासि रामरूपमिदं जगत् । अतस्त्वां पूजयिष्यामि लोकमातर्नमोऽस्तु ते ॥ नमो दशरथायेति पूजयेत्पितरं ततः ।" अत्र दशावरणपञ्चावरणादिपूजाऽन्यत्र ज्ञेया । "अशोककुसुमैर्युक्तमर्घ्यं दद्याद्विचक्षणः । दशाननवधार्थाय धर्मसंस्थापनाय च । राक्षसानां विनाशाय दैत्यानां निधनाय च ॥ परित्राणाय साधूनां जातो रामः स्वयं हरिः । गृहाणार्घ्यं मया दत्तं भ्रातृभिः सहितोऽनघ ॥ पुष्पांजलिं पुनर्दत्त्वा यामे यामे प्रपूजयेत् । दिवैवं विधिवत्कृत्वा रात्रौ जागरणं ततः ॥ ततः प्रातः समुत्थाय स्नानसंध्यादिकाः क्रियाः । समाप्य विधिवद्रामं पूजयेद्विधिवन्मुने ॥ ततो होमं प्रकुर्वीत मूलमन्त्रेण मन्त्रवित् । पूर्वोक्तपद्मकुण्डे वा स्थण्डिले वा समाहितः ॥ लौकिकाग्नौ विधानेन शतमष्टोत्तरं ततः । साज्येन पायसेनैव स्मरन्राममनन्यधीः ॥ ततो भक्त्या सुसन्तोष्य आचार्यं पूजयेन्मुने । ततो रामं स्मरन्दद्यादेवं मन्त्रमुदीरयेत् ॥ इमां स्वर्णमयीं रामप्रतिमां

वा पलका आधा वा उसके भी आधेसे हे मुने ! सोने वा चांदीके ऐसे रामचन्द्रको निर्माण करे, जिनके पास छत्र धारण किये भरत और शत्रुघ्न हों और दो धनुष धारण किये लक्ष्मण भी हो और पुत्रोंके देखनेमें तत्पर दशरथ दक्षिण भागमें हों और माताकी गोदीमें स्थित इन्द्रनीलमणिके तुल्य श्रीरामचन्द्रजी स्थित हों । फिर पंचामृतसे नहवानेके उपरान्त विधिसे पूजन करके कौशल्याके इस मन्त्रको उच्चारण करे । तुम रामकी माता हो और यह सब जगत् रामरूप है इससे मैं पूजन करता हूं । हे लोककी माता ! तुमको नमस्कार है, फिर 'दशरथाय नमः' इस मन्त्रसे पिताका पूजन करना चाहिये । यहां दश आवरण और पांच आवरण आदिकी पूजा और ग्रन्थोंमें लिखी जाननी चाहिये । बुद्धिमान् मनुष्य अशोकके फूलोंसे युक्त इस मन्त्रसे अर्घ दे कि, रावणके मारने और धर्मकी स्थिति और राक्षसोंके और दैत्योंके नाशके निमित्त और साधुओंकी रक्षाके निमित्त रामचन्द्र भगवान् प्रकट हुए, हे पापहीन राम ! मेरे दिये हुए इस अर्घको माताओं सहित आप ग्रहण कीजिये। फिर पुष्पांजलि देकर प्रत्येक प्रहरमें पूजन करे । इस प्रकार विधिसे दिनमें करके रात्रिको जागरण करे फिर सबेरे ही उठकर स्नान सन्ध्या आदि कर्मोंको पूर्ण करके विधिसे रामचन्द्रका पूजन करे। फिर मन्त्र जाननेवाला मूल मन्त्रसे पूर्वोक्त पद्मकुण्डमें वा वेदीपर लौकिक अग्निमें विधिसे एक सौ आठ १०८ होमको घी सहित खीरसे करे और रामचन्द्रका सावधानीसे स्मरण करे, फिर हे मुने ! भक्तिसे आचार्यको सन्तुष्ट करके पूजन करे, फिर रामका स्मरण और इस मन्त्रको

समलंकृताम् । चित्रवस्त्रयुगच्छन्नां रामोऽहं राघवाय ते ॥ श्रीरामप्रीतये दास्ये तुष्टो भवतु राघवः । इति दत्त्वा विधानेन दद्याद्वै दक्षिणां भुवम् । ब्रह्महत्यादिपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः ॥ १६ ॥" इति । तत्र मलमासप्राप्तौ व्रतनिषेधः । इयं मलमासे न कार्या । "सुजप्तमप्यजप्तं स्यान्नोपवासः कृतो भवेत् ।" इति ' न कुर्यान्मलमासे तु महादानव्रतानि च ' इति च माधवीये संग्रहवचनात् । ननु रामनवमीव्रतस्य नित्यत्वादेकादशीवन्मलमासेऽपि कर्तव्यता स्यादिति चेत् ॥ अत्र ब्रूमः-'नैकादश्युपवासस्य व्रतत्वेन प्राप्तिः । किंतु-'एकादश्यां न भुञ्जीत पक्षयोरुभयोरपि ' इत्यादिनिषेधस्य मलमासेपि पालनीयत्वात् कृष्णैकादश्यां पुत्रवद्गृहिण इवार्थादुपवासः प्रसज्यते । न त्विह तथेति व्रतत्वेन प्राप्तिर्वाच्या । सा च निषिद्धेत्यप्रसंगः । ' स्पष्टमासविशेषाख्याविहितं वर्जयेन्मले ' इति निषेधाच्च ॥ एवं जन्माष्टम्यादावपि बोद्धव्यम् ॥ इति रामनवमी ॥ चैत्रशुक्लैकादशीनिर्णयः । चैत्रशुक्लैकादश्यां दोलोत्सव उक्तो ब्राह्मे-" चैत्रमासस्य शुक्लायामेकादश्यां तु वैष्णवैः । आंदोलनीयो देवेशः सलक्ष्मीको महोत्सवैः " इति ॥ चैत्रशुक्लद्वादशीनिर्णयः । चैत्रशुक्लद्वादश्यां दमनोत्सवः । " द्वादश्यां चैत्रमासस्य शुक्लायां दमनोत्सवः । बौधायनादिभिः प्रोक्तः कर्तव्यः प्रतिवत्सरम् ॥" इति रामार्चनचन्द्रिकोक्तेः ।

पढ़ता हुआ यह कहे कि,इस शोभित और सुवर्णकी चित्र वस्त्रोंसे युक्त प्रतिमाको जो रामरूप मैं और राघवरूप आपको श्रीरामकी प्रीतिके निमित्त देता हूं उससे श्रीराम मेरे ऊपर प्रसन्न हों, इस प्रकार विधिसे प्रदान कर भूमिकी दक्षिणा देनेसे ब्रह्महत्यादि पापोंसे मुक्त होता है, इसमें सन्देह नहीं । यह रामनवमी मलमासमें न करनी । कारण कि, माधवग्रन्थमें संग्रहका यह वाक्य लिखा है-जो मलमासमें रामनवमीका व्रत करता है उसका जप और व्रत दोनों वृथा होते हैं । इसमें कोई यह लिखते हैं कि, रामनवमीके व्रतको नित्य होनेसे एकादशीके तुल्य मलमासमें भी करना चाहिये । इस शंकाके उत्तरमें हमको यह कहना है कि,एकादशीके व्रतकी प्राप्ति व्रत होनेसे नहीं, किन्तु दोनों पक्षकी एकादशीको भोजन न करे। यह निषेध मलमासमें भी मानने योग्य है । इससे जैसे कृष्णपक्षकी एकादशीको पुत्रवाले गृहस्थीको करना लिखा है, इसी प्रकार यहां नहीं । इससे रामनवमीका व्रत होनेसे मलमासमें प्राप्ति कहोगे, वह निषिद्ध है, इस कारण मलमासमें रामनवमीका प्रसंग ही नहीं होसकता । और यह निषेध भी है कि,जिस व्रतका महीना स्पष्ट लिखा हो उसको मलमासमें त्याग देना चाहिये । इसी प्रकार जन्माष्टमी आदिमें भी जानना चाहिये । इति रामनवमी । चैत्रशुक्ल एकादशीको ब्रह्मपुराणमें हिंडोलेका उत्सव लिखा है कि, चैत्रसुदी एकादशीको वैष्णव लोग लक्ष्मीसहित विष्णुको बड़े प्रेमसे झुलावें । चैत्रसुदी द्वादशीको दमनका उत्सव होता है, कारण कि रामार्चनचन्द्रिकामें लिखा है-चैत्रसुदी द्वादशीको बौधायन

" ऊर्जे व्रतं मधौ दोला श्रावणे तन्तुपूजनम् । चैत्रे च दमनारोपमकुर्वाणो व्रजत्यधः ॥ " इति तत्रैव पाद्मवचनाच्च ॥ शिवभक्तादिभिस्तु चतुर्दश्यादौ कार्यम् । " तत्र स्यात्स्वीयतिथिषु वह्न्यादेर्दमनार्पणम् " इति तत्रैवोक्तेः ॥ ज्योतिःप्रकाशेऽपि—"स्वस्वदेवप्रतिष्ठायां मन्त्रसंग्रहणे तथा । पवित्रदमनारोपे ग्राह्या तत्तत्तिथिर्बुधैः ॥ " तिथयस्तु—"वह्निर्विरिश्चो गिरिजा गणेशः फणी विशाखो दिनकृन्महेशः । दुर्गान्तको विश्वहरिः स्मरश्च शर्वः शशी चेति तिथीषु पूज्याः " इत्युक्ताः ॥ दमनारोपणविधिः । अथागमोक्तदीक्षावतो दमनारोपणविधिः । रामार्चनचन्द्रिकायाम्—"तत्रैकादश्याम् । क्रियालोपविघातार्थं यत्त्वया विहितं प्रभो । न मे विघ्नो भवेदत्र कुरु नाथ दयां मयि ॥ सर्वथा सर्वदा विष्णो मम त्वं परमा गतिः । उपवासेन त्वां देव तोषयामि जगत्पते ॥ कामक्रोधादयोऽप्येते न मे स्युर्व्रतघातकाः । अद्यप्रभृति देवेश यावद्वैशेषिकं दिनम् ॥ तावद्रक्षा त्वया कार्या सर्वस्यास्य जगत्पते ॥ ३ ॥ " इति देवं संप्रार्थ्य दमनमादाय पञ्चगव्येन प्रोक्ष्य वारिणा प्रक्षाल्याशोकमूले देवाग्रे वा "अशोकाय नमस्तुभ्यं कामस्त्रीशोकनाशन । शोकार्त्तिं हर मे नित्यमानन्दं जनयस्व मे । " इत्यशोकम् ॥ " त्रुट्यादिकालपर्यन्तः काल-

---

आदिके लिखे हुए दमनोत्सवको प्रतिवर्षमें करना चाहिये। और वहां ही पद्मपुराणका यह वाक्य है कि, कार्तिकमें व्रत, चैत्रमें हिंडोला, श्रावणमें तन्तुपूजन, चैत्रमें दमनारोप जो मनुष्य नहीं करते वे नरकमें जाते हैं। शिवजीके भक्त आदिको तो चतुर्दशी तिथिके आदिमें दमनारोप करना चाहिये । कारण कि, अपनी अपनी तिथिमें उसी स्थलमें यह कहा है कि, अग्नि आदि देवताओंका दमनार्पण होता है । ज्योतिःप्रकाशमें भी लिखा है कि, अपने देवताओंकी प्रतिष्ठा मन्त्रग्रहणमें पवित्र दमनारोपणमें वही २ तिथि लेनी। प्रतिपदा आदि तिथियोंको क्रमसे अग्नि, ब्रह्मा, पार्वती, गणेश, सर्प, स्वामिकार्तिक, सूर्य, शिवजी, दुर्गा, यम, विश्वेदेव, हरि, कामदेव, शिवजी, चन्द्रमा ये देवता पूजने चाहिये । कारण कि, उपरोक्त तिथियोंके ये ही देवता हैं। वेदोक्त दीक्षावालेकोको दमनारोपणकी विधि रामार्चनचन्द्रिकामें कही है, सो लिखते—हे प्रभो ! एकादशीको कर्मलोपकी विधिके निमित्त जो तुमने कहा है वह विघ्न मुझे इस कर्ममें न हो, हे प्रभो ! मेरे ऊपर कृपा करो और सब प्रकार सब कालमें मेरी गति हो. हे देव ! हे जगत्के पति ! हे स्वामिन् ! मैं तुम्हें व्रतसे प्रसन्न करता हूं,व्रत नष्ट करनेवाले काम क्रोध आदि मुझे न हों,आजसे लेकर जबतक देवशयन हो तबतक हे जगत्पते ! तुम सब जगत्की पालना करो । इस प्रकार देवकी प्रार्थना करके दमनको ले पञ्चगव्यसे सींचे जलसे धोकर अशोकवृक्षकी जड़में अथवा देवताके आगे यह मन्त्र पढ़कर इनका पूजन करे और कहे कि हे अशोक ! हे कामदेवकी स्त्रीके शोक नाश करनेवाले ! आपको नमस्कार है,मेरे शोकको नष्ट करो और प्रसन्नताको दो।इस मंत्रसे अशोकको त्रुटि (तीन क्षण)से लेकर जो महाबलकाल पर्यंत कालरूप सबको नष्ट करता है उस

रूपो महाबलः। कलते चैव यः सर्वं तस्मै कालात्मने नमः ॥" इति कालम् ॥ "वसन्ताय नमस्तुभ्यं वृक्षगुल्मलताश्रय । सहस्रमुखसंवास कामरूप नमोऽस्तु ते "॥ इति वसन्तम् । "कामभस्मसमुद्भूत रतिबाष्पपरिप्लुत । ऋषिगन्धर्वदेवादि-विमोहक नमोऽस्तु ते ॥" इति दमनं च संपूज्य । "नमोऽस्तु पञ्चबाणाय जगदाह्लादकारिणे । मन्मथाय जगन्नेत्रे रतिप्रीतिप्रियाय ते" ॥ इति दमनमुपस्थाय । ॐ कामाय नम इति संपूज्य निशायां देवताग्रे पञ्चवर्णैः चन्दनेन वा अष्टदलं कृत्वा बहिश्चतुरस्रं तद्बहिर्वर्तुलत्रयं तद्बहिर्वृत्तं चतुरस्रं च कृत्वा तत्र कुंभं संस्थाप्योपरि दमनं पूजयित्वा । " पूजार्थं देवदेवस्य विष्णोर्लक्ष्मीपतेः प्रभोः । मदन त्वमिहागच्छ सान्निध्यं कुरु ते नमः ।" ॐ क्लीं कामदेवाय नमः । ॐ ह्रीं रत्यै नमः इत्यावाह्य । दिक्षु पूर्वादितः–स्मरशरीराय नमः । अनंगाय०, मन्मथाय०, कामाय०, क्लीं वसन्तसखाय०, स्मराय०, इक्षुचापाय०, पुष्पास्त्राय नमः" । इति पूजयित्वा । 'ॐ तत्स्वरूपाय विद्महे कामदेवाय धीमहि । तन्नोऽनंगः प्रचोदयात्' । इत्यष्टोत्तरशतं संमंत्र्य पूजयित्वा । 'ह्रीं नमः' इति पुष्पाञ्जलिं दत्त्वा " नमोऽस्तु पुष्पबाणाय जगदाह्लादकारिणे । मन्मथाय जगन्नेत्रे रतिप्रीतिप्रियाय

कालरूपी ईश्वरके निमित्त नमस्कार है, इस मन्त्रसे कालको, वृक्ष, गुल्म, लता इनके आश्रय और सहस्र मुख सबमें निवास करनेवाले कामरूप वसंतको नमस्कार है,इस मन्त्रसे वसंतको, हे दमन! कामदेवकी भस्मसे तुम उत्पन्न हुए हो, रतिके आँसुओंसे युक्त और ऋषि गन्धर्व देवताओंको मोहित करनेवाले आपको नमस्कार है, इस मन्त्रसे भले प्रकार दमनका पूजन करके जगत्के आनन्द करनेवाले जगत्के नेत्र रतिके प्रिय कामदेवको नमस्कार है,इस मन्त्रसे दमनकी प्रार्थना करके, 'ॐ कामाय नमः' इस मन्त्रसे पूजन करके रात्रिको देवताके आगे पंचरत्न वा चन्दनसे अष्टदल निर्माण करे। उसके बाहर चौकोन और चौकोरसे बाहर तीन गोल आकार निर्माण करे, उन तीनोंके बाहर एक चौकोर दल बनाकर वहां घटको स्थापन करे, घटके ऊपर अष्टदलपर दमनका पूजन करके यह मंत्र पढ़े कि, देवताओंके देव लक्ष्मीके पति प्रभुकी पूजाके निमित्त हे दमन ! तुम यहां आओ और निकटवर्ती हो, तुमको नमस्कार है। फिर ओं क्लीं कामदेवको और ओं ह्रीं रतिको नमस्कार है, इस मन्त्रसे आवाहन करके पूर्व आदि दिशाओंमें क्रमसे इन मन्त्रोंसे पूजा करके कि, क्लीं कामदेवको, क्लीं भस्म शरीरको, क्लीं अनंगको, क्लीं मन्मथको, क्लीं वसन्तके मित्रको, क्लीं स्मरको, क्लीं इक्षुधनुषवालेको,क्लीं पुष्परूप-अस्त्रधारीको, फिर ब्रह्मस्वरूपको हम जानते हैं, कामदेवका ध्यान करते हैं, वह अनंग काम हमारी श्रेष्ठ कामोंमें प्रेरणा करे, इस मन्त्रको अष्टोत्तर शत (१०८) जप कर ह्रीं नमः इस मन्त्रसे पुष्पांजलि देकर पुष्पबाणधारी, जगत्के आनन्दकारी और जगत्के नेत्र, रतिकी

ते ॥" इति नत्वा । "आमन्त्रितोऽसि देवेश पुराणपुरुषोत्तम । प्रातस्त्वां पूजयिष्यामि सांनिध्यं कुरु केशव ॥ क्षीरोदधिमहानागशय्यावस्थितविग्रह । प्रातस्त्वां पूजयिष्यामि सन्निधौ भव ते नमः । निवेदयाम्यहं तुभ्यं प्रातर्दमनकं शुभम् । सर्वदा सर्वथा विष्णो नमस्तेऽस्तु प्रसीद मे" ॥ ३ ॥ इति देवं संप्रार्थ्य पुष्पाञ्जलिं दत्त्वा, अस्त्रेण चक्रमन्त्रेण वा रक्षां कुर्यात् । ततः प्रातर्नित्यपूजां कृत्वा पुनर्देवं संपूज्य गन्धदूर्वाक्षतयुक्तं दमनमादाय मूलमन्त्रं पठित्वा । "देवदेव जगन्नाथ वाञ्छितार्थप्रदायक । हृदिस्थान् पूरयेः कामान्मम कामेश्वरीप्रिय ॥ इदं दमनकं देव गृहाण मदनुग्रहात् । इमां सांवत्सरीं पूजां भगवन्परिपूरय" ॥ २ ॥ इति मन्त्रान्ते पुनर्मूलमन्त्रेण देवे समर्पयेत् । ततः अंगदेवताभ्यः स्वस्वमन्त्रेण दत्त्वा प्रार्थयेत् । "मणिविद्रुममालाभिर्मंदारकुसुमादिभिः । इयं सांवत्सरी पूजा तवास्तु गरुडध्वज ॥ वनमालां यथा विष्णो कौस्तुभं सततं हृदि । तद्वद्दामनकीं मालां पूजां च हृदये वह ॥ जानताजानता वापि न कृतं यत्तवार्चनम् । तत्सर्वं पूर्णतां यातु त्वत्प्रसादाद्रमापते ॥ जितं ते पुण्डरीकाक्ष नमस्ते विश्वभावन । नमस्तेऽस्तु हृषीकेश महापुरुषपूर्वज" ॥ ४ ॥ मन्त्रहीनमिति च संप्रार्थ्य पञ्चोपचारैः पुनः सम्पूज्य

प्रीतिवाले कामदेवको नमस्कार है, इस मंत्रसे नमस्कार करके हे देवताओंके पति ! हे पुराण-पुरुषोत्तम ! आप आमंत्रित हो, आपका प्रातःकाल पूजन करता हूं, तुम मेरे निकट हो, आपको नमस्कार है, इस श्रेष्ठ दमनको आपके निमित्त निवेदन करता हूं, हे विष्णो ! सब प्रकार सब कालमें मेरे ऊपर प्रसन्न हो, आपको नमस्कार है, इस प्रकार देवकी स्तुति कर और पुष्पांजलि देकर अस्त्रसे वा चक्रमन्त्रसे रक्षा करे । फिर प्रभातकाल नित्य पूजाके उपरान्त देवताको पूजकर दूर्वा, गन्ध, अक्षतसे युक्त दमनको लेकर और मूलमंत्रको उच्चारण कर, हे देवदेव, हे जगन्नाथ! हे वांछितफलके देनेवाले, हे कामेश्वरीके प्रिय ! मेरे हृदयकी इच्छा पूर्ण करो । और मेरे ऊपर कृपा करके इस दमनको स्वीकार करो, हे भगवन् ! इस वर्ष दिनकी पूजाको पूर्ण करो ॥ इस मंत्रके अन्तमें फिर मूलमन्त्रसे देवताको अर्पण करे । फिर अंगदेवताओंको भी उस २ के मन्त्रसे देकर स्तुति करे । हे गरुडध्वज ! मणिमूँगेकी माला और मन्दारके पुष्पोंकी मालाओंसे की हुई ये वर्ष दिनकी पूजा आपकी हो, हे विष्णो ! जैसे वनमाला और कौस्तुभमणिको अपने हृदयमें सदा धारण करते हो उसी प्रकार यह दमन (अशोक) के फूलोंकी माला आप अपने हृदयमें धारण करो । जाने वा विना जाने जो आपकी पूजा न की, हो हे रमापते ! वह सब आपकी प्रसन्नतासे पूर्ण हो. हे पुण्डरीकाक्ष ! हे विश्वके उत्पन्न करनेवाले ! हे हृषीकेश ! हे महापुरुष ! हे सबसे प्रथम प्रगट होनेवाले ! आपकी जय हो ! और आपको नमस्कार है. मन्त्र क्रियाविधिसे जो हीन हो वह सब पूर्ण हो, इस मंत्रसे प्रार्थना और फिर पंचोपचार पूजाको

नीराज्य पारयेदिति। दीक्षारहितानां तु नाम्नैव समर्पणम्। अत्र च द्वादशीमतन्त्रीकृत्य पारणाहे ग्राह्यम्। "पारणाहे न लभ्येत द्वादशी घटिकापि चेत्। तदा त्रयोदशी ग्राह्या पवित्रदमनार्पणे" इति तत्रैवोक्तेः। गौणोऽपि काल उक्तस्तत्रैव-"हरौ न दमनारोपः स्यान्मधौ विघ्नतो यदि। वैशाखे श्रावणे वापि तत्तिथौ स्यात्तदर्पणम्॥ श्रावणावधिशुक्रास्ते कर्तव्यमिति नारदः।" इति पाठान्तरम्। इदं च मलमासे न कार्यम्। 'उपाकर्मोत्सर्जनं च पवित्रदमनार्पणम्' इति कालादर्शे मलमासवर्ज्येषु परिगणनात्। "उपाकर्म च हव्यं च कव्यं पर्वोत्सवं तथा। उत्तरे नियतं कुर्यात्पूर्वे तन्निष्फलं भवेत्" इति माधवीये प्रजापतिवचनाच्च। शुक्रास्तादौ तु कार्यमेव पूर्वोक्तवचनात्। "उपाकर्मोत्सर्जनं च पवित्रदमनार्पणम्। ईशानस्य बलिं विष्णोः शयनं परिवर्तनम्॥ कुर्याच्छुक्रस्य च गुरोर्मौढ्येऽपीति विनिश्चयः" इति ज्योतिर्निबन्धे वृद्धगार्ग्यवचनाच्च। इति दमनारोपः॥ अनङ्गव्रतनिर्णयः। चैत्रशुक्लत्रयोदश्यामनंगव्रतम्। हेमाद्रौ भविष्ये-"चैत्रोत्सवे सकललोकमनोनिवासे कामत्रयोदशतिथौ च वसन्तयुक्तम्। पत्न्या सहार्च्य पुरुषप्रवरोऽथ योषित्सौभाग्यरूपसुतसौख्ययुतः सदा स्यात्"॥ तत्र सा पूर्वा ग्राह्या। 'त्रयोदशतिथिः पूर्वः

पूर्ण करके पारणा करे। जिनको वेदोक्तदीक्षा नहीं वे नामसे ही समर्पण कर दें, उसकी पारणाका दिन द्वादशीके मतको स्वकिार करले। कारण कि, वहांही यह लिखा है कि, यदि पारणाके दिन घडभिर भी द्वादशी न मिले तो त्रयोदशी लेनी और गौणकाल भी वहां ही लिखा है कि, जो विघ्नसे चैत्रमें विष्णुका दमनारोपण न हो तो वैशाख वा श्रावणमें उसी तिथिमें दमनका आरोपण करना चाहिये। कारण कि, कालादर्शमें मलमासमें त्यागने योग्योंमें उपाकर्म उत्सर्ग पवित्र दमनार्पणको लिखा है और माधवग्रन्थमें प्रजापतिका यह वाक्य है कि, उपाकर्म हव्य और कव्य पर्वके उत्सवको नियमसे उत्तर (शुद्ध) महीनेमें करे। पूर्व (मल) मासमें किया हुआ निष्फल होता है और शुक्रास्त आदिमें पूर्वोक्त वाक्यसे अवश्य करना चाहिये। और विष्णुका शयन और परिवर्तनको शुक्र और बृहस्पतिके अस्तमें भी करना चाहिये, यह शास्त्रका निश्चय जानना चाहिये, यह ज्योतिर्निबन्धमें वृद्धगार्ग्यका कथन है। इति दमनारोपः॥ चैत्रसुदी त्रयोदशीको अनंगका व्रत हेमाद्रिमें भविष्यपुराणके इस वाक्यसे लिखा है कि, सम्पूर्ण जगत्के मनको आनन्ददायक चैत्रके उत्सवमें त्रयोदशी तिथिको वसंत और रतिसहित कामदेवको पूजकर पुरुष अथवा स्त्री सौभाग्यरूप सुखसे सदैव संयुक्त होती है। उस पूजामें पहली त्रयोदशी ग्रहण करनी; कारण कि, दीपिकाके इस कथनमें शुक्लपक्षकी त्रयोदशी पहली

सिते ' इति दीपिकोक्तेः। चैत्रशुक्लचतुर्दशीनिर्णयः॥ चैत्रशुक्लचतुर्दशी पूर्वा ग्राह्या- "मधोः श्रावणमासस्य शुक्ला या तु चतुर्दशी। सा रात्रिव्यापिनी ग्राह्या नान्या शुक्ला कदाचन॥" इति हेमाद्रौ बौधायनोक्तेः। परा पूर्वाह्णगामिनी इति वा पाठः। अत्र केचिद्यथाश्रुतमेवार्थं वर्णयन्ति-"निशि भ्रमन्ति भूतानि शक्तयः शूलभृद्यतः। अतस्तत्र चतुर्दश्यां सत्यां तत्पूजनं भवेत्॥" इति ब्रह्मवैवर्तात्। हेमाद्रिमाधवादिलिखनमप्येवम्। सम्प्रदायविदस्त्वाहुः-"चतुर्दशी तु कर्तव्या त्रयोदश्या युता विभो।" इति स्कान्दमुत्सर्गः। तदपवादश्च-"तृतीयैकादशी षष्ठी शुक्लपक्षे चतुर्दशी। पूर्वविद्धा न कर्तव्या कर्तव्या परसंयुता" इति नारदीयवचनम्। तदपवादश्च-'मधोः श्रावणमासस्य' इति। तत्रापवादाभावे पुनरुत्सर्गस्य स्थितिरिति न्यायेन पूर्वविद्धैव ग्राह्येति सिध्यति। ब्रह्मवैवर्ते तु सामान्यरूपमन्त्रसावकाशमिति। तेन पूर्वदिने मुहूर्तत्रयवेधे पूर्वा, अन्यथोत्तरेति। चैत्रशुक्लपूर्णिमानिर्णयः॥ चैत्रपूर्णिमा सामान्यनिर्णयात् परैव। अत्र विशेषो निर्णयामृते विष्णुस्मृतौ-"चैत्री चित्रायुता चेत्स्यात्तस्यां चित्रवस्त्रप्रदानेन सौभाग्यमाप्नोति' इति। तथा ब्राह्मे-'मन्दे वार्के गुरौ वापि वारेष्वेतेषु चैत्रिका। तत्राश्वमेधजं पुण्यं स्नानश्राद्धादिभिर्लभेत्।"

लिखी है। चैत्र सुदी पहली लेनी; कारण कि, हेमाद्रिमें बौधायनका यह कथन है कि, चैत्र और श्रावणमासकी जो शुक्लचतुर्दशी है वह रात्रिव्यापिनी ग्रहण करनी, अन्य कदाचित् न लेनी। अथवा यह पाठ है कि, परली वह लेनी जो पूर्वाह्णव्यापिनी हो, इसमें कोई वाक्यमें चतुर्दशीके सुननेके अनुसार ही अर्थका वर्णन करते हैं। कारण कि, ब्रह्मवैवर्तपुराणका यह वाक्य है कि, रात्रिमें भूतशक्तियोंके सहित महादेव विचरते हैं, इससे रात्रि चतुर्दशीमें ही उनका पूजन होता है। हेमाद्रि और माधवका कथन भी इस प्रकार है। सम्प्रदायके जाननेवाले तो यह लिखते हैं कि, त्रयोदशीसे युक्त चतुर्दशी करनी, यह उत्सर्ग है अर्थात् सिद्धान्त नहीं है और इसका बाधक भी यह नारदका कथन है कि, तृतीया, एकादशी, षष्ठी और शुक्लपक्षकी चतुर्दशी ये पूर्व तिथिसे विद्धा नहीं लेनी, परातिथिसे संयुक्त करनी चाहिये। और इसका अपवाद पूर्वोक्त बौधायनका कथन है, उसमें अपवादके अभावमें उत्सर्गकी स्थिति होती है, इस न्यायसे पूर्वविद्धा ही करनी यह सिद्धान्त होता है, सामान्यरूप ब्रह्मवैवर्तका वाक्य तो और स्थानमें चरितार्थ होजायगा, इससे पहले दिन एक तीन मुहूर्तका वेध हो तो पूर्वा लेनी अन्यथा अगली लेनी। चैत्रकी पूर्णिमा सामान्य निर्णयसे अगली ही लेनी, इसमें विशेष निर्णयामृत और विष्णुस्मृतिमें लिखा है कि, जो चैत्रकी पूर्णिमा चित्रानक्षत्रसे युक्त हो तो उसमें चित्र विचित्र वस्त्रके दानसे सौभाग्य प्राप्त होता है, इसी प्रकार कल्पतरुमें ब्रह्मपुराणका कथन है कि, यदि चैत्रकी पूर्णिमाको शनि, सूर्य, गुरुवार हो तो स्नान और श्राद्ध आदि करनेसे अश्वमेधका पुण्य प्राप्त होता है।

इति। अत्र सर्वदेवानां दमनपूजोक्ता। तत्रैव वायवीये-"संवत्सरकृतार्चायाः साफल्यायाखिलान्सुरान्। दमनेनार्चयेच्चैत्र्यां विशेषेण सदाशिवम् ॥" इति। अत्र स्वीयतिथ्याः समुच्चय इति केचित्। स्वीयतिथ्यामकरणेऽत्र दमनपूजनमित्यन्ये। दीक्षिततदितरविषयत्वेन व्यवस्थेत्यपरे। इयं मन्वादिरपि सा च पूर्वमुक्ता॥ चैत्रकृष्णत्रयोदशीनिर्णयः। चैत्रकृष्णत्रयोदश्यां महावारुणीसंज्ञो योगो गौडेषु प्रसिद्धः। तदुक्तं वाचस्पतिकृतौ शूलपाणौ च स्कान्दे-"वारुणेन समायुक्ता मधौ कृष्णा त्रयोदशी। गंगायां यदि लभ्येत सूर्यग्रहशतैः समा॥ शनिवारसमायुक्ता सा महावारुणी स्मृता॥ गंगायां यदि लभ्येत कोटिसूर्यग्रहैः समा॥ शुभयोगसमायुक्ता शनौ शतभिषा यदि। महामहेति विख्याता त्रिकोटिकुलमुद्धरेत् ॥ ३.॥" तत्रैव ज्योतिषे-" चैत्रासिते वारुणऋक्षयुक्ता त्रयोदशी सूर्यसुतस्य वारे। योगे शुभे सा महती महत्या गंगाजलेऽर्कग्रहकोटितुल्या"। इति। त्रिस्थलीसेतौ ब्रह्माण्डपुराणे-" वारुणेन समायुक्ता मधौ कृष्णा त्रयोदशी। गंगायां यदि लभ्येत शतसूर्यग्रहैः समा॥" इति। कल्पतरौ ब्राह्मे-"मधौ कृष्णत्रयोदश्यां शनौ शतभिषायुता। वारुणीति समाख्याता शुभे तु

और वहां ही वायुपुराणके इस वाक्यसे सब देवताओंका दमनसे पूजन करना लिखा है कि, वर्षदिनमें की हुई पूजाकी सफलताके निमित्त सम्पूर्ण देवता और सदाशिवकी पूजा चैत्रकी पूर्णिमाको करे। इसमें कोई यह लिखते हैं कि, अपनी अपनी तिथिका इसमें समुच्चय करना चाहिये और कोई यह कहते हैं कि, अपनी अपनी तिथिमें न किया हो तो चैत्रकी पूर्णिमाको करे। ये दोनों व्यवस्था दीक्षावाले और विना दीक्षावालोंके विषयमें जाननी। यह मन्वादि भी है, वह प्रथम लिख आये हैं। चैत्रवदी त्रयोदशीको महावारुणीयोग गौडोंमें प्रसिद्ध है। यही वाचस्पतिके बनाये और शूलपाणि ग्रन्थमें स्कंदपुराणका वाक्य है कि, शताभिषा नक्षत्रसे युक्त चैत्रकृष्णवारुणी त्रयोदशीको गंगास्नान मिले तो सूर्यके ग्रहणोंके तुल्य फल है। यदि शनिवारसंयुक्त हो तो महावारुणी होती है। यदि उसमें गंगास्नान प्राप्त हो तो सूर्यके कोटिग्रहणोंके तुल्य फल होता है। यदि शुभयोग, शनिवार, शताभिषा नक्षत्र तीनोंका योग हो तो महामहावारुणी होती है, वह गंगास्नानसे तीन कोटि कुलोंका उद्धार करती है। उसीमें ज्योतिषका वाक्य है कि, चैत्र कृष्णत्रयोदशीको शतभिषा नक्षत्र शनैश्चरयुक्त शुभ योग हो तो वह महामहावारुणी होती है। वह गंगाजलमें सूर्यके कोटिग्रहणोंके तुल्य होती है। यह त्रिस्थलीसेतुमें ब्रह्माण्डपुराणका वाक्य है कि, शतभिषानक्षत्रयुक्त चैत्रकृष्ण त्रयोदशी गंगामें मिले तो सूर्यग्रहणके समान होती है। कल्पतरुमें ब्रह्मपुराणका वचन है कि, चैत्रकृष्ण त्रयोदशी शनिवारको शतभिषानक्षत्र

महती स्मृता "॥ चैत्रकृष्णचतुर्दशीनिर्णयः । चैत्रकृष्णचतुर्दश्यां विशेषः पृथ्वीचंद्रोदये पुलस्त्यः-" चैत्रकृष्णचतुर्दश्यां यः स्नायाच्छिवसन्निधौ । न प्रेतत्वमवाप्नोति गंगायां तु विशेषतः ॥" इति । अत्र पूर्वा ग्राह्या । कृष्णपक्षत्वात् । गौडैस्त्वेतदेव शुक्लचतुर्दश्यामित्येवं देवलीयत्वेन पठितम् ॥ इति श्रीरामकृष्णभट्टसूरिसूनुकमलाकरभट्टकृते कालनिर्णयसिंधौ चैत्रमासः । वैशाखमासः । मेषसंक्रमनिर्णयः । मेषसंक्रमे प्रागपरा दश घटिकाः पुण्यकालः । रात्रौ तु प्रागुक्तम् । अत्र धर्मघटादिदानमुक्तं पृथ्वीचंद्रोदये पाद्मे-" तीर्थे चानुदिनं स्नानं तिलैश्च पितृतर्पणम् । दानं धर्मघटादीनां मधुसूदनपूजनम् ॥ माधवे मासि कुर्वीत मधुसूदनतुष्टिदम् ॥ " वैशाखस्नानम् । अथ वैशाखस्नानम् । तत्र पृथ्वीचंद्रोदये विष्णुस्मृतिपाद्मयोः-" तुलामकरमेषेषु प्रातः स्नानं विधीयते । हविष्यं ब्रह्मचर्यं च महापातकनाशनम् ॥ " इति । सौरमास उक्तः । अन्यत् पक्षद्वयमुक्तं तत्रैव पाद्मे-"मधुमासस्य शुक्लायामेकादश्यामुपोषितः । पंचदश्यां च भो वीर मेषसंक्रमणे तु वा ॥ वैशाखस्नाननियमं ब्राह्मणानामनुज्ञया । मधुसूदनमभ्यर्च्य कुर्यात्संकल्पपूर्वकम् ॥ २ ॥" तत्र मंत्रः-"वैशाखं सकलं मासं मेषसंक्रमणे रवेः । प्रातः सनियमः स्नास्ये प्रीयतां मधुसूदनः ॥ मधुहंतुः प्रसादेन ब्राह्मणानामनुग्रहात् । निर्विघ्नमस्तु मे पुण्यं वैशाखस्नानमन्वहम् ॥ माधवे मेषगे भानौ

होनेसे वारुणी कहलाती है और महाशुभदायक है। चैत्रकृष्ण चतुर्दशीको विशेष पृथ्वीचन्द्रोदयमें पुलस्त्यके कथनसे लिखा है कि, चैत्रकृष्ण चतुर्दशीको जो शिवके निकट स्नान करता है वह प्रेत नहीं होता और गंगामें स्नान करे तो विशेष करके प्रेत नहीं होता । गौडोंने तो यही पुलस्त्यका वाक्य चैत्रशुक्ल चतुर्दशीको देवलीयत्वसे पाठ किया है । इति श्रीरामकृष्णसूनुकमलाकरभट्टकृते निर्णयसिन्धौ भाषाटीकायां चैत्रमासः । मेषकी संक्रांतिमें प्रथमकी और पीछेकी दश दश घड़ी पुण्यकालकी होती हैं। रात्रिमें मेषसंक्रांतिका पुण्यसमय तो प्रथम कह आये हैं, इसमें धर्मघट आदिका दान करना । पृथ्वीचन्द्रोदयमें पद्मपुराणके वाक्यसे लिखा है कि, तीर्थमें प्रतिदिन स्नान और तिलोंसे पितरोंका तर्पण, धर्मघट आदिका दान, भगवान्‌का पूजन मधुसूदनके प्रसन्न करनेवाले यह कृत्य वैशाखमासमें करने चाहिये। अब वैशाखस्नान वर्णन करते हैं, उसमें पृथ्वीचन्द्रोदयमें विष्णुस्मृति और पद्मपुराणके वचन हैं कि, तुला मकर मेष संक्रान्तिमें प्रभातस्नान करना, हविष्य अन्नका भोजन और ब्रह्मचर्य करनेसे महापातक नष्ट होते हैं, सौरमास और दो पक्ष पहले लिख आये हैं। वहां ही पद्मपुराणका कथन है कि, चैत्रशुक्ल एकादशी वा पूर्णिमा वा मेषसंक्रान्तिको हे वीर ! व्रत करके ब्राह्मणोंकी आज्ञासे मधुसूदनका पूजन करके संकल्पपूर्वक वैशाखस्नानका नियम करे। उसका मंत्र यह है कि, वैशाखका सम्पूर्ण महीना और मेषकी संक्रांतिको नियमसे प्रभात समय ही स्नान करूंगा, इससे मधुसूदन प्रसन्न हो, मधुदैत्यके मारनेवाले हरिकी प्रसन्नता और ब्राह्मणोंकी कृपासे मेरा प्रतिदिन

मुरारे मधुसूदन । प्रातःस्नानेन मे नाथ फलदो भव पापहन् "॥ इति । तीर्थविशेषोऽपि तत्रैवोक्तः—"मेषसंक्रमणे भानोर्माधवे मासि यत्नतः । महानद्यां नदीतीर्थे नदे सरसि निर्झरे ॥ देवखातेऽथवा स्नायाद्यथाप्राप्ते जलाशये । दीर्घिकाकूपवापीषु नियतात्मा हरिं स्मरन् ॥ २ ॥ " इति संकल्पे च तत्तत्तीर्थनाम ग्राह्यम् । अज्ञाने तु विष्णुतीर्थमिति वदेत् ॥ "यदा न ज्ञायते नाम तस्य तीर्थस्य भो द्विजाः । तत्रेत्युच्चारणं कार्यं विष्णुतीर्थमिदं त्विति ॥ तीर्थस्य देवता विष्णुः सर्वत्रापि न संशयः ॥" इति तत्रैवोक्तेः । तथान्योऽपि विशेषस्तत्रैव पाद्मे—" तुलसीकृष्णगौराख्यया तयाभ्यर्च्य मधुद्विषम् । विशेषेण तु वैशाखे नरो नारायणो भवेत् ॥ माधवं सकलं मासं तुलस्या योऽर्चयेन्नरः । त्रिसंध्यं मधुहंतारं नास्ति तस्य पुनर्भवः ॥ २ ॥" तथा—" प्रातः स्नात्वा विधानेन माधवे माधवप्रियम् । योऽश्वत्थमूलमासिंचेत्तोयेन बहुना सदा ॥ कुर्यात्प्रदक्षिणं तं तु सर्वदेवमयं ततः । पितृदेवमनुष्यांश्च तर्पयेत्सचराचरम् ॥ योऽश्वत्थमर्चयेदेवमुदकेन समंततः । कुलानामयुतं तेन तारितं स्यान्न संशयः ॥ कण्डूय पृष्ठतो गां तु स्नात्वा पिप्पलतर्पणम् । कृत्वा गोविन्दमभ्यर्च्य न दुर्गतिमवाप्नुयुः ॥४॥" तथा—" एकभक्तमथो नक्तमया-

---

वैशाखस्नान निर्विघ्नसे पूर्ण हो । वैशाखमें मेषकी संक्रान्तिभर हे मुरारे ! हे मधुसूदन ! हे पाप हरनेवाले ! मेरे प्रातःकालके स्नानका तुमही फल दो । तीर्थविशेष भी वहां ही लिखा है कि, मेषकी संक्रांति और वैशाखमासमें महानदी, नदी, तीर्थ, नद, सरोवर, झरने, देवताओंके खोदे सरोवरमें अथवा जैसा मिले वैसे जलस्थानमें डाबर कूप और बावडियोंमें सावधान होकर नारायणका स्मरण करता हुआ स्नान करे और संकल्पमें जहां न्हाय उसी तीर्थका नाम ले, नामका ज्ञान न हो तो विष्णुतीर्थ कहना चाहिये । कारण कि, वहां ही यह लिखा है कि, हे ब्राह्मणो ! यदि तीर्थका ज्ञान न हो तो वहां विष्णुतीर्थ यह उच्चारण करे । कारण कि, सब स्थानमें तीर्थोंके देवता विष्णु हैं इसमें संदेह नहीं । इसी प्रकार वहां और भी विशेष पद्मपुराणके वाक्यसे लिखा है कि, जो मनुष्य काली श्वेत तुलसीसे भगवान् मधुसूदनका अर्चन करता है वह और विशेषकर वैशाखके महीनेमें पूजन करनेवाला नारायणका रूप होता है । जो मनुष्य वैशाखकी पौर्णमासीभर तुलसीसे मधुसूदनका त्रिकालमें पूजन करते हैं उनका फिर जन्म नहीं होता । ऐसे ही प्रातःकाल विधिसे स्नानपूर्वक वैशाखमें जो मनुष्य पीपलके मूलमें बहुत जलसे भगवान्की प्रीतिके निमित्त सींचता है और सब देवतारूपी पीपलकी प्रदक्षिणा करता है वह चर, अचर, पितर और मनुष्योंको तृप्त करता है । जो मनुष्य पीपलको चारों तरफ जलसे सींचते हैं वे दशसहस्र कुलोंको तारते हैं, इसमें संदेह नहीं । गौकी पीठको खुजाने और स्नानके उपरान्त पीपलके नीचे तर्पण करके गोविन्दका पूजन करनेसे मनुष्यको दुर्गति नहीं होती । एकवार भोजन अथवा रात्रिमें

चितमतंद्रितः । माधवे मासि यः कुर्याल्लभते सर्वमीप्सितम् ॥ वैशाखे विधिना स्नानं देवनद्यादिके बहिः । हविष्यं ब्रह्मचर्यं च भूशय्यानियमस्थितिः । व्रतं दानं दमो देवि मधुसूदनपूजनम् । अपि जन्मसहस्रोत्थं पापं दहति दारुणम् ॥ ३ ॥" मदनरत्ने स्कांदे-"प्रपा कार्या च वैशाखे देवे देया गलंतिका । उपानद्व्यजनच्छत्रसूक्ष्मवासांसि चंदनम् ॥ जलपात्राणि देयानि तथा पुष्पगृहाणि च । पानकानि च चित्राणि द्राक्षारम्भफलान्यपि ॥ २ ॥" तिथितत्त्वे-"ददाति यो हि मेषादौ सक्तूनम्बुघटान्वितान् । पितॄनुद्दिश्य विप्रेभ्यः सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥" इति । तथा-"वैशाखे यो घटं पूर्णं सभोज्यं वै द्विजन्मने । ददाति सुरराजेन्द्र स याति परमां गतिम् ॥" एवं संपूर्णस्नानाशक्तौ त्र्यहं वा स्नायात् ॥ तदुक्तं तत्रैव पाद्मे-"त्रयोदश्यां चतुर्दश्यां वैशाख्यां वा दिनत्रयम् । अपि सम्यग्विधानेन नारी वा पुरुषोऽपि वा ॥ प्रातः स्नातः सनियमः सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥" मलमासेऽपि स्नाननिर्णयः । यदा तु वैशाखो मलमासो भवति तदा काम्यानां तत्र समाप्तिनिषेधात् मासद्वयं स्नानं तन्नियमाश्च कर्त्तव्याः । मासोपवासचांद्रायणादि तु मलमासे एव समापयेत् । तदुक्तं दीपिकायाम्-"नियतत्रिंशद्दिनत्वाच्छुभे मास्यारभ्यसमापयेत् । मलिने मासोपवास

भोजन अयाचित (विना मांगे मिले) व्रतको वैशाखके महीनेमें सावधानीसे करता है उसको सब मन इच्छित फल प्राप्त होते हैं । वैशाखमें विधिपूर्वक देवनदी आदिमें ग्रामसे बाहर विधिसे स्नान, हविष्य, भोजन, ब्रह्मचर्य, भूमिशयन, नियमसे रहना, व्रत दान इन्द्रियोंका निग्रह, मधुसूदनकी पूजा करना हे देवी! यह सब सहस्र जन्मके किये हुए पापको नष्ट करते हैं । मदनरत्नमें स्कंदपुराणका यह वाक्य है कि, वैशाखमें प्याऊ लगानी, देवताको माला देनी, जूता, पंखा, छत्री, सूक्ष्मवस्त्र, चंदन, जलके पात्र, फूलोंके घर और जो कोई चित्र विचित्र पदार्थ मुनक्का केलेकी फली इन सबको देना चाहिये । तिथितत्त्वमें लिखा है कि, जो मनुष्य मेषसंक्रांतिके आदिमें जलके घड़े सहित सत्तुओंको पितरोंके निमित्त ब्राह्मणोंको देते हैं वे सब पापोंसे छूटते हैं । इसी प्रकार जो मनुष्य भरे घड़ेको भोजनसहित ब्राह्मणको देता है हे सुरराजेन्द्र! उसको परमगति प्राप्त होती है । इसी प्रकार सम्पूर्ण वैशाखभर स्नान करनेकी सामर्थ्य न हो तो तीन दिन स्नान करे । यही वहां पद्मपुराणके वाक्यमें लिखा है कि, त्रयोदशी १३ चतुर्दशी १४ वैशाखकी पूर्णिमा इन तीनों दिन भले प्रकार विधि और नियमसे स्नान करनेसे स्त्री हो या पुरुष सब पापोंसे मुक्त हो जाते हैं । जब वैशाखमें मलमास हो तो उसमें काम्यकर्मकी पूर्तिके निषेधसे दोनों महीने स्नान और नियम करना चाहिये । मासव्रत और चान्द्रायण व्रतकी पूर्ति तो मलमासमें ही कर देनी चाहिये । सोई दीपिकामें लिखा है कि ३० दिनका नियम होनेसे अच्छे महीनेमें आरंभ करके मलमासमें ही मासोपवास

व्रतम्" इति। अत्र दानविशेष उक्तोऽपरार्के वामनपुराणे–" गन्धाश्च माल्यानि तथा वैशाखे सुरभीणि च। देयानि द्विजमुख्येभ्यो मधुसूदनतुष्टये ॥" एवं स्नाने कृते तस्योद्यापनं कार्यम्। तदुक्तं तत्रैव–उद्यापनविधिनिर्णयः।" मासमेवं बहिःस्नात्वा नद्यादौ विमले जले ॥ एकादश्यां च द्वादश्यां पौर्णमास्यामथापि वा ॥ उपोष्य नियतोभूत्वा कुर्यादुद्यापनं बुधः। मंडपं कारयेदादौ कलशं तत्र विन्यसेत् ॥ निष्केण वा तदर्धेन तदर्धार्धेन वा पुनः। शक्त्या वा कारयेद्देवं सौवर्णं लक्षणान्वितम् ॥ लक्ष्मीयुक्तं जगन्नाथं पूजयेदासने बुधः। भूषणैश्चन्दनैः पुष्पैर्दीपैर्नैवेद्यसंचयैः ॥ एवं संपूज्य विधिवद्रात्रौ जागरणं चरेत्। श्वोभूते कृतमैत्रोऽथ ग्रहवेद्यो ग्रहान्यजेत् ॥ होमं कुर्यात्प्रयत्नेन पायसेन विचक्षणः। तिलाज्येन यवैर्वापि सर्वैर्वापि स्वशक्तितः। अष्टोत्तरसहस्रं वा शतमष्टोत्तरं तु वा। प्रतद्विष्णुरनेनैव[1] इदंविष्णुरनेन[2] वा ॥ व्रतसंपूर्तिसिद्ध्यर्थं धेनुमेकां पयस्विनीम्। पादुकोपानहौ छत्रं गुरवे व्यजनं तथा। शय्यां सोपस्करां दद्याद्दीपिकां दर्पणं तथा। ब्राह्मणान्भोजयेत्त्रिंशत्तेभ्यो दद्याच्च दक्षिणाम् ॥ कलशाञ्जलसंपूर्णांस्तेभ्यो दद्याद्यवांस्तथा। एवं कृते माधवस्य चोद्यापनविधौ शुभे ॥ फलमाप्नोति सकलं विष्णुसायुज्यमाप्नुयात् ॥" एतावत्यशक्तौ तत्रैवोक्तम्–

व्रतकी समाप्ति कर दे। वैशाखमें दानका विशेष अपरार्कग्रन्थमें वामनपुराणके वाक्यसे कहा है कि, गन्ध, सुगन्धित पुष्पमाला ये सब मधुसूदनकी प्रसन्नताके निमित्त ब्राह्मणोंको देनी चाहिये। इस प्रकार स्नान करनेके उपरान्त उद्यापन करना। सोई वहां लिखा है–इस प्रकार ग्रामसे बाहिर नदी आदिके निर्मल जलमें स्नान करके एकादशी, द्वादशी व पूर्णिमाको व्रत करके और सावधान हो बुद्धिमान् मनुष्य उद्यापन करे, मण्डप निर्माण करे और कलशको स्थापन करे। निष्कके आधे वा चौथाई सुवर्णकी मधुसूदन भगवान्‌की मूर्ति शक्तिके अनुसार बनाय और लक्ष्मीसहित जगत्पतिको आसनपर बैठाय भूषणसहित चन्दन, पुष्प, दीप, नैवेद्य इनसे पूजन करना चाहिये। और बुद्धिमान् मनुष्यको खीर, तिल, घी, यवसे पृथक् पृथक् वा संयुक्त कर अपनी शक्तिके अनुसार हवन करना चाहिये। १०८ एकसौ आठ अथवा एक सहस्र और २ हवन करे। हवनका मन्त्र यह है कि, प्रतद्विष्णु अथवा इदंविष्णुं०। और व्रतकी पूर्तिके निमित्त एक दुधारी गौ, खडाऊं, जूता, बीजना, छत्र, सामग्री सहित शय्या, दीपक, दर्पण इन सबको गुरुके निमित्त दे और ३० ब्राह्मणोंको भोजन करावे और उनको दक्षिणा, जलसे पूर्ण घट और यव देना चाहिये। इस प्रकार वैशाखकी श्रेष्ठ उद्यापनकी विधिके करनेसे सम्पूर्ण फल और विष्णुकी सायुज्य मुक्ति प्राप्त होती है। इतने करनेकी शक्ति

---

१ 'प्रतद्विष्णुस्तवते वीर्येण मृगोनभीमः कुचरोगिरिष्ठाः ॥ यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेष्वधिक्षियन्ति भुवनानि विश्वा' ऋ० अ० ५ मं० २० ॥ २ 'इदंविष्णुर्विचक्रमे त्रेधानिदधेपदं समूढमस्यपांसुरे' ॥ ॥ यजु० ॥

"वैशाख्यां विधिना स्नात्वा भोजयेद्ब्राह्मणान् दश । कृसरं सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः ॥" इति । वैशाखशुक्लतृतीयानिर्णयः । वैशाखशुक्लतृतीया अक्षय्यतृतीयोच्यते। सा पूर्वाह्णव्यापिनी ग्राह्या। दिनद्वयेऽपि तद्व्याप्तौ परैव । तदुक्तं निर्णयामृते नारदीये-"वैशाखे शुक्लपक्षे तु तृतीया रोहिणीयुता ॥ दुर्लभा बुधवारेण सोमेनापि युता तथा ॥ रोहिणीबुधयुक्तापि पूर्वविद्धाविवर्जिता ॥ भक्त्या कृतापि मांधातः पुण्यं हंति पुराकृतम् ॥ गौरी विनायकोपेता रोहिणीबुधसंयुता । विनापि रोहिणीयोगात्पुण्यकोटिप्रदा सदा ॥ ३ ॥" इति ॥ युगादिनिर्णयः । इयं युगादिरपि सा चोक्ता रत्नमालायाम्-"माघे पंचदशी कृष्णा नभस्ये च त्रयोदशी। तृतीया माधवे शुक्ला नवम्यूर्जे युगादयः" इति । यत्तु गौडाः-'माघस्य पौर्णमास्यां तु घोरं कलियुगं स्मृतम्" इति ब्राह्मोक्तेः । "वैशाखमासस्य च या तृतीया नवम्यसौ कार्तिकशुक्लपक्षे। नभस्यमासस्य तामिस्रपक्षे त्रयोदशी पञ्चदशी च माघे ॥" इति विष्णुपुराणे। चकारेण तमिस्रपक्षानुषङ्गेऽपि पूर्वानुरोधात् पौर्णमास्येव ज्ञेया। द्वे शुक्ले इत्यादिकं तु निर्मूलमित्याहुः। तन्न। 'दर्शे तु माघमासस्य प्रवृत्तं द्वापरं युगम्' इति भविष्यविरोधात् । एतेन ब्राह्मानुसारात् पूर्णिमायामेव

न हो तो वहां ही यह लिखा है कि, वैशाखकी पूर्णिमाको विधिसे स्नान करके ब्राह्मणोंको खिचड़ी जिमावे, तो सब पापोंसे रहित होता है, इसमें सन्देह नहीं। वैशाखसुदी तृतीयाको अक्षयतृतीया होती है, वह पूर्व दिनमें व्यापिनी ग्रहण करनी । यदि दोनों दिन पूर्व दिनमें हो तो अगली करनी यही निर्णयामृतग्रन्थमें नारदपुराणके वाक्यसे लिखा है कि, वैशाखके शुक्लपक्षमें रोहिणी बुधवार सोमवार युक्त तृतीया मिलनी दुर्लभ है, रोहिणी और बुधवारसे युक्त भी तृतीया द्वितीयासे विद्धा हो तो त्याज्य है । हे मान्धाता ! भक्तिसे की हुई भी वह प्रथम किये हुए पुण्यको दूर करती है और चतुर्थीसे युक्त तृतीया चाहे रोहिणी और बुधसे युक्त हो और चाहे रोहिणीसे रहित हो तो भी वह कोटि पुण्यकी देनेवाली है । यह तृतीया युगादि भी है। यह रत्नमालामें लिखा है कि, माघवदी अमावस १५ श्रावणवदी १३ वैशाख वदी ३ और कार्तिकसुदी नवमी ९ ये चारों तिथि क्रमसे युगादि हैं. और जो गौड यह लिखते हैं कि, माघकी पूर्णिमाको घोर कलियुग प्रारंभ हुआ; इस ब्रह्मपुराणके कथनसे वैशाख महीनेकी तृतीया, कार्तिकशुक्लकी नवमी श्रावणवदी, त्रयोदशी तथा माघकी पूर्णिमा इस विष्णुपुराणके वाक्यमें चकारके बलसे कृष्णपक्षका भी सम्बन्ध है तो भी पूर्णमासी ही जाननी। कारण कि, शुक्लपक्षकी दो तिथि लेनी यह सब निर्मूल है वह गौडोंका कथन यथार्थ नहीं। कारण कि, माघकी अमावास्याको द्वापरयुग प्रवृत्त हुआ, इस भविष्यपुराणके वाक्यका इसमें विरोध होता है इससे ब्रह्मपुराणके कथनानुसार पूर्णिमामेंही युगादि श्राद्धको वर्णन करते हुए शूलपाणि परास्त हुए।

युगादिश्राद्धं वदन् शूलपाणिः परास्तः । तेन कल्पभेदाद्व्यवस्थेति तत्त्वम् । एतेन 'कार्तिके नवमी शुक्ला माघमासे च पूर्णिमा' इति बृहन्नारदीये व्याख्यातम् । निर्मूलत्वोक्तिनारदीयाज्ञानकृता । तत्र श्राद्धनिर्णयः । अत्र 'श्राद्धमुक्तं मात्स्ये— "कृतं श्राद्धं विधानेन 'मन्वादिषु युगादिषु । हायनानि द्विसाहस्रं पितॄणां तृप्तिदं भवेत्" इति । भारतेऽपि—"या मन्वाद्या युगाद्याश्च तिथयस्तासु माधव । स्नात्वा हुत्वा च दत्त्वा च जप्त्वानन्तफलं लभेत्" इति । श्राद्धेऽपि पूर्वाह्णव्यापिनी ग्राह्या । "पूर्वाह्णे तु सदा कार्याः शुक्ला मनुयुगादयः । दैवे कर्मणि पित्र्ये च कृष्णे चैवापराह्णिका ।" इति पाद्मोक्तेः । "द्वे शुक्ले द्वे तथा कृष्णे युगादीः कवयो विदुः । शुक्ले पौर्वाह्णिके ग्राह्या कृष्णे चैवापराह्णिके ।" इति हेमाद्रौ नारदीयवचनाच्च । दीपिकायामपि—"अथो मन्वादियुगादिकर्मतिथयः पूर्वाह्णिकाः स्युः सिते विज्ञेया अपराह्णिकाश्च बहुले" इति । स्मृत्यर्थसारेऽपि—'युगादिमन्वादिश्राद्धेषु शुक्लपक्षे उदयव्यापिनी तिथिर्ग्राह्या । कृष्णपक्षेऽपराह्णव्यापिनी' इति । दिवोदासीये गोभिलः—"वैशाखस्य तृतीयां यः पूर्वविद्धां करोति वै । हव्यं देवा न गृह्णन्ति कव्यं च पितरस्तथा" इति । गोविन्दार्णवेऽप्येवम्—तेनेयं पूर्वाह्णव्यापिनी । दिनद्वये तत्त्वे परैवेति धर्मतत्त्वविदो हेमाद्र्यादयः । अनन्तभट्टस्तु—"सवैधृतिर्व्यतीपातो

उससे कल्पभेदसे व्यवस्था करनी यही सिद्धान्त है। इससे इस नारदपुराणके वाक्यका भी यथार्थ अर्थ लग गया कि, कार्तिकशुक्ल नवमी और माघकी पूर्णिमा युगादि हैं, निर्मूल कहना नारदके वाक्यको विना जाने है। अक्षयतृतीयाको मत्स्यपुराणमें श्राद्ध करना भी लिखा है कि, मन्वादि और युगादि तिथियोंमें अनुष्ठित श्राद्ध दो सहस्रतक पितरोंकी तृप्तिका करनेवाला होता है, महाभारतमें भी लिखा है कि, मन्वादि और युगादि मनुष्यको स्नान, हवन, जप, दानको करनेसे अनन्त फल मिलता है, इसलिये श्राद्धमें पूर्वाह्णव्यापिनी तिथि लेनी। कारण कि, पद्मपुराणमें यह लिखा है कि, शुक्लपक्षकी मन्वादि और युगादि सदा पूर्वाह्णमें और कृष्णपक्षकी अपराह्णमें या देव और पितृकर्ममें लेनी चाहिये। और हेमाद्रिमें नारदपुराणका यह लेख है कि, पण्डितोंने दो शुक्लपक्षकी और दो कृष्णपक्षकी युगादि लिखी हैं। शुक्ल पक्षकी पूर्वाह्णमें और कृष्ण पक्षकी अपराह्णमें करनी। हेमाद्रि और नारदके वचनसे दीपिकामें भी कहा है, कि, शुक्लपक्षकी मन्वादि और युगादि पूर्वाह्णमें और कृष्णपक्षकी अपराह्णमें करनी चाहिये। स्मृत्यर्थसारमें भी कहा है कि, युगादि और मन्वादि शुक्लपक्षकी उदयव्यापिनी और कृष्णपक्षकी अपराह्णव्यापिनी ग्रहण करनी। दिवोदासीयग्रन्थमें गोभिलका वाक्य है कि, जो मनुष्य वैशाखकी तृतीयाको पूर्वाविद्धा तिथि करता है उसके हव्यको देवता और कव्यको पितर स्वीकार नहीं करते। गोविन्दार्णवमें भी यही है। इससे यह पूर्वाह्णव्यापिनी करनी और दोनों दिन पूर्वाह्णमें हो तो अपराह्णमें लेनी यह धर्मतत्त्वके जाननेवाले हेमादि आदि लिखते हैं।

युगमन्वादयस्तथा । सम्मुखा उपवासे स्युर्दानादावंतिमाः स्मृताः" इत्याह । दानादाविति श्राद्धसंग्रहः उपवासस्त्वग्रे वक्ष्यते । हेमाद्रावप्येवम् । माधवस्तु–'व्यतीपातः श्राद्धेऽपराह्णव्यापी ग्राह्यः' इत्याह । स्मृत्यर्थसारे तु –'कुतुपकालयोगी' इत्युक्तम् । यत्तु मार्कण्डेयः–"शुक्लपक्षस्य पूर्वाह्णे श्राद्धं कुर्याद्विचक्षणः । कृष्णपक्षापराह्णे हि रौहिणं तु न लंघयेत् । रौहिणो नवमो मुहूर्तः । अत्र शुक्लपक्षयुगादिश्राद्धं पूर्वाह्णे कार्यमिति शूलपाणिः । निर्णयामृतादयस्तु कालादर्शेऽमाश्राद्धमापराह्णिकमुक्त्वा-'एष मन्वन्तरादीनां युगादीनां विनिर्णयः' इत्युक्तत्वात् । द्वे शुक्ले इत्यादिवचनं विष्णुपूजनविषयम् । श्राद्धे त्वापराह्णिक्ये वेति व्यवस्थां जगदुः । सेयं पूर्वोक्तानेकवचोविरोधात् 'पूर्वाह्णे दैविकं कुर्यात्' इत्यादिवचनादेव सिद्धे वचनवैयर्थ्याच्च स्वाच्छंद्यविलसितमात्रमित्युपेक्षणीया । किं च । कालादर्शोक्तिर्न्यायमूला वचोमूला वा । नाद्यः–युगादिश्राद्धस्यामाश्राद्धविकृतित्वेन न्यायतोऽपराह्णव्याप्तावपि वचनेन तस्य बाधात् । नांत्यः–अतिदेशादेवापराह्णप्राप्तेर्वचनवैयर्थ्यात् । 'अप्राप्ते शास्त्रमर्थवत्' इति न्यायात् । तेन यदि कालादर्शोक्तेः कथंचिच्छ्रद्धाजाड्येन समाधित्सा, तर्हि न्यायप्राप्तकृष्णपक्षयुगादिविषयत्वेन सा व्यवस्थापनीयेति दिक् ।

अनन्तभट्टने यह लिखा है कि, वैधृति और व्यतीपात युगादि और मन्वादि तिथि व्रत उपवासमें पहली और दान आदिमें पिछली लिखी है । इसमें आदि पदसे श्राद्ध ग्रहण करना; व्रतको तो आगे लिखेंगे. हेमाद्रिआदिमें भी यही लिखा है । माधव तो व्यतीपातश्राद्धमें अपराह्णव्यापी ग्रहण करते हैं । स्मृत्यर्थसारमें कुतुपकाल उपयोगी कहा है जो कि; मार्कण्डेयने लिखा है कि, बुद्धिमान् मनुष्य शुक्लपक्षके पूर्वाह्णमें और कृष्णपक्षके अपराह्णमें श्राद्ध करे । और नौमें मुहूर्तका लंघन न करे । इसमें शूलपाणिका यह कथन है कि, शुक्लपक्षमें युगादिका श्राद्ध पूर्वाह्णमें करना । निर्णयामृत आदि तो कालादर्शमें यह लिखते हैं कि, अमावसके श्राद्धको अपराह्णमें कहकर और मन्वादि और युगादिके इस निर्णयको कहकर पूर्वोक्त (द्वे शुक्ले) इस नारदके वाक्यको विष्णुपूजाके विषयमें और श्राद्धके अपराह्ण तिथिमें मानना इस व्यवस्थाको लिखते हैं । सो यह उनकी व्यवस्था अनेक कथनोंके विरोधसे और पूर्वाह्णमें देवकर्म करे इसी वाक्यसे सिद्ध थी और वाक्यके व्यर्थ होनेसे अपनी इच्छाके विलास मात्रसे लेख है, इससे यह व्यवस्था अमान्य है । और कालादर्शका कथन न्यायमूल है अथवा वाक्यमूल है, न्यायमूल तो नहीं लिख सकते । कारण कि, युगादि श्राद्धको अमावस्या श्राद्धका विकृति (अंग) होनेसे न्यायसे अपराह्णव्यापीमें भी वाक्यसे उसको बाधक है और वाक्यमूल भी नहीं कह सकते, अतिदेश (कथन) से ही अपराह्णकी प्राप्ति थी, वाक्य व्यर्थ हो जायगा; क्योंकि, जहां प्राप्त न हो वहां ही वाक्य सार्थक होता है यही न्याय है । इससे किसी प्रकार श्रद्धाकी मूर्खतासे कलादर्शकी उक्तिके समाधान करनेकी इच्छा हो तो कृष्ण-

पूर्वाह्णस्तत्र द्वेधाभक्तदिनपूर्वार्धः। 'द्वेधाभक्तादिनांशकोऽत्र गदितः प्राह्णापराह्णौ' इति दीपिकोक्तेः। माधवादयोऽप्येवम्। अत्र विशेषो हेमाद्रौ भविष्ये-"वैशाखे शुक्लपक्षे तु तृतीयायां तथैव च। गङ्गातोये नरः स्नात्वा मुच्यते सर्वकिल्बिषैः॥ तस्यां कार्यो यवैर्होमो यवैर्विष्णुं समर्चयेत्। यवान् दद्याद्द्विजातिभ्यः प्रयतः प्राशयेद्यवान्॥ २॥" तत्र दाननिर्णयः॥ अत्र दानविशेषस्तत्रैव भविष्ये-इमां प्रक्रम्य-"उदकुंभान्सकनकान्सान्नान्सर्वरसैः सह। यवगोधूमचणकान् सक्तुदध्योदनं तथा॥ ग्रैष्मिकं सर्वमेवात्र सस्यं दाने प्रशस्यते॥" इति। देवीपुराणेऽपि-"तृतीयायां तु वैशाखे रोहिण्यृक्षे प्रपूज्य तु। उदकुंभप्रदानेन शिवलोके महीयते॥" मन्त्रस्तु-"एष धर्मघटो दत्तो ब्रह्मविष्णुशिवात्मकः। अस्य प्रदानात्तृप्यंतु पितरोऽपि पितामहाः॥ गंधोदकतिलैर्मिश्रं सान्नं कुंभं फलान्वितम्। पितृभ्यः संप्रदास्यामि अक्षय्यमुपतिष्ठतु॥ २॥" इति। अत्र च पिण्डरहितं श्राद्धं कुर्यात्-"अयनद्वितये श्राद्धं विषुवद्वितये तथा। युगादिषु च सर्वेषु पिंडनिर्वपणादृते॥" इति हेमाद्रौ पुलस्त्यवचनात्। अत्र रात्रिभोजने प्रायश्चित्तमृग्विधाने-"रात्रौ भुक्ते वत्सरे तु मन्वादिषु युगादिषु। अभिस्ववृष्टिं[1] मन्त्रं च

पक्षकी युगादि तिथियोंक विषयसे व्यवस्था करनी चाहिये यही मार्ग है। यही संक्षेपसे कहा है दो प्रकार भक्त दिनका पूर्वार्ध पूर्वाह्ण है वही प्राह्ण अपराह्ण भी कहाता है यह दीपिकामें कहा है, माधवादि भी यही कहते हैं। इसमें विशेष हेमाद्रिमें भविष्यपुराणके वाक्यसे लिखा है कि, वैशाखमें और वैशाखके शुक्लपक्षकी तृतीयाको गंगाजलमें स्नान करके मनुष्य सब पापोंसे रहित होता है और उस दिन यवोंसे हवन और यवोंसे विष्णुका अर्चन करे और ब्राह्मणोंको यव दे और स्वयं भी यवही भक्षण करे। इससे दानका विशेष भी भविष्यपुराणके कथनसे हेमाद्रिमें लिखा है। सुवर्ण, अन्न, सम्पूर्ण रसोंसहित जलके घड़े, यव, गेंहू, चने, सत्तू भात और गरमीके उपकारी सम्पूर्ण वस्तु इस दानमें श्रेष्ठ हैं. देवीपुराणमें भी कहा है कि, वैशाखकी तृतीया और रोहिणी नक्षत्रमें जलके घड़ेको पूजकर दान करनेसे शिवलोकमें सत्कार पाता है। उसका मंत्र यह है कि, ब्रह्मा, विष्णु, शिवरूप यह घड़ा मैंने दिया, इसके देनेसे पितर और पितामह तृप्त हों। गन्ध, जल, तिल, अन्न, फलोंसे युक्त घटको पितरोंके निमित्त देता हूं, उनको अक्षय मिले। इसमें श्राद्ध भी पिंडरहित करना, कारण कि, हेमाद्रिमें पुलस्त्यका यह कथन है कि, दक्षिणायन और उत्तरायण तुला और मेषकी सक्रांति और सब युगादितिथियोंमें पिंडदानको त्यागकर श्राद्ध करे, इसमें रात्रिमें भोजन करनेका ऋग्विधानमें प्रायश्चित्त लिखा है कि, जो

---

१ 'अभिस्ववृष्टिंमदे अस्ययुध्यतोरध्वीरिव प्रवणेसस्रुरूतयः। इन्द्रो यद्वज्री धृषमाण अन्धसाभिनद्वलस्य परिधीं रिवात्रतः।' ऋ० १। ४। १२॥

जपेदशनपातके ॥" इति । अपरार्के यमः-"कृतोपवासाः सलिलं ये युगादिदिनेषु च । दास्यंत्यन्नादिसहितं तेषां लोका महोदयाः ॥" इति । वैशाखे मलमासे सति तत्रैव युगादिः कार्यः । तथा च हेमाद्रौ ऋष्यशृंगः-" दशहरासु नोत्कर्षश्चतुर्ष्वपि युगादिषु । उपाकर्मणि चोत्सर्गे ह्येतदिष्टं वृषादितः॥" इति । एतद्दशहरादिकं वृषादिसंक्रमे इष्टम् ॥ 'कन्याचंद्रे वृषे रवौ' इत्यादि सौरमासोक्तेरित्यर्थः॥ कालादर्शेऽपि-'अब्दोदकुंभमन्वादिमहालययुगादिषु ।' इति. मलमासकर्तव्येषु परिगणनाच्च । महालयशब्देन मघात्रयोदश्युच्यत इति माधवः । स्मृतिचंद्रिकायां तु मासद्वये कर्तव्यमित्युक्तम्-" यौगादिकं मासिकं च श्राद्धं चापरपाक्षिकम् । मन्वादिकं तैर्थिकं च कुर्यान्मासद्वयेऽपि च " इति । अपरपक्षः कृष्णपक्षः, न तु महालयः । तस्य तत्र निषेधात् । मदनरत्नेऽपि मरीचिः-" प्रतिमासं मृताहे च श्राद्धं यत्प्रतिवत्सरम् । मन्वादौ च युगादौ च तन्मासोरुभयोरपि " इति । प्रतिवत्सरं क्रियमाणं कल्पादिश्राद्धमिति स एव व्याचख्यौ । अत्र श्राद्धाकरणे प्रायश्चित्तम् । अत्र श्राद्धाकरणे प्रायश्चित्तमुक्तमृग्विधाने-"न यस्य द्यावामन्त्रं च शतवारं तदा

मनुष्य मन्वादि और युगादि तिथियोंमें रात्रिको भोजन करता है वह भोजनके पाप दूर करनेके निमित्त अभिस्ववृष्टि मंत्रको जपे अपरार्कग्रन्थमें यमराजका कथन है कि, जो मनुष्य युगादि तिथियोंके दिन व्रत करके अन्नसहित जलदान करते हैं उनको उत्तम उत्तम लोक प्राप्त होते हैं। यदि वैशाख ही मलमास हो जाय तो उसमें ही युगादि तिथि करनी, सोई हेमाद्रिमें ऋष्यशृंगने कहा है कि, दशहरा और चारों युगादि और उपाकर्म और उत्सर्गमें उत्कर्ष नहीं (शुद्ध ही मास लेना यह नियम नहीं) कारण कि, यह सब वृष आदिकी संक्रान्तिसे माने. जाते हैं । कारण कि, कन्याके चन्द्रमा और वृषके सूर्य आदिसे सोरमास कहा है । कालादर्शमें भी जलदान, जलका घडा, मन्वादि, महालय युगादि ये मलमासोंमें करने योग्य लिखे हैं । यहां महालय शब्दसे मघानक्षत्रयुक्त त्रयोदशी ग्रहण करनी। स्मृतिचन्द्रिकामें तो यह लिखा है कि, दोनों महीनोंमें करना । कारण कि, युगादि मासिक श्राद्ध और कृष्णपक्षके श्राद्ध और मन्वादि और तीर्थ श्राद्ध ये दोनों महीनोंमें करने चाहिये । यहां अपरपक्षसे कृष्णपक्ष ग्रहण किया है, महालय नहीं । कारण कि, महालयमें कृष्णपक्षका निषेध है,मदनरत्नमें मरीचिका यह वाक्य लिखा है कि, प्रत्येक महीनेका श्राद्ध और प्रतिवर्ष क्षयीश्राद्ध मन्वादि और युगादिश्राद्ध ये दोनों महीनोंमें होते हैं और उसने ही यह अर्थ लिखा है, कि, प्रतिवर्ष करने योग्य कल्पादिश्राद्ध प्रतिवर्ष कहाता है । इसमें श्राद्ध न करनेमें प्रायश्चित्त भी ऋग्विधानमें लिखा है जो मनुष्य युगादिश्राद्ध न करे वा कुछ न्यूनता श्राद्धमें होजाय तो नयस्यद्यावामंत्रका १०० वार जप करे,

---

१ 'न यस्य द्यावापृथिवी न धन्वनान्तरिक्षमाद्रयः सोमो अक्षाः यदस्य मन्युरधिनीयमान शृणाति वळिरुजातिस्थिराणि' ऋ० ८ । ४ । १५ ॥

जपेत्। युगादयो यदा न्यूनाः कुरुते नैव चापि यः" इति। अत्र समुद्रस्नानं प्रशस्तम्। तदुक्तं पृथ्वीचन्द्रोदये सौरपुराणे—"युगादौ तु नरः स्नात्वा विधिवल्लवणोदधौ। गोसहस्रप्रदानस्य कुरुक्षेत्रे फलं हि यत्। तत्फलं लभते मर्त्यो भूमिदानस्य च ध्रुवम्॥" इति। अयं निर्णयः सर्वयुगादिषु बोद्धव्यः। इति युगादिनिर्णयः॥ परशुरामजयन्तीनिर्णयः। इयमेव तृतीया परशुरामजयंती। सा प्रदोषव्यापिनी ग्राह्या। तदुक्तं भार्गवार्चनदीपिकायां स्कांदभविष्ययोः—"वैशाखस्य सिते पक्षे तृतीयायां पुनर्वसौ। निशायाः प्रथमे यामे रामाख्यः समये हरिः॥ स्वोच्चगैः षड्ग्रहैर्युक्ते मिथुने राहुसंस्थिते। रेणुकायास्तु यो गर्भादवतीर्णो हरिः स्वयम्॥२॥" इति। दिनद्वये तद्व्याप्तावंशतः समव्याप्तौ च परा। अन्यथा पूर्वैव। तदुक्तं तत्रैव भाविष्ये—"शुक्लतृतीया वैशाखे शुद्धोपोष्या दिनद्वये। निशायाः पूर्वयामे चेदुत्तरान्यत्र पूर्विका॥" इति। वैशाखशुक्लसप्तमीनिर्णयः। वैशाखशुक्लसप्तम्यां गङ्गोत्पत्तिः। तदुक्तं पृथ्वीचन्द्रोदये ब्राह्मे—"वैशाखे शुक्लसप्तम्यां जह्नुना जाह्नवी पुरा॥ क्रोधात्पीता पुनस्त्यक्ता कर्णरन्ध्रात्तु दक्षिणात्॥ तां तत्र पूजयेद्देवीं गङ्गां गगनमेखलाम्॥" इति। अत्र शिष्टाचारात् मध्याह्नव्यापिनी ग्राह्या। दिनद्वये तद्व्याप्तावव्याप्तावेकदेशव्याप्तौ वा पूर्वा युग्मवाक्यात्। वैशाखशुक्लद्वादशीनिर्णयः। वैशाखशुक्लद्वादश्यां योगविशेषो हेमाद्रौ ज्योतिः—

इसमें समुद्रका स्नान भी उत्तम है सोई पृथ्वीचन्द्रोदयमें सौरपुराणका कथन है कि, जो मनुष्य युगादि तिथियोंमें क्षारसमुद्रमें स्नान करता है वह उस फलको प्राप्त होता है, जो सहस्र गौ और पृथ्वीके दानका फल कुरुक्षेत्रमें लिखा है। यह निर्णय सब युगादि तिथियोंमें जानना चाहिये। इति युगादिनिर्णयः॥ यही तृतीया परशुरामजयंती है वह प्रदोषव्यापिनी ग्रहण करनी। यही भार्गवार्चनचन्द्रिकामें स्कन्द और भविष्यके वाक्यसे लिखा है कि, वैशाखके शुक्लपक्षकी तृतीया पुनर्वसु नक्षत्रमें रात्रिके प्रथम प्रहरके समय रामनाम हरिने रेणुकाके गर्भसे अवतार लिया और उस समय उच्चके छः ग्रह और मिथुनका राहु था, यदि दोनों दिन प्रदोषव्यापिनी हो वा किसी अंशसे तुल्यव्यापिनी हो तो पिछली लेनी, नहीं तो प्रथम ही ग्रहण करनी। सोई वहां ही भविष्यपुराणके वाक्यसे लिखा है, वैशाखशुक्ल तृतीया व्रतमें वह लेनी जो दोनों दिन पवित्र हो। यदि रात्रिके प्रथम प्रहरमें हो तो पिछली लेनी, न हो तो पहली लेनी। वैशाखशुक्ल सप्तमीको गंगाकी उत्पत्ति हुई है, यह पृथ्वीचन्द्रोदयमें ब्रह्मपुराणका वाक्य है कि, वैशाख शुक्ल सप्तमीको जह्नुऋषिने क्रोधसे पीकर फिर दहिने कर्णके छिद्रसे गंगाजी त्याग दी, उस सप्तमीको आकाशकी मेखलारूप गंगादेवीकी पूजा करे, इसमें शिष्टोंके आचारसे मध्याह्नव्यापिनी सप्तमी लेनी। यदि दोनों दिन मध्याह्नव्यापिनी हो वा एकदेशव्यापिनी हो तो प्रथम दोनों कथनोंसे लेनी। वैशाखशुक्ल द्वादशीको हेमाद्रिमें विशेष योग इस ज्योतिःशास्त्रके वाक्यसे लिखा है कि,

---

१ व्रतहेमाद्रिमें भी लिखा है कि, वैशाखशुक्ल तृतीयाको भगीरथ ब्रह्मलोकसे गंगाजीको ले आये॥

शास्त्रे-"पञ्चाननस्थौ गुरुभूमिपुत्रौ मेषे रविः स्याद्यदि शुक्लपक्षे ॥ पाशाभिधाना करभेण युक्ता तिथिर्व्यतीपात इतीह योगः ॥ अस्मिंस्तु गोभूमिहिरण्यवस्त्रदानेन सर्वं परिहाय पापम् ॥ सुरत्वमिन्द्रत्वमनामयत्वं मर्त्याधिपत्यं लभते मनुष्यः ॥" इति । पञ्चाननः सिंहः । पाशाभिधाना तिथिर्द्वादशी । करभो हस्तः । वैशाखशुक्लचतुर्दशीनिर्णयः । वैशाखशुक्लचतुर्दशी नृसिंहजयंती । सा प्रदोषव्यापिनी ग्राह्या । तदुक्तं हेमाद्रौ नृसिंहपुराणे-"वैशाखे शुक्लपक्षे तु चतुर्दश्यां निशामुखे ॥ मज्जन्मसंभवं पुण्यं व्रतं पापप्रणाशनम् ॥ वर्षेवर्षे तु कर्तव्यं मम सन्तुष्टिकारणम् ॥" इति । दिनद्वये तद्व्याप्तावंशतः समव्याप्तौ च परा । विषमव्याप्तौ त्वधिकव्याप्तिमती दिनद्वयेऽप्यव्याप्तौ परा । परदिने गौणकालव्याप्तेः सत्त्वात् पूर्वदिने च तदभावात् । यत्तु-'ततो मध्याह्नवेलायां नद्यादौ विमले जले ॥' इत्युपक्रम्य 'परिधाय ततो वासो व्रतकर्म समारभेत्' इति तत्रैवोक्तम् । तत्संकल्परूपव्रतोपक्रमविषयम् । नत्वेतावता मध्याह्नव्यापिनी ग्राह्येति भ्रमितव्यम् । पूर्वोक्तवचनविरोधात् । "वैशाखस्य चतुर्दश्यां सोमवारेऽनिलर्क्षके ॥ अवतारो नृसिंहस्य प्रदोषसमये द्विजाः ॥" इति टोडरानन्दे स्कान्दात् । 'कूर्मः सिंहो बौद्धकल्की च सायम्'

बृहस्पति और मंगल सिंहके हो मेषका सूर्य और शुक्लपक्ष हो और हस्तनक्षत्रसे युक्त द्वादशी हो तो यह व्यतीपातयोग होता है । इस योगमें गौ, भूमि, सोना और वस्त्र इनके दानसे सब पापको नष्ट करके देवताभाव, इन्द्रत्व और रोगके अभावको और सब प्राणियोंकी मुख्यताको पुरुष प्राप्त होता है । वैशाखशुक्ल चतुर्दशीको नृसिंहजयन्ती होती है वह प्रदोषव्यापिनी ग्रहण करनी, सोई हेमाद्रिमें नृसिंहपुराणके वाक्यसे कहा है कि, वैशाखके शुक्लपक्षमें चतुर्दशीके दिन प्रदोषके समय मेरे जन्मका पवित्र व्रत सब पापोंको नष्ट करता है । मेरे संतोषका विधायक यह व्रत प्रतिवर्ष करना चाहिये । यदि दोनों दिन प्रदोषमें व्यापिनी हो वा किसी अंशसे तुल्यव्यापिनी हो तो अगली लेनी. एक दिन न्यून एक दिन अधिक व्यापिनी ग्रहण करनी । दोनों दिन प्रदोषव्यापिनी न हो तो एक दिन अगली लेनी । कारण कि, अगले दिनमें गौणकालमें है और पहिले दिन नहीं है, जो कहीं यह लिखा है कि, फिर मध्याह्नके समय नदी आदिके निर्मलजलमें स्नान करनेके उपरांत वस्त्रोंको धारण करके व्रतके कर्मोंका आरम्भ करे यह सब संकल्परूप व्रतके प्रारम्भके विषयमें है, इतनेसे यह भ्रम नहीं करना चाहिये । कारण कि, मध्याह्नव्यापिनी ग्रहण करनी । कारण कि, इसमें पूर्वोक्त वाक्यका विरोध आता है और टोडरानन्दमें भी स्कन्दपुराणका कथन है कि, वैशाख शुक्ल चतुर्दशीको चन्द्रवार, कृत्तिका नक्षत्र, प्रदोषके कालमें हे ब्राह्मणो! नृसिंहका अवतार हुआ और पुराणसमुच्चयमें भी लिखा है, कूर्म, नृसिंह, बुद्ध, कल्की ये अवतार प्रदोषके समय

इति पूर्वोक्तपुराणसमुच्चयवचनाच्चेति केचित् । तत्त्वं तु पूर्ववचसामनाकरत्वेन निर्मूलत्वात् हेमाद्रौ नृसिंहपुराणे-'मज्जन्मसंभवं पुण्यं व्रतं पापप्रणाशनम् ।' इत्युपक्रम्य । "स्वातीनक्षत्रयोगे च शनिवारे तु मद्व्रतम् । सिद्धयोगस्य संयोगे वणिजे करणे तथा ॥ पुंसां सौभाग्ययोगेन लभ्यते दैवयोगतः । सर्वैरेतैस्तु संयुक्तं हत्याकोटिविनाशनम् ॥ एतदन्यतरे योगे मद्दिनं पापनाशनम् ॥ केवलेऽपि प्रकर्तव्यं मद्दिने व्रतमुत्तमम् ॥ अन्यथा नरकं यांति यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥ ३ ॥" इत्युक्त्वा 'ततो मध्याह्नवेलायां नद्यादौ विमले जले' इत्यादिना मध्याह्न एव व्रतविधानाच्चतुर्दश्युत्तरार्धे वणिजे करणे मध्याह्ने च स्पष्टं जन्म प्रतीयते । सन्ध्यायां जन्म तु क्वाप्यनुक्तेर्मौर्ख्यकृतम् । तद्वशान्निर्णयश्च हेय एवेति । इयमेव योगविशेषेणातिप्रशस्ता । तदुक्तं तत्रैव-"स्वातीनक्षत्रयोगे च शनिवारे च मद्व्रतम् । सिद्धयोगस्य संयोगे वणिजे करणे तथा ॥ पुंसां सौभाग्ययोगेन लभते दैवयोगतः । एभिर्योगैर्विनापि स्यान्माद्दिनं पापनाशनम् ॥ सर्वेषामेव वर्णानामधिकारोऽस्ति मद्व्रते । मद्भक्तैस्तु विशेषेण कर्तव्यं मत्परायणैः ॥"तथा-'सिंहः स्वर्णमयो देयो मम सन्तोषकारकः॥'तथा-"विज्ञाय मद्दिनं यस्तु लंघयेत्पापकृन्नरः । स याति

हुए, यह कोई कहते हैं । सिद्धांत तो यह है कि, पहले कथनोंको सिद्धान्त ग्रन्थोंके न होनेसे निर्मूलता है, इससे नृसिंहपुराणके वाक्यसे हेमाद्रिमें यह लिखा है कि, मेरे जन्मका पवित्र व्रत पापोंका नाश करता है । वह प्रारम्भ करके और यह कहे कि, स्वातीनक्षत्रका योग, शनिवार, सिद्धियोग और वाणिज करणके योगसे पुरुषोंके बड़े सौभाग्य और दैवयोगसे मेरा व्रत प्राप्त होता है । यदि पूर्वोक्त सब योग हों तो करोड़ों हत्याओंका विनाश होता है और इनमें कोईसा योग हो तो भी पाप दूर करनेवाला होता है । और केवल भी मेरे दिनमें यह व्रत करना चाहिये और जो नहीं करता वह तबतक नरकमें रहता है, जबतक सूर्य और चन्द्रमा रहें । फिर मध्याह्नमें नदी आदिके निर्मल जलमें स्नान करे इत्यादि वाक्यसे मध्याह्नमें ही व्रत करनेका विधान ह । इससे चतुर्दशीके उत्तरार्द्ध और वणिजकरणमें ही मध्याह्नकालमें नृसिंहका जन्म स्पष्ट प्रतीत होता है । सन्ध्याके समय जन्म तो कहीं भी नहीं लिखा इससे मूर्खतासे किये उसके वशसे यह उनका निर्णय त्यागने योग्य है, यही चतुर्दशी योगविशेषसे अत्यन्त श्रेष्ठ है । यही नृसिंहपुराणमें लिखा है कि, स्वातीनक्षत्र, वणिजकरण, सिद्धियोग यदि इनका योग हो तो मेरा व्रत होता है । यह पुरुषोंके बड़े भाग्य और दैवयोगसे प्राप्त होता है । इस प्रकार कहा है कि, इन योगोंके विना भी मेरा दिन सब पापोंको दूर करता है । इसी प्रकार मेरे व्रतमें सब वर्णोंको अधिकार है और मुझमें तत्पर मेरे भक्तोंको तो विशेषकर इस व्रतको करना चाहिये । और सोनेका सिंह मेरे सन्तोषके निमित्त दे और जो पापी मनुष्य मेरे दिनको जानकर

नरकं घोरं यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥" इदं च संयोगपृथक्त्वन्यायेन नित्यं काम्यं च। तत्र विशेषः। अथात्र विशेषः। मध्याह्ने मृद्गोमयतिलामलकस्नानं कृत्वा॥" नृसिंह देवदेवेश तव जन्मदिने शुभे। उपवासं करिष्यामि सर्वभोगविवर्जितः ॥ " इति मन्त्रेण संकल्पं कृत्वा आचार्यं वृत्वा सायंकाले-"हैमी तु तत्र मन्मूर्तिः स्थाप्या लक्ष्म्यास्तथैव च। पलेन वा तदर्धेन तदर्धार्धेन वा पुनः ॥ यथाशक्ति तथा कुर्याद्वित्तशाठ्यविवर्जितः॥" इत्युक्तम्। नृसिंहमूर्तिं शक्त्या कृतं सुवर्णसिंहं च कलशोपरि संपूज्य रात्रौ जागरणं कृत्वा प्रातः पुनः संपूज्य। "नृसिंहाच्युत देवेश लक्ष्मीकान्त जगत्पते। अनेनार्चाप्रदानेन सफलाः स्युर्मनोरथाः॥"इत्याचार्याय दत्त्वा। "मद्वंशे ये नरा जाता ये जनिष्यन्ति चापरे। तांस्त्वमुद्धर देवेश दुस्तराद्भवसागरात् ॥ पातकार्णवमग्नस्य व्याधिदुःखांबुवारिभिः॥तीव्रैश्च परिभूतस्य महादुःखगतस्य मे ॥ करावलंबनं देहि शेषशायिञ्जगत्पते। श्रीनृसिंह रमाकांत भक्तानां भयनाशन ॥ क्षीराम्बुधिनिवासिंस्त्वं चक्रपाणे जनार्दन। व्रतेनानेन देवेश भुक्तिमुक्तिप्रदो भव ॥ ४ ॥" इति प्रार्थयेदिति संक्षेपः। वैशाखपूर्णिमायां विशेषः। वैशाखपौर्णमास्यां विशेषोऽपरार्के जाबालिः-"शृतान्नमुदकुम्भं च वैशाख्यां च विशेषतः। निर्दिश्य धर्मराजाय गोदानफलमाप्नुयात् ॥ सुवर्णतिलयुक्तैस्तु ब्राह्मणान् सप्त पञ्च च ॥

उल्लंघन करता है वह चन्द्रमा सूर्यकी स्थितिपर्यन्त नरकमें जाता है। यह व्रत योगोंके मिलने और न मिलनेसे भी काम्य है। अब इसमें विशेष लिखते हैं कि, मध्याह्नमें मृत्तिका, गोमय, तिल, आँवलेसे स्नान करके हे नृसिंह! देवताओंके देवताके भी ईश्वर! तुम्हारे शुभ जन्मदिनमें सब भोगोंको त्यागकर व्रत करूंगा, इस मन्त्रसे संकल्प करके और किसीको आचार्य बनाकर सायंकालके समय मेरी और लक्ष्मीकी मूर्ति स्थापन करे। वह पलभरकी वा आधे पलकी वा चौथाई पलकी होनी चाहिये। यह अपनी श्रद्धाके अनुसार करे और इसमें धनका संकोच न करे यह लिखा है। और नृसिंहकी मूर्ति और शक्तिसे निर्माण किये हुए सोनेके सिंहकी मूर्ति कलशके ऊपर पूजा करके रात्रिमें जागरण कर प्रभातमें फिर पूजकर इस मन्त्रसे आचार्यको प्रदान करे कि, हे नृसिंह! हे अच्युत! हे देवताओंके ईश, हे लक्ष्मी और जगत्के पति! इस पूजित मूर्तिके दानसे मेरे मनोरथ पूर्ण हों। इस प्रकार यह प्रार्थना करे कि, मेरे कुलमें जो मनुष्य उत्पन्न हुए हैं और जो होंगे उनका तुम इस दुस्सह संसारसागरसे उद्धार करो और पापोंके सागरमें डूबे हुए और बड़े कठिन व्याधि दुःखोंसे तिरस्कारको प्राप्त हुए महान् दुःखरूपी मुझे हे शेषशायी! हे जगत्पति! हे नृसिंह! हे लक्ष्मीपति! हे भक्तोंके भयनाशक! मुझे हाथका अवलम्बन दो, आपका क्षीरसागरमें निवास है, आपके हाथमें चक्र है हे देवताओंके ईश्वर! इस व्रतसे मेरी भुक्ति मुक्ति करो ऐसी प्रार्थना करे। इति संक्षेपः। वैशाखकी पूर्णिमाको अपरार्कग्रन्थमें जाबालिऋषिने विशेष लिखा है कि, जो मनुष्य पकान्न जलका घड़ा धर्मराजके निमित्त वैशाखकी पूर्णिमाको देता है उसे गोदानका

तर्पयेदुदपात्रैस्तु ब्रह्महत्यां व्यपोहति ॥ २ ॥" इति उदकुम्भदानमन्त्रस्त्वक्षय्यतृतीयाप्रकरणे उक्तः। भविष्येऽपि–"वैशाखी कार्त्तिकी माघी तिथयोऽतीव पूजिताः॥ स्नानदानविहीनास्ता न नेयाः पाण्डुनन्दन ॥" अत्र कृष्णाजिनदानं कार्यम्। तथा च विष्णुः–"कृष्णाजिने तिलान् कृष्णान् हिरण्यं मधुसर्पिषी। ददाति यस्तु विप्राय सर्वं तरति दुष्कृतम् ॥" इति। इति श्रीरामकृष्णभट्टसूरिसूनुकमलाकरभट्टकृते कालनिर्णयसिन्धौ वैशाखमासः समाप्तः। ज्येष्ठमासः। वृषभसंक्रान्तिनिर्णयः। वृषसंक्रान्तौ पूर्वाः षोडश घटिकाः पुण्यकालः। रात्री संक्रमे सति प्रागेवोक्तम् ॥ ज्येष्ठशुक्लतृतीयायां रम्भाव्रतनिर्णयः। ज्येष्ठशुक्लतृतीयायां रम्भाव्रतमुक्तं माधवीये भविष्ये–"भद्रे कुरुष्व यत्नेन रम्भाख्यं व्रतमुत्तमम्। ज्येष्ठशुक्लतृतीयायां स्नाता नियमतत्परा ॥" इति। सा पूर्वविद्धा ग्राह्या ॥ "बृहत्तपा तथा रम्भा सावित्री वटपैतृकी। कृष्णाष्टमी च भूता च कर्तव्या संमुखी तिथिः ॥" इति स्कान्दोक्तेः। ज्येष्ठशुक्लदशमीनिर्णयः। ज्येष्ठशुक्लदशमी दशहरा। तदुक्तं हेमाद्रौ ब्राह्मे–"ज्येष्ठे मासि सिते पक्षे दशमी हस्तसंयुता। हरते दश पापानि तस्माद्दशहरा स्मृता ॥" इति। वाराहेऽपि–"दशमी शुक्लपक्षे तु ज्येष्ठे मासि

फल मिलता है। जो मनुष्य सुवर्ण और तिलयुक्त जलके पात्रोंसे पांच वा सात ब्राह्मणोंको तृप्त करता है उसकी ब्रह्महत्या दूर होती है। घटदानका मन्त्र तो अक्षय तृतीयाके प्रकरणमें लिख आये हैं। भविष्यपुराणमें भी लिखा है कि–वैशाख, कार्तिक, माघकी पूर्णिमा अत्यन्त पूजित है। हे पाण्डुनन्दन ! इनको स्नान और दानके विना न बिताना चाहिये। इसमें काले मृगचर्मका दान करना। सोई विष्णुने लिखा है कि, जो मनुष्य श्याम मृगचर्म, काले तिल, सुवर्ण, शहत, घी ब्राह्मणके निमित्त प्रदान करता है उसके सब पाप दूर हो जाते हैं। इति श्रीकमलाकरभट्टकृते निर्णयसिन्धौ भाषाटीकायां वैशाखमासः समाप्तः। वृषकी संक्रान्तिमें प्रथमकी षोडश १६ घड़ीका पुण्यकाल है। रात्रिकी संक्रान्तिमें पुण्यकाल तो प्रथम लिख आये हैं। ज्येष्ठशुक्ल तृतीयाको रम्भाका व्रत भविष्य और माधवके वाक्यसे लिखा है कि, हे भद्रे ! ज्येष्ठशुक्ल तृतीयाको नियममें तत्पर हुई स्त्री यत्नसे रम्भाके श्रेष्ठ व्रतको करे, यह पूर्वविद्धा लेनी चाहिये। कारण कि, स्कन्दपुराणमें लिखा है कि, बड़ी रम्भा सावित्रीका व्रत, पितरोंकी तिथि, कृष्णपक्षकी अष्टमी और चतुर्दशी यह तिथि प्रथम ग्रहण करनी ॥ ज्येष्ठशुक्ल दशमी तिथि दशहरा कहाती है। वही ब्रह्मपुराणके वाक्यसे हेमाद्रिमें लिखा है कि, ज्येष्ठशुक्ला दशमी हस्तयुक्त दश प्रकारके पापोंको दूर करती है, इससे दशहरा कहाती है। वाराहपुराणमें भी कहा है कि, ज्येष्ठशुक्ल

कुजेऽहनि । अवतीर्णा यतः स्वर्गाद्धस्तर्क्षे च सरिद्वरा॥हरते दश पापानि तस्माद्दश-हरा स्मृता ॥" इति । स्कान्दे तु दशयोगा उक्ताः । तथा-"ज्येष्ठे मासि सिते पक्षे दशम्यां बुधहस्तयोः॥ व्यतीपाते गरानन्दे कन्याचंद्रे वृषे रवौ ॥ दशयोगे नरः स्नात्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते " इति ॥ अत्र बुधभौमयोः कल्पभेदेन व्यवस्था । इयं च यत्रैव योगबाहुल्यं सैव ग्राह्या । योगाधिक्ये फलाधिक्यात् । ज्येष्ठे मलमासे सति तत्रैव दशहरा कार्या नतु शुद्धे । 'दशहरासु नोत्कर्षश्चतुर्ष्वपि युगादिषु' इति हेमाद्रौ ऋष्यशृंगोक्तेः । तथा स्कांदे-"यां कांचित्सरितं प्राप्य दद्यादर्घ्यं तिलोदकम् । मुच्यते दशभिः पापैः स महापातकोपमैः॥ " अत्र विशेषः काशीखंडे-ज्येष्ठे मासि सिते पक्षे प्राप्य प्रतिपदं तिथिम् । दशाश्वमेधके स्नात्वा मुच्यते सर्वपातकैः ॥ एवं सर्वासु तिथिषु क्रमस्नायी नरोत्तमः । आशुक्लपक्षदशमीं प्रतिजन्माघमुत्सृजेत् ॥ २ ॥" तथा-"लिंगं दशाश्वमेधेशं दृष्ट्वा दशहरातिथौ । दशजन्मार्जितैः पापैस्त्यज्यते नात्र संशयः॥ " तथा च भविष्योत्तरकाशीखंडयोः-"निशायां जागरं कृत्वा समुपोष्य च भक्तितः । पुष्पैर्गन्धैश्च नैवेद्यैः फलैश्च दशसंख्यया ॥ तथा दीपैश्च तांबूलैः पूजयेच्छ्रद्धयान्वितः । स्नात्वा भक्त्या तु जाह्नव्यां दशकृत्वो विधानतः ॥

दशमी मंगलवार हस्त नक्षत्रको गंगाजी स्वर्गसे आयी हैं और दश पापोंकी दूर करती हैं. इससे दशहरा कहाती है । स्कंदपुराणमें तो दश योग लिखे हैं कि, ज्येष्ठमासकी शुक्लपक्षकी दशमीको बुध, हस्त, व्यतीपात, गर, आनन्द, कन्याका चन्द्रमा, वृषका सूर्य इन दशयोगोंमें स्नान करके मनुष्य सब पापोंसे रहित होता है । यहां बुधवार और मङ्गलवारका कथन कल्पभेदसे समझना चाहिये । और यह वह दशमी माननी जिसमें योग बहुत हों । कारण कि, योगोंकी अधिकतामें फल अधिक होता है । यदि ज्येष्ठमें मलमास हो तो उसमें ही दशहरा करना; शुद्धमें न करना । कारण कि, हेमाद्रिमें ऋष्यशृङ्गने यह लिखा है कि, चारों युगोंमें दशहरोंमें उत्कृष्ट (श्रेष्ठ) का नियम नहीं । इसी प्रकार स्कन्दपुराणमें लिखा है कि, चाहे जिस नदीको प्राप्त होकर तिल और जलसे अर्घ देनेसे महापातकोंके तुल्य भी दश पापोंसे मनुष्य मुक्त होता है। इसमें विशेष काशीखण्डमें लिखा है कि, ज्येष्ठ मासके शुक्लपक्षमें प्रतिपदा तिथिको दशाश्वमेधघाटमें स्नान करके सब पापोंसे छूटते हैं । इसी प्रकार सम्पूर्ण तिथियोंको शुक्लपक्षकी दशमी पर्यंतके स्नान करनेसे मनुष्यके जन्म जन्म के पाप दूर होते हैं, वैसे ही दशहराके दिन दशाश्वमेधेश्वर लिंगका दर्शन कर दश जन्मके संचित पाप दूर होते हैं. इसमें संदेह नहीं है । वैसे ही भविष्योत्तर और काशीखण्डमें कहा है कि, भक्तिपूर्वक रात्रिमें जागरण और व्रत करके पुष्प, गन्ध, नैवेद्य और दश फल, दीपक, पान, दश बार गंगामें भक्तिसे स्नान करके गंगाकी पूजा करे और दश अंजलीभर तिल

दशप्रसृतिकृष्णांश्च तिलान् सर्पिश्च वै जले। सक्तुपिंडान् गुडपिंडान् दद्याच्च दशसंख्यया॥ ततो गंगातटे रम्ये हेम्ना रूप्येण वा तथा। गंगायाः प्रतिमां कृत्वा वक्ष्यमाणस्वरूपिणीम्॥ संस्थाप्य पूजयेद्देवीं तदलाभे मृदापि च। अथ तत्राप्यशक्तश्चेल्लिखेत्पिष्टेन वै भुवि॥ वक्ष्यमाणेन मन्त्रेण कुर्यात्पूजां विशेषतः"॥ "नारायणं महेशं च ब्रह्माणं भास्करं तथा॥ भगीरथं च नृपतिं हिमवन्तं नगेश्वरम्। गन्धपुष्पादिभिः सम्यग्यथाशक्ति प्रपूजयेत्॥ दशप्रस्थांस्तिलान्दद्याद्दशसंख्या गवीस्तथा"। प्रस्थः षोडशपलानि। पलं तु–'मुष्टिमात्रं पलं स्मृतम्' इति महार्णवे उक्तम्। "मत्स्यकच्छपमण्डूकमकरादिजलेचरान्॥ हंसकारंडवबकचक्रटिट्टिभसारसान्। कारयित्वा यथाशक्ति स्वर्णेन रजतेन वा॥ तदलाभे पिष्टमयानभ्यर्च्य कुसुमादिभिः। गंगायां प्रक्षिपेदाज्यदीपांश्चैव प्रवाहयेत्॥ पुष्पाद्यैः पूजयेद्गङ्गां मन्त्रेणानेन भक्तितः। ॐ नमः शिवायै नारायण्यै दशहरायै नमोनमः॥ इति मन्त्रं तु यो मर्त्यो दिने तस्मिन्दिवानिशम्। जपेत्पञ्चसहस्राणि दशधर्मफलं लभेत्"॥ काशीखण्डे त्वन्यो मन्त्र उक्तः। "नमः शिवायै प्रथमं नारायण्यै पदं ततः। दशहरायै पदमिति गङ्गायै मन्त्र एष वै॥ स्वाहान्तः प्रणवादिश्च भवेद्विंशाक्षरो मनुः॥पूजा दानं जपो होमोऽनेनैव मनुना स्मृतम्॥१४॥" इति। अत्र गंगास्तोत्रपाठमपि दशवारं कुर्यात्। तदुक्तं भविष्ये–"तस्यां दशम्यामेतच्च स्तोत्रं गङ्गाजले स्थितः। यः पठेद्दशकृत्वस्तु दरिद्रो वापि चाक्षमः॥ सोऽपि तत्फलमाप्नोति गङ्गां संपूज्य यत्नतः" इति स्तोत्रं च प्रतिपदादिदशमी-

और घी सत्तू और गुडके दश दश पिंड गंगाजलमें दे। फिर गंगाके मनोहर किनारेपर सोने वा चांदीकी वह प्रतिमा निर्माण करे, जिसका स्वरूप आगे लिखेंगे, मूर्तिको स्थापन करके पूजा करे। सुवर्ण चांदी न मिले तो मृत्तिकाकी निर्माण करनी चाहिये और उसके भी निर्माण करनेमें असमर्थ हो तो चूनसे भूमिपर लिखकर आगे लिखे मन्त्रसे विशेषकर पूजा करे। और नारायण, शिव, ब्रह्मा, सूर्य, भगीरथ राजा, हिमवान् पर्वतकी भी गंध पुष्प आदिसे यथाशक्ति पूजा करे। और दश ब्राह्मणोंको दश प्रस्थ (१६ मुट्ठी) भर तिल देने चाहिये और दश प्रस्थ यव और दश गौ देनी। मत्स्य, कच्छप, मेंडक, मकर आदि जलके जीवोंकी सुवर्ण वा चांदीकी प्रतिमा बनावे, इसमें समर्थ न हो तो चूनकी बनाकर और पुष्प आदिसे पूजन कर गंगाजीमें मिला दे और घृतके दीपकोंको भी बहा दे और पुष्प आदिसे गंगाजीका इस मंत्रसे पूजन करे कि, ॐ शिवा, नारायणी, दशहारा, गंगाको प्रणाम है। जो मनुष्य दिनमें वा रात्रिदिनमें पांच सहस्र उक्त मन्त्रको जपता है वह दश प्रकार धर्मके फलको प्राप्त होता है। काशीखण्डमें तो और मन्त्र कहा है 'ॐ नमः शिवायै नारायण्यै दशहरायै गंगायै स्वाहा'। यह बीस अक्षरका मंत्र है। इससे ही पूजन दान जप होम करना लिखा है। गंगाजलमें बैठकर दरिद्री वा धनी जो मनुष्य दशबार इस मंत्रको पढता है वह भी भक्तिसे गंगापूजनके फलको प्राप्त होता है और प्रति-

पर्यंतं दिनवृद्धिसंख्यया पाठनीयामिति शिष्टाः । अथ च सर्वोऽपि विस्तरः स्तोत्रादि च भट्टकृतत्रिस्थलीसेतोरवधेयः । विस्तरभीतेस्तु न लिख्यते । एवं कुर्वतः फलमुक्तं काशीखण्डे-"एवं कृत्वा विधानेन वित्तशाठ्यविवर्जितः। उपवासी वक्ष्यमाणैर्दशपापैः प्रमुच्यते । सर्वान्कामानवाप्नोति प्रेत्य ब्रह्मणि लीयते । " इति च ॥ अस्यां सेतुबन्धनरामेश्वरस्य प्रतिष्ठादिनत्वाद्विशेषेण पूजा कार्या। तदुक्तं स्कांदे सेतुमाहात्म्ये-" ज्येष्ठे मासे सिते पक्षे दशम्यां बुधहस्तयोः । गरानन्दे व्यतीपाते कन्याचंद्रे वृषे रवौ ॥ दशयोगे सेतुमध्ये लिंगरूपधरं हरम् ॥ रामो वै स्थापयामास शिवलिंगमनुत्तमम् ॥ २ ॥ " इति दशहरा। ज्येष्ठशुक्लैकादशीनिर्णयः । ज्येष्ठशुक्लैकादशी निर्जला । तत्र निर्जलमुपोष्य विप्रेभ्यो जलकुंभान्दद्यादिति निर्णयामृते उक्तम्। मदनरत्ने स्कान्दे-"ज्येष्ठे मासि नृपश्रेष्ठ या शुक्लैकादशी शुभा । निर्जलं समुपोष्यात्र जलकुम्भान्सशर्करान् ॥ प्रदाय विप्रमुख्येभ्यो मोदते विष्णुसन्निधौ ॥ " ज्येष्ठशुक्लपूर्णिमायां सावित्रीव्रतनिर्णयः। ज्येष्ठपौर्णमास्यां सावित्रीव्रतम् । तदुक्तं स्कान्दभविष्ययोः-' ज्येष्ठे मासि सिते पक्षे द्वादश्यां रजनीमुखे' इत्युपक्रम्य । व्रतं त्रिरात्रमुद्दिश्य 'दिवारात्रिं स्थिरा भवेत्' इति अन्तेऽप्युपसंहृतम् ॥ " ज्येष्ठे मासि सिते पक्षे पूर्णिमायां तथा व्रतम् ।

पदासे दशमीतक दिन वृद्धिक्रमसे स्तोत्रका पढ़ना यह शिष्ट कहते हैं। इसका सम्पूर्ण विस्तार और स्तोत्र आदि भट्टनिर्मित त्रिस्थलीसे देखना चाहिये, विस्तारके भयसे हम नहीं लिखते। इस प्रकार करनेवालेका फल काशीखण्डमें देखा है कि, धनका संकोच त्यागकर विधिसे इस प्रकार अनुष्ठान करके उपवास करनेवाले मनुष्यके दश पाप छूटते हैं, और सम्पूर्ण कामनाओंको प्राप्त होता है तथा मरकर ब्रह्ममें लीन होता है। इसको सेतुबन्ध रामेश्वरकी प्रतिष्ठका दिन होनेसे उक्त रामेश्वरकी पूजा विशेषरूपसे करनी चाहिये, सोई स्कंदपुराण सेतुके माहात्म्यमें लिखा है कि, ज्येष्ठ महीनेकी शुक्लपक्ष दशमी, बुध, हस्तनक्षत्र, गर, आनन्द योग व्यतीपात, कन्यका चन्द्रमा, वृषके सूर्य इन दश योगोंमें सेतुमें लिंगरूपधारी महादेवकी रामचन्द्रने स्थापना की थी, वह शिवलिंग सर्वश्रेष्ठ है ॥ इति दशहराविधिः ॥ ज्येष्ठशुक्ल एकादशी निर्जला होती है, उसमें व्रत करके ब्राह्मणोंको जलके घडोंका दान दे, यह निर्णयामृतमें लिखा है। मदनरत्नमें स्कंदपुराणका वाक्य है कि, हे राजाओंमें श्रेष्ठ ! ज्येष्ठ मासके शुक्लपक्षकी शुभ एकादशीमें निर्जल व्रत करके खांड सहित जलके घडे ब्राह्मणोंको देकर विष्णुके निकट आनन्द भोगता है। ज्येष्ठकी पूर्णिमाको सावित्रीव्रत होता है। यही स्कंद और भविष्यपुराणमें लिखा है कि, ज्येष्ठमासकी शुक्ल द्वादशीको संध्याके समय यह (प्रथम कह कर) तीन रात्रिके व्रतके निमित्त रात दिन स्थिर रहे और फिर अन्तमें जाकर पूर्ण भी कर दिया है कि, ज्येष्ठ महीनेकी शुक्लपूर्णिमाका व्रत

---

१ यह स्थापनाका समय कल्पान्तरविषयक है ॥

चीर्णं पुरा महाभक्त्या कथितं ते मया नृप।" इति। दाक्षिणात्याश्चैतदेवाद्रियन्ते। एतच्चामावास्यायामप्युक्तं निर्णयामृते भविष्ये-"अमायां च तथा ज्येष्ठे वटमूले महासती। त्रिरात्रोपोषिता नारी विधिनानेन पूजयेत् ॥" मदनरत्ने त्विदं वाक्यम्। 'पञ्चदश्यां तथा ज्येष्ठे' इति पठित्वा ज्येष्ठपौर्णमास्यामुक्तम्। तथा-"अशक्तौ तु त्रयोदश्यां नक्तं कुर्याज्जितेन्द्रिया। अयाचितं चतुर्दश्याममायां समुपोषणम्।" इति। तत्तु पाश्चात्त्या आद्रियन्ते। हेमाद्रिसमयोद्द्योतादिषु तु भाद्रपदपूर्णिमायामुक्तम्। तत्तु नेदानीं प्रचरति। गौडास्तु-"मेषे वा वृषभे वापि सावित्रीं तां विनिर्दिशेत्। ज्येष्ठकृष्णचतुर्दश्यां सावित्रीमर्चयन्ति याः। वटमूले सोपवासा न ता वैधव्यमाप्नुयुः॥" इति। पराशरोक्तेश्चतुर्दश्यां प्रदोषे व्रतम्। दिनद्वये तद्व्याप्तौ परैवेत्याहुः तन्निर्मूलम्। अत्र पूर्णिमामावास्ये पूर्वविद्धे ग्राह्ये। "भूतविद्धा न कर्तव्या अमावास्या च पूर्णिमा। वर्जयित्वा नरश्रेष्ठ सावित्रीव्रतमुत्तमम्॥" इति ब्रह्मवैवर्तात्। स्कान्देऽपि-"भूतविद्धा सिनीवाली न तु तत्र व्रतं चरेत्। वर्जयित्वा तु सावित्रीव्रतं तु शिखिवाहन" इति। मदनरत्ने ब्रह्मवैवर्तेऽपि-"प्रतिपत्पञ्चमी भूतसावित्री वटपूर्णिमा। नवमी दशमी चैव नोपोष्याः परसंयुताः॥" इति। यदा त्वष्टादशघटिका चतुर्दशी तदा परा ग्राह्या। "पूर्वविद्धैव सावित्रीव्रते पञ्चदशीतिथिः। नाड्योऽष्टादश भूतस्य स्युश्चेत्तच्च परेऽहनि॥" इति

बड़ी भक्तिसे मैंने प्रथम किया और हे नृप! तुमसे वर्णन किया है और दक्षिणी ब्राह्मण इसका ही आदर करते हैं और यह निर्णयामृतमें भविष्यपुराणके मतसे अमावास्याको भी कहा है कि, ज्येष्ठकी अमावास्याको वटके मूलमें सती स्त्रीको तीन दिन व्रत करना चाहिये। फिर इसी विधिसे पूजा करे। मदनरत्नमें तो इस वाक्यको (पंचदश्यां तथा ज्येष्ठे) ऐसा पढ़कर ज्येष्ठकी पूर्णिमासीको भी व्रत लिखा है। इसी प्रकार जो यह लिखा है कि, अशक्त और जितेन्द्रिय स्त्री त्रयोदशीको रात्रि और चतुर्दशीको अयाचित पौर्णमासीको व्रत करे, उसका पश्चिमके निवासी आदर नहीं करते हैं। हेमाद्रि समयोद्योत आदि ग्रन्थोंमें तो भादोंकी पूर्णिमामें भी यह व्रत करना लिखा है, परन्तु उसका इन दिनों प्रचार नहीं है। गौड तो यह कथन करते हैं कि, मेष वा वृष राशिमें होनेवालेको सावित्री कथन करते हैं, जो स्त्री सावित्रीका पूजन व्रत करके ज्येष्ठ शुक्ल १४ को वटकी मूलमें पूजन करती हैं वे विधवा नहीं होतीं। इस पराशरके कथनसे चतुर्दशीमें ही प्रदोषकालमें व्रत करे। यदि दोनों दिन प्रदोषमें हों तो अगले दिन करे, यह गौडोंका कथन निर्मूल है। सावित्रीके व्रतको त्यागकर अमावास्या और पूर्णिमा चतुर्दशीसे विद्धा अमावास्याको व्रत न करे। हे शिखिवाहन! सावित्रीव्रतको त्यागकर और प्रतिपदा, पञ्चमी, चतुर्दशी, सावित्री वटपूर्णिमा, नवमी, दशमी परतिथिसे विद्धामें व्रत न करे। यदि १८ घडी चौदस हो तो दूसरे दिनमें करे। माधवने यह कहा है कि, सावित्रीके व्रतमें पूर्णमासी पहले दिन विद्धा है, यदि १४ चौदस अठराह घड़ी हो तो अगले दिन करे। सिद्धान्त तो यह है कि,

माधवः। वस्तुतस्तु–'भूतोऽष्टादशनाडीभिर्दूषयत्युत्तरां तिथिम्' इत्यस्य व्रतांतरे सावकाशत्वाद्विशेषप्रवृत्तपूर्वविद्धाविधायकवचनेन तस्य बाधादष्टादशनाडीवेधोऽपि पूर्वैवेत्ययं पन्थाः साधुः। अत्र पूर्णिमानुरोधेनैव यथा त्रिरात्रिसम्पत्तिर्भवति तथा त्रयोदश्यादि ग्राह्यम्। तस्याः प्रधानत्वात्। अयं निर्णयोऽमायामपि ज्ञेयः। पारणं तु पूर्णिमांते कार्यम्। अथ स्त्रीव्रतेषु विशेषः परिभाषायामुक्तः। सावित्रीपूजाविधिः। अत्र विशेषो भविष्ये–"गृहीत्वा वालुकां पात्रे प्रस्थमात्रं युधिष्ठिर। ततो वंशमये पात्रे वस्त्रयुग्मेन वेष्टिते। सावित्रीप्रतिमां कुर्यात्सौवर्णीं वापि मृन्मयीम्। सार्धं सत्यवता साध्वीं फलनैवेद्यदीपकैः। रजन्या कण्ठसूत्रैश्च शुभैः कुंकुमकेशरैः॥" पूजयेदिति शेषः। रजनी हरिद्रा। कण्ठसूत्रं सौभाग्यतन्तुः। "सावित्र्याख्यानकं वापि वाचयीत द्विजोत्तमैः। रात्रौ जागरणं कृत्वा प्रभाते विमले ततः॥ तामपि ब्राह्मणे दत्त्वा प्रणिपत्य क्षमापयेत्॥" मन्त्रस्तु–"सावित्रीयं मया दत्ता सहिरण्या महासती। ब्रह्मणः प्रीणनार्थाय ब्राह्मण प्रतिगृह्यताम्॥ व्रतेनानेन राजेन्द्र वैधव्यं नाप्नुयात्क्वचित्॥" इति। ज्येष्ठपौर्णमास्यां विशेष आदित्यपुराणे–"ज्येष्ठे मासि तिलान्दद्यात् पौर्णमास्यां विशेषतः। अश्वमेधस्य यत्पुण्यं तत्प्राप्नोति न संशयः॥" विष्णुरपि–'ज्येष्ठी ज्येष्ठायुता चेत्स्यात्तस्यां छत्रोपानत्प्रदानेन नराधिपत्यमाप्नोति' इति।

चतुर्दशी १८ घडीसे अगली तिथिको दूषित करती है। यह वाक्य और व्रतोंके मध्यमें सावकाश है। इससे विशेषकर पूर्वविद्धा सावित्रीके बोधक वाक्योंसे इसका बाध होनेसे १८ घडीके वेधमें ही प्रथम सावित्री करनी, यही मार्ग उत्तम है। यहां पूर्णिमाके अनुरोधसे जैसे तीन रात्र व्रत हो सके तैसे त्रयोदशीको श्रेष्ठ होनेसे त्रयोदशीको व्रत ग्रहण करे। यह निर्णय अमावास्यामें भी जानना चाहिये। पारणा तो पूर्णिमाके अन्तमें करनी चाहिये। इस सावित्रीव्रतमें स्त्रियोंके निमित्त परिभाषाग्रन्थमें लिखा है। भविष्य पुराणमें यह विशेष लिखा है कि, हे युधिष्ठिर ! प्रस्थभर बालू बांसके पात्रमें लेकर दो वस्त्रोंसे लपेटकर सुवर्ण वा मृत्तिकाकी सावित्री साध्वी सत्यवतीकी मूर्ति निर्माण करे और फल, नैवेद्य, दीपक, हल्दी, सौभाग्य सूत्र (लाल) कुंकुम केशरसे उसका अर्चन करे और ब्राह्मणसे सावित्रीके इतिहासको श्रवण करे। रात्रिको जागरण और प्रातःकालको निर्मल जलमें स्नानकर ब्राह्मणको मूर्ति देकर प्रणाम करके क्षमाकी प्रार्थना करे। उसका मन्त्र यह है कि, ब्राह्मणकी प्रसन्नताके निमित्त यह सुवर्णसहित उत्तम सावित्री प्रदान की है, इसको तुम ग्रहण करो। हे राजेंद्र ! इस व्रतको करनेसे स्त्री कभी भी विधवा नहीं होती। ज्येष्ठकी पूर्णिमाको विशेष आदित्यपुराणमें लिखा है कि, ज्येष्ठमासमें और विशेषकर पूर्णिमाको तिलका दान करके मनुष्यको अश्वमेधका पुण्य प्राप्त होता है इसमें सन्देह नहीं। विष्णुने कहा भी है कि, ज्येष्ठानक्षत्रसे संयुक्त पूर्णिमा हो तो उसमें छत्र जूतेके दानसे मनुष्योंका अधिपति होता है।

हेमाद्रौ ज्योतिषे–"ऐन्द्रे गुरुः शशी चैव प्राजापत्ये रविस्तथा । पूर्णिमा ज्येष्ठमासस्य महाज्येष्ठी प्रकीर्तिता ॥" इति । इयं मन्वादिरपि । सा पौर्वाह्णिकी ग्राह्या । विशेषस्तु चैत्र उक्तः । तथाऽपरार्के वामनपुराणे–"उदकुम्भाम्बुदानं च तालवृन्तं सचन्दनम् । त्रिविक्रमस्य प्रीत्यर्थं दातव्यं ज्येष्ठमासि तु ॥" इति । इति श्रीकमलाकरभट्टकृते निर्णयसिन्धौ ज्येष्ठमासः समाप्तः । आषाढमासः । मिथुनसंक्रांतिनिर्णयः । मिथुनसंक्रांतौ पराः षोडश घटिकाः पुण्यकालः रात्रौ तु प्रागेवोक्तम् । आषाढशुक्लद्वितीयानिर्णयः । आषाढशुक्लद्वितीयायां रथोत्सवः । तदुक्तं तिथितत्त्वे स्कान्दे–"आषाढस्य सिते पक्षे द्वितीया पुष्यसंयुता । तस्यां रथे समारोप्य रामं वै भद्रया सह ॥ यात्रोत्सवं प्रवर्त्याथ प्रीणयेत द्विजान्बहून् ॥" तथा–"ऋक्षाभावे तिथौ कार्या यात्रासौ मम पुण्यदा ॥" आषाढशुक्लदशमीनिर्णयः । आषाढशुक्लदशमी पौर्णमासी च मन्वादिः । सा च पूर्वाह्णव्यापिनी ग्राह्येति प्रागुक्तम् । आषाढशुक्लद्वादशीनिर्णयः । आषाढशुक्लद्वादश्यामनुराधायोगरहितायां पारणं कुर्यात् । तदुक्तं भविष्ये–"आभाकासितपक्षेषु मैत्रश्रवणरेवती । संगमे नहि भोक्तव्यं द्वादशद्वादशीर्हरेत् ॥" अस्यार्थः–आषाढभाद्रपदकार्तिकशुक्लद्वादशीष्वनुराधाश्रवणरेवतीयोगे पारणं न कुर्यादिति । अत्र यद्यप्येतावतोक्तम् । तथाप्यनुराधाप्रथमपाद एव वर्ज्यः । तदुक्तं विष्णुधर्मे–"मैत्राद्यपादे स्वपितीह विष्णुः पौष्णान्त्यपादे प्रतिबोधमेति ।

हेमाद्रिग्रन्थमें ज्योतिषका यह वचन लिखा है कि, ज्येष्ठका बृहस्पति वा चन्द्रमा हो और रोहिणी नक्षत्रपर सूर्य हो तो वह पूर्णिमा महाज्येष्ठी कही है, यह मन्वादि भी है, सो पूर्वाह्णव्यापिनी ग्रहण करनी, इसका विशेष चैत्रके निर्णयमें लिख दिया है । अपरार्कमें वामनपुराणका कथन है कि, जलके घड़े और जल, तालका फल और चन्दनका त्रिविक्रम भगवान्‌की प्रीतिके निमित्त देना चाहिये । इति श्रीकमलाकरभट्टकृते निर्णयसिन्धौ भाषाटीकायां ज्येष्ठमासः । मिथुनकी संक्रांतिमें अगली सोलह घडी पवित्र काल है, रात्रिमें संक्रान्तिका पुण्यकाल तो पहले लिख आये ह । आषाढशुक्ल द्वितीयाको रथयात्राका उत्सव होता है । यही तिथितत्त्वग्रन्थमें स्कन्दपुराणका वाक्य है कि, पुष्यनक्षत्रसे युक्त, आषाढशुक्ल द्वितीयाको सुभद्रासहित मुझे रामको बैठाकर यात्राका उत्सव करना चाहिये और बहुतसे ब्राह्मणको प्रसन्न करे । लिखा भी है कि, पुष्य नक्षत्र न हो तो तिथियोंमें ही मेरी प्रसन्नताके निमित्त रथयात्रा करनी चाहिये । आषाढ शुक्ल दशमी और पूर्णिमा मन्वादि है, वह पूर्वाह्णव्यापिनी लेनी यह पहले लिख आये हैं । अनुराधा नक्षत्रके योगसे हीन आषाढशुक्ल द्वादशीको पारणा करे, यही भविष्यपुराणमें लिखा है कि, आषाढ, भाद्रपद, कार्तिककी शुक्ल द्वादशीको क्रमसे अनुराधा, श्रवण, रेवतीका योग हो तो भोजन न करे । यदि भोजन करे तो द्वादश एकादशीका फल नष्ट होता है । यद्यपि इस वाक्यमें संपूर्ण अनुराधा लिखा है तथापि अनुराधाका प्रथम चरण ही वर्जित है, यही विष्णुधर्ममें लिखा है–अनुराधाके प्रथम चरणमें विष्णु सोते हैं, रेवतीके प्रथम चरणमें जागते हैं, श्रवणके मध्यमें करवट

श्रुतेश्च मध्ये परिवर्तमेति सुप्तिप्रबोधपरिवर्तनमेव वर्ज्यम् ॥" इति । वस्तुतस्तु पूर्ववचनमिदं च निर्मूलम् ॥ तत्र विष्णुशयनोत्सवनिर्णयः । अत्रैव विष्णुशयनोत्सव उक्तो हेमाद्रौ ब्राह्मे–"एकादश्यां तु शुक्लायामाषाढे भगवान् हरिः । भुजंगशयने शेते क्षीरार्णवजले सदा ॥" इति । कल्पतरौ यमः–"क्षीराब्धौ शेषपर्यंके आषाढ्यां संविशेद्धरिः । निद्रां त्यजति कार्त्तिक्यां तयोः संपूजयेत्सदा ॥ ब्रह्महत्यादिकं पापं क्षिप्रमेवं व्यपोहति । हिंसात्मकैस्तु किं तस्य यज्ञैः कार्यं महात्मनः ॥ प्रस्वापे च प्रबोधे च पूजितो येन केशवः ॥ २ ॥" टोडरानंदेऽपि स्कांदे–'आषाढशुक्लैकादश्यां कुर्यात्स्वप्नमहोत्सवम् ।' अयं द्वादश्यामप्युक्तः । "आभाकासितपक्षेषु मैत्रश्रवणरेवती । आदिमध्यावसानेषु प्रस्वापावर्तनोत्सवाः । निशि स्वापो दिवोत्थानं संध्यायां परिवर्तनम् ॥" अत्र पादयोगेऽपि द्वादश्यामेवकारयेत्–"आभाकाद्येषु मासेषु मिथुने माधवस्य च । द्वादश्यां शुक्लपक्षे च प्रस्वापावर्तनोत्सवाः ॥" इति भविष्योक्तेः । "द्वादश्यां संधिसमये नक्षत्राणामसंभवे । आभाकासितपक्षेषु शयनावर्तनादिकम् ॥" इति वाराहोक्तेश्च । द्वादश्यामित्यत्रापि पारणाहोममात्रं विवक्षितम् ॥ 'पारणाहे पूर्वरात्रे घंटादीन्वादयन्महः' इति रामा-

---

लेते हैं । इससे सोना, जागना, करवट लेनेका ही भोजनके समयमें निषेध है । सिद्धान्त तो यह है कि, प्रथमका यह वाक्य निर्मूल है । इसमें ही विष्णुशयनका उत्सव हेमाद्रिमें ब्रह्मपुराणके मतसे लिखा है कि, आषाढशुक्ल एकादशीको शेषशय्यापर भगवान् क्षीरसागरके जलमें निरन्तर शयन करते हैं । कल्पतरुग्रन्थमें यमराजका कथन है कि, आषाढकी एकादशीको भगवान् क्षीरसागरमें शयन करते हैं और कार्तिकशुक्ल एकादशीको जागते हैं । इससे इन दोनोंमें जो मनुष्य विष्णु भगवान्का सदैव पूजन करते हैं उनके ब्रह्महत्यादि पाप सब दूर होते हैं । जो मनुष्य सोने और जागनेके दिन केशव भगवान्का पूजन करता है उसको हिंसारूप यज्ञोंसे क्या प्रयोजन है ? टोडरानन्दग्रन्थमें स्कंदपुराणका वाक्य है कि, आषाढशुक्ल एकादशीको विष्णुशयनका उत्सव करना चाहिये,वह उत्सव द्वादशीमें भी लिखा है । कारण कि, भविष्यपुराणका वाक्य है कि आषाढ, भाद्रपद, कार्त्तिक शुक्ल द्वादशीको क्रमसे अनुराधा, श्रवण, रेवती नक्षत्रोंके आदि मध्य और अन्तके चरणोंमें क्रमसे सोने, करवट लेने और जागनेका उत्सव करे । उनमें शयनका उत्सव रात्रिमें और जागनेका उत्सव दिनमें और करवट लेनेका उत्सव सन्ध्यामें करना चाहिये । अन्य समय भी पूर्वोक्त चरणोंका हो तो भी पूर्वोक्त उत्सवको द्वादशीमें ही करना चाहिये । आषाढ, भाद्रपद, कार्त्तिक आदि महीनोंमें और मिथुन आदिके सूर्यमें भगवान्के शयन आदिका उत्सव शुक्लद्वादशीको करना चाहिये । वाराहपुराणमें लिखा है कि, द्वादशीको सन्ध्याके समय जबतक नक्षत्रोंका उदय न हो तबतक आषाढ, भाद्रपद, कार्तिकमें विष्णुके शयन आदिका उत्सव करना । यह द्वादशी पदसे पारणाका दिन ग्रहण करना । कारण कि,

र्चनचन्द्रिकोक्तेः। अत्रैकादशीद्वादश्योर्देशभेदेन व्यवस्था। इदं च मलमासे न कार्यम्। 'ईशानस्य बलिर्विष्णोः शयनं परिवर्तनम्' इति कालादर्शे निषेधात्। यद्यपि-"एकादश्यां तु गृह्णीयात्संक्रान्तौ कर्कटस्य च। आषाढ्यां वा नरो भक्त्या चातुर्मास्यव्रतक्रियाम्॥" इति हेमाद्रौ ब्रह्मवैवर्तम्। तदपि मलमासे सति द्रष्टव्यम्। "मिथुनस्थो यदा भानुरमावास्याद्वयं स्पृशेत्। द्विराषाढः स विज्ञेयो विष्णुः स्वपिति कर्कटे॥" इति तत्रैव मोहचूलोत्तरोक्तेः। तत्र चातुर्मास्यव्रतनिर्णयः। अत्रैव चातुर्मास्यव्रतारंभ उक्तो भारते-" आषाढे तु सिते पक्षे एकादश्यामुपोषितः। चातुर्मास्यव्रतं कुर्याद्यत्किंचिन्नियतो नरः॥" इति। अस्य नित्यत्वं तत्रैवोक्तम्। "वार्षिकांश्चतुरो मासान् वाहयेत्केनचिन्नरः। व्रतेन नो चेदाप्नोति किल्बिषं वत्सरोद्भवम्॥ असंभवे तुलार्केऽपि कर्तव्यं तत्प्रयत्नतः॥" इति। तेनाषाढशुक्लैकादश्यां द्वादश्यां पौर्णमास्यां वारम्भः। समाप्तिस्तु कार्त्तिकशुक्लद्वादश्यामेव। तदुक्तं हेमाद्रौ भारते-"चतुर्धा गृह्य वै चीर्णं चातुर्मास्यव्रतं नरः। कार्तिके शुक्लपक्षे तु द्वादश्यां तत्समापयेत्॥" इति। अस्यारंभः शुक्रास्तादावपि कार्यः। "न शैशवं न मौढ्यं च शुक्रगुर्वोर्न वा तिथेः। खण्डत्वं चिन्तयेदादौ चातुर्मास्यविधौ नरः" इति हेमाद्रौ वृद्धगार्ग्योक्तेः। इदं च द्वितीयाद्यारम्भविषयकम्।

रामार्चनचन्द्रिकामें लिखा है कि, पारणाके दिन पहली रात्रमें घण्टा आदिको वारंवार बजावे, यहाँ एकादशी और द्वादशीकी व्यवस्था देशभेदसे जाननी चाहिये। इस उत्सवको मलमासमें न करना चाहिये। कारण कि, कालादर्शमें शिवकी बली और विष्णुका शयन और करवट लेना वार्जित है। और जो यह लिखा है कि, कर्ककी संक्रांति और आषाढ़की एकादशीको मनुष्य भक्तिपूर्वक चातुर्मास्यव्रतको ग्रहण करे, यह ब्रह्मवैवर्त्तका कहा मलमास हो तो जानना चाहिये। कारण कि, उसी हेमाद्रिग्रन्थमें मोहचूडोत्तरका यह वाक्य है कि, जब मिथुनका सूर्य दो अमावास्याओंको स्पर्श करे, उसीको दो आषाढ़ कहते हैं और विष्णु कर्ककी सक्रांतिमें शयन करते हैं। इसी एकादशीको चातुर्मास्यव्रतका आरम्भ करना कहा है कि, आषाढशुक्ल एकादशीको व्रत करके मनुष्य सावधानीसे किसी न किसी चातुर्मास्यव्रतका आरम्भ करे और इस व्रतको नित्यत्व भी भारतमें ही लिखा है कि, मनुष्यको वर्षाके चार महीने किसी न किसी व्रतसे व्यतीत करने चाहिये, न करे तो वर्ष दिनके पापको प्राप्त होता है। अर्थात् वर्ष दिनका पाप नष्ट नहीं होता। वर्षामें न हो सके तो तुलाकी संक्रांतिमें भी व्रतादि करना, इससे आषाढशुक्ल एकादशी वा पूर्णिमाको आरम्भ करे। समाप्ति तो कार्तिकशुक्ल द्वादशीको करनी। यही हेमाद्रिमें भारतका वाक्य है कि, मनुष्य चार प्रकारके चातुर्मास्यव्रतको ग्रहण करके कार्तिकशुक्ल द्वादशीको पूर्ण करे। शुक्रके अस्त आदिमें भी इसका आरम्भ कर दे। कारण कि, हेमाद्रिमें गर्गने कहा है कि, शुक्र और गुरुका बाल्य और अस्त और तिथिकी हानि इनकी चिन्ता मनुष्यको

प्रथमारम्भस्तु न भवत्येव । आशौचमध्येऽपि द्वितीयाद्यारम्भो भवति । "अशुचिर्वा शुचिर्वापि यदि स्त्री यदि वा पुमान् । व्रतमेतन्नरः कृत्वा मुच्यते सर्वपातकैः" इति भार्गवार्चनदीपिकायां स्कान्दोक्तेः । 'आरब्धे सूतकं न स्यादनारब्धे तु सूतकम्' इति विष्णुवचनाच्च । यत्तु-"असंक्रान्तं तथा मासं दैवे पित्र्ये च कर्मणि । मलमासमशौचं च वर्जयेन्मतिमान्नरः ॥" इति हेमाद्रौ चातुर्मास्यप्रकरणे भविष्यवचनं तत् पूषानुमन्त्रवदसंबद्धं मध्ये पठितमिति ज्ञेयम् । अन्यथा पित्र्यस्य पूर्वोक्तस्य विवाहादेश्च चातुर्मास्यव्रते कः प्रसंगः । प्रकरणनिवेशेऽपि वा प्रथमारम्भविषयं ज्ञेयम् । केचित्तु प्रतिवर्षं चातुर्मास्यव्रतप्रयोगानां भिन्नत्वादाशौचादिपाते द्वितीयादिप्रयोगो न भवत्येव इत्याहुः । तन्न-"प्रतिवर्षं च यः कुर्यादेवं वै संस्मरन्हरिम् । देहान्तेऽतिप्रदीप्तेन विमानेनार्कवर्चसा ॥ मोदते विष्णुलोकेऽसौ यावदाभूतसंप्लवम् ॥" इति हेमाद्रौ भविष्यवचनादित्यास्तां विस्तरः । तत्र शैवादीनामपि व्रतनिर्णयः । इदं च शिवभक्तादिभिरपि कार्यम् । "शिवे वा भक्तिसंयुक्तो भानौ वा गणनायके । कृत्वा व्रतस्य नियमं यथोक्तफलभाग्भवेत् ॥" इति ब्रह्मवैवर्तात् ॥ व्रतग्रहणप्रकारस्तु हेमाद्रौ भविष्ये-"महापूजां ततः कुर्याद्देव-

---

चातुर्मास्यके व्रतारम्भमें न करना. यह भी दूसरे आरम्भमें है, प्रथम आरम्भ तो शुक्रास्तमें नहीं हो सकता । भार्गवार्चनदीपिकामें स्कन्दपुराणका यह वाक्य लिखा है कि, अशौचके मध्यमें भी दूसरा आरम्भ हो सकता है। अशुद्ध हो वा शुद्ध हो, स्त्री हो वा पुरुष हो इस व्रतको करके मनुष्य सब पापोंसे छूटता है. विष्णुने भी कहा है, आरम्भ किये व्रतमें सूतक नहीं और जिसका आरम्भ न किया हो उसमें सूतक लगता है और जो यह हेमाद्रिमें भविष्यका कथन है कि, संक्रांतिरहित महीने और मलमास और आशौचको बुद्धिमान् मनुष्य देव और पितृकर्ममें छोड़ दे । यह वाक्य चातुर्मास्यव्रतके प्रकरणमें पूषानुमन्त्रण मन्त्रके समान असंगत बीचमें पढ़ दिये हैं, यह जानना । नहीं तो पूर्वोक्त पितृकर्म और विवाह आदिकका क्या प्रसंग था ? और प्रकरण हो भी तो प्रथमारम्भमें जानना । कोई यह कहते हैं कि, प्रतिवर्ष चातुर्मास्य व्रतके करनेको पृथक् पृथक् होनेसे अशौच आदि आपड़ें तो उनमें द्वितीय आदि कहना नहीं बन सकता, सो उचित नहीं है । जो मनुष्य हरिका स्मरण करता हुआ देवकर्मको प्रतिवर्ष करता है, वह सूर्यके प्रकाश सदृश विमानमें बैठकर प्रलय पर्यंत विष्णुके संग आनन्द भोगता है, यह हेमाद्रिमें भविष्यपुराणका वाक्य है, इतना ही विस्तार बहुत है । शिवजीके भक्तोंको भी इस व्रतका आरम्भ करना चाहिये । कारण कि, ब्रह्मवैवर्त्तपुराणमें लिखा है कि, शिवजी वा सूर्य वा गणेशको भक्तिवाला मनुष्य हो तो इस व्रतको करके यथोक्त फलको भोगता है । व्रतके ग्रहण करनेका प्रकार तो हेमाद्रिमें भविष्यपुराणके वाक्यसे लिखा

देवस्य चक्रिणः। जातीकुसुममालाभिर्मन्त्रेणानेन पूजयेत् ॥ सुप्ते त्वयि जगन्नाथे जगत्सुप्तं भवेदिदम्। विबुद्धे च विबुद्धचेत प्रसन्नो मे भवाच्युत ॥ एवं तां प्रतिमां विष्णोः पूजयित्वा स्वयं नरः। प्रभाषेताग्रतो विष्णोः कृताञ्जलिपुटस्तथा ॥ चतुरो वार्षिकान्मासान्देवस्योत्थापनावधि। इमं करिष्ये नियमं निर्विघ्नं कुरु मेऽच्युत ॥ इदं व्रतं मया देव गृहीतं पुरतस्तव ॥ निर्विघ्नं सिद्धिमायातु प्रसादात्तव केशव ॥ गृहीतेऽस्मिन् व्रते देव पञ्चत्वं यदि मे भवेत् ॥ तदा भवतु सम्पूर्णं त्वत्प्रसादाज्जनार्दन ॥ गृहितेऽस्मिन्व्रते देव यद्यपूर्णे मृतो ह्यहम्। तन्मे भवतु सम्पूर्णं त्वत्प्रसादाज्जनार्दन ॥ ७ ॥" इति। तत्र भार्गवार्चनदीपिकायां नृसिंहपरिचर्यायां च भविष्ये–"श्रावणे वर्जयेच्छाकं दधि भाद्रपदे तथा। दुग्धमाश्वयुजे मासि कार्तिके द्विदलं त्यजेत्॥" इति। स्कान्देऽपि चातुर्मास्यकल्पे–"चत्वार्येतानि नित्यानि चतुराश्रमवर्णिनाम्। प्रथमे मासि कर्तव्यं नित्यं शाकव्रतं नरः ॥ द्वितीये मासि कर्तव्यं दधिव्रतमनुत्तमम्। पयोव्रतं तृतीये तु चतुर्थेऽपि निशामय ॥ द्विदलं बहुबीजं च वृन्ताकं च विवर्जयेत्। नित्यान्येतानि विप्रेंद्र व्रतान्याहुर्मनीषिणः ॥ जम्बीरं राजमाषांश्च मूलकं रक्तमूलकम्। कूष्माण्डं

है कि, फिर देवताओंके देव चक्रधारी भगवान्‌की पूजा करे और जुहीके फूलोंकी मालासे पूजन करे! हे जगन्नाथ! तुम जब शयन करते हो तब संपूर्ण जगत् सोता है और जब तुम जागते हो तब सब जगत् जागता है, इससे हे अच्युत! तुम मेरे ऊपर प्रसन्न हो। इस प्रकार विष्णुकी प्रतिमाका पूजन करके प्रातःकालके समय विष्णुके आगे कर जोड कर प्रार्थना करे कि, वर्षाके चार मास देवके उठने पर्यंत इस व्रतको करता हूं, हे अच्युत! मेरे व्रतको निर्विघ्न करो, यह व्रत मैंने आपके आगे ग्रहण किया है सो हे केशव! आपकी कृपासे निर्विघ्न सिद्ध हो। यदि इस व्रतके ग्रहण करनेपर मेरा मरण हो जाय तो भी हे जनार्दन! आपकी प्रसन्नतासे व्रत पूर्ण हो जाय। हे देव! यदि व्रतकी पूर्ति ग्रहण न होनेतक मैं मर जाऊं तो भी हे जनार्दन! आपकी कृपासे पूर्ण हो। यह सब भार्गवार्चनदीपिका और नृसिंहचर्य्यामें भविष्यपुराणके वाक्योंसे लिखा है। श्रावणमें शाक, भादोंमें दही और आश्विनमें दूध और कार्तिकमें द्विदल (दाल) इनको वर्जना चाहिये। स्कंदपुराणके चातुर्मास्यकल्पने लिखा है कि, चारों आश्रम और चारों वर्णोंको ये चार नित्य जानने अर्थात् सदा करने चाहिये कि, प्रथम महीनेमें शाकव्रतको, दूसरेमें दधिव्रतको, तीसरेमें दूधव्रतको और चौथेमें द्विदल और बहुत बीजवाले बैंगन आदिको मनुष्योंको त्यागना चाहिये। हे विप्रेंद्र! बुद्धिमानोंने ये नित्यव्रत लिखे हैं, जम्बीरीनिम्बू, लोबिया, मूली और लालमूली (सलगम), काशीफल, गन्नेको चातुर्मास्यमें मनुष्य त्याग करें, इसमें प्रमाण नहीं मिलता। इसी प्रकार विशेषसे बेर, आंवला, काशीफल, इमली इनको वर्ज दे। जो

चेक्षुदण्डं च चातुर्मास्ये त्यजेद्बुधः" ॥ ४ ॥ तथा-"विशेषाद्बदरीं धात्रीं कूष्माण्डं तिन्तिडीं त्यजेत् । जीर्णं धात्रीफलं ग्राह्यं कथंचित्कायशोधनम् ॥" इति । तीर्थसौख्ये स्कान्दे-"वार्षिकांश्चतुरो मासान् प्रसुप्ते वै जनार्दने । मंचखट्वादिशयनं वर्जयेद्भक्तिमान्नरः ॥ अनृतौ वर्जयेद्भार्यां मांसं मधुपरौदनम् । पटोलं मूलकं चैव वृन्ताकं च न भक्षयेत् ॥ अभक्ष्यं वर्जयेद्दूरान्मसूरं सितसर्षपम् । राजमाषान्कुलत्थांश्च आशुधान्यं च संत्यजेत् ॥ शाकं दधि पयो माषान्श्रावणादिषु संत्यजेत् ॥ ४ ॥" अत्र त्यजेदिति वर्जनसंकल्परूपः पर्युदासो ज्ञेयः । व्रतोपक्रमात् । अत्र केचित्-'शाकाख्यं पत्रपुष्पादि' इत्यमरकोशस्य शक्यतेऽशितुमनेनेति शाक इति क्षीरस्वामिना व्याख्यानात् व्यञ्जनमात्रस्य निषेधमाचक्षते ॥ अन्ये तु शाकशब्दस्य पत्रादिदशविधशाके योगरूढत्वात्, योगाच्च रूढेर्बलीयस्त्वात् सूपादीनामपि त्यागापत्तेश्च तत् प्रत्याचक्षते । तेन-"मूलपत्रकरीराग्रफलकांडाधिरूढकाः । त्वक् पुष्पं कवकं चेति शाकं दशविधं स्मृतम् ॥" इति क्षीरस्वामिनोक्तस्य शाकस्य निषेध इति । अधिरूढकः अंकुरः । वस्तुतस्तु-"तत्तत्कालोद्भवाः शाका वर्जनीयाः प्रयत्नतः । बहुबीजमबीजं च विकारि च विवर्जयेत् ॥" इति भविष्यवचनात्तत्कालोत्पन्नानां दशविधशाकानां निषेधः । अत्र तत्कालोद्भवजातीयत्वं विवक्षितम् । तेनातपादिशोषितानां वर्षा-

---

किसी प्रकार देहकी शुद्धि (जुलाब) करनी हो तो पुराने आंवले ग्रहण कर ले । तीर्थसौख्यमें स्कंदपुराणका कथन है कि, जनार्दनके शयन अर्थात् वर्षाके चार महीनेभर भक्तिमान् मनुष्य मञ्च और खट्वाको वर्ज दे और ऋतुकालको त्यागकर भार्या (स्त्री) को वर्ज दे । मांस, शहत, पराया भात, पटोल, मूली, बैंगन न खाय । अभक्षको त्याग दे, मसूर श्वेतसरसों, कुलथी, आसूधान्य, (समा आदि) को त्याग दे और शाक, दधि, दूध, उडदको श्रावण आदि महीनोंमें त्याग दे । इसमें त्यागसे वर्जनेका संकल्प समझना । यहीं कोई शाकपदसे जिसके संग अन्न लगाकर खाया जाय इस अमरकोशकी व्युत्पत्ति और क्षीरस्वामीके व्याख्यानके व्यञ्जनमात्रका निषेध कथन करते हैं । और तो यह कहते हैं कि, पत्ते आदिकोंके बने हुए दश प्रकारके शाकमें शाकपद रूढ है और योगसे रूढी बलवान् है अन्यथा दाल आदिकोंका भी निषेध हो जायगा । इससे पूर्वोक्त कथन सत्य नहीं, इससे मूल, पत्र, करीर, फल और डालियोंपर चढी बेल, त्वचा, पुष्प, छत्राक (ढाल) क्षीरस्वामीके कहे हुए दश प्रकारके शाकका निषेध है, डालोंपर चढी हुई बेलोंका जो दश प्रकारका शाक कहा है उसका ही निषेध है । अधिरूढ पदसे अंकुर ग्रहण कर लेते हैं । सिद्धान्त तो यह है कि, उस उस कालमें उत्पन्न हुए शाक यत्नसे वर्जने और बहुबीज, बीजरहित और विकारीको भी त्याग देना चाहिये । इस भविष्यपुराणके वाक्यसे उस कालमें उत्पन्न हुए दश प्रकारके शाकोंका निषेध है और वे भी उस कालमें उत्पन्न हुएके सजातीय लेने, न कि उस कालके उत्पन्न हुए, इससे अन्य वर्षाऋतुमें उत्पन्न हुए और

न्तरोद्भवानामपि निषेधः। अत्र तत्कालोद्भवत्वमात्रं विवक्षितं न तु तन्मात्रकालोद्भवत्वं गौरवात्। तेनान्यकालोद्भवानां तत्कालोद्भवानां च बिंबादीनां निषेधः। अत्र तत्कालोद्भवा इति वीप्सावशात् स्वस्वकालोद्भवानां सर्वेषां निषेध इति निष्कर्षः। बहुबीजमित्यनेकबीजमिति केचित्। इतरावयवापेक्षया बीजावयवा यत्र बहवस्तदित्यन्ये। अबीजं कन्दलादि। वस्तुतस्तु। इदं महानिबन्धेष्वभावान्निर्मूलमेव। आचारप्रदीपे–"वृन्ताकं च कलिङ्गं च बिल्वौदुम्बरभिस्सटाः। उदरे यस्य जीर्यंते तस्य दूरतरो हरिः॥" तथापरार्के देवलः–"ब्रह्मचर्यं तथा शौचं सत्यमामिषवर्जनम्। व्रतेष्वेतानि चत्वारि वरिष्ठानीति निश्चयः॥" आमिषाणि चोक्तानि रामार्चनचंद्रिकायां पाद्मे–"प्राण्यङ्गचूर्णं चर्माम्बु जम्बीरं बीजपूरकम्। अयज्ञशिष्टमाषादि यद्विष्णोरानिवेदितम्॥ दग्धमन्नं मसूरं च मांसं चेत्यष्टधामिषम्। रुच्यं तत्तद्देशलभ्यं सुप्ते देवे विवर्जयेत्॥ २॥" पाद्मे कार्त्तिकमाहात्म्ये–"गोछागीमहिषीदुग्धादन्यदुग्धादि चामिषम्। धान्ये मसूरिकाः प्रोक्ता अन्नं पर्युषितं तथा॥ द्विजक्रीता रसाः सर्वे लवणं भूमिजं तथा। ताम्रपात्रस्थितं गव्यं जलं पल्वलसंस्थितम्॥ आत्मार्थं पाचितं चान्नमामिषं तत्स्मृतं बुधैः॥ ३॥" तथा–"निष्पावान् राजमाषांश्च मसूरं

धूपमें सुखाये हुए शाकोंको भी त्यागना चाहिये। और उस कालमें उत्पन्न हुओंके सजातीय ही शाक लेने चाहिये, कुछ उसी समय पैदा हुए ग्रहण न करने, उनके लेनेमें गौरव है, और यहां उस उस समय उत्पन्न हुए वीप्सा (दो बार पढ़ना) के वशसे अपने २ समयमें उत्पन्न हुए सब शाकोंका निषेध है, यह सब सिद्धान्त है। और कोई बहुवीज शब्दसे अनेक बीज ग्रहण करना कहते हैं और कोई यह कहते हैं कि, दूसरे अवयवोंकी अपेक्षा, जिसमें अवयव बहुत हों उसे बहुबीज कहते हैं और अबीज पदसे कन्द आदि ग्रहण करने। सिद्धान्त तो यह है कि, यह बड़े २ ग्रन्थोंमें न मिलनेसे यह अप्रमाण है। आचारदीपमें कहा है कि, बैंगन, कलिंग, बेर, गूलर ये जिसके उदरमें पचकर रह जायँ उससे नारायण दूर रहते हैं। अपरार्कमें देवलने कहा है कि, व्रतोंमें ये चार व्रत अत्यन्त श्रेष्ठ हैं कि, ब्रह्मचर्य, शौच, सत्य बोलना, मांसका त्याग। रामार्चनचन्द्रिकामें पद्मपुराणके वाक्यसे इतने आमिष लिखे हैं कि, प्राणीके अंगका चूर्ण, चमड़ेका जल, जम्बीरी, बिजौरा, यज्ञसे नहीं शेष रहा अन्न, मसूर ये आठ प्रकारका आमिष ही हैं। उस उस देशमें मिलनेयोग्य और रोचक इनको देवके शयनकालमें त्याग देना चाहिये। कार्तिकमाहात्म्यमें पद्मपुराणके वाक्यसे लिखा है कि, गौ, बकरी, भैंसके दूधसे अन्य दूध भी आमिष कहाता है और अन्नमें मसूर और बासी अन्न तथा ब्राह्मणसे खरीदे हुए सम्पूर्ण रस और भूमिमें उत्पन्न लवण, ताम्बेके पात्रमें स्थित गौका दूध, दही, घी, छोटे सरोवरका जल, अपने निमित्त पकाया अन्न यह सब पण्डितोंने आमिष

सन्धितानि च । वृन्ताकं च कलिंगं च सुप्ते देवे विवर्जयेत् " ॥ सन्धितानि लवण- शाकादीनि । तत्रैव विष्णुधर्मे-'चतुर्ष्वपीह मासेषु हविष्याशी न पापभाक् ॥' हविष्याणि तु पृथ्वीचन्द्रोदये भविष्ये-"हैमन्तिकं सितास्विन्नं धान्यं मुद्रा यवा- स्तिलाः । कलायकंगुनीवारवास्तुकं हिलमोचिका ॥ षाष्टिका कालशाकं च मूलकं केमुकेतरत् । कंदः सैंधवसामुद्रे गव्ये च दधिसर्पिषी ॥ पयोऽनुद्धृतसारं च पनसा- म्रहरीतकी । पिप्पली जीरकं चैव नागरंगं च तिन्तिणी ॥ कदली लवली धात्री फलान्यगुडमैक्षवम् । अतैलपक्वं मुनयो हविष्याणि प्रचक्षते ॥ ४ ॥" इति । सिता- स्विन्नम् अनूष्मपक्वं धान्यं च तंदुलाः ॥ केमुकम् 'केमुत' इति प्राच्येषु प्रसिद्धः कंदः॥ 'कलायस्तु सतीनकः' इत्यमरः।'वटुरी' इति प्रसिद्धं धान्यम् । मदनरत्नेऽप्येवम् ॥ अगस्त्यसंहितायाम् । हैमन्ताद्युक्त्वा-"नारिकेलफलं चैव कदली लवली तथा । आम्रमामलकं चैव पनसं च हरीतकी ॥ व्रतान्तरप्रशस्तं च हविष्यं मन्वते बुधाः॥" अन्यान्यपि व्रतान्युक्तानि हेमाद्रौ भविष्ये-"स्त्री वा नरो वा मद्भक्तो धर्मार्थं सुदृढव्रतः ॥ गृह्णीयान्नियमानेतान्दन्तधावनपूर्वकान् ॥ तेषां फलानि वक्ष्यामि तत्क- र्तॄणां पृथक् पृथक् । मधुरस्वरो भवेद्राजा पुरुषो गुडवर्जनात् ॥ तैलस्य वर्जनाद्रा जन्सुन्दरांगः प्रजायते । कटुतैलपरित्यागाच्छत्रुनाशः प्रजायते ॥ योगाभ्यासी भवेद्यस्तु स ब्रह्मपदमाप्नुयात् । तांबूलवर्जनाद्भोगी रक्तकंठश्च जायते ॥ घृत-

---

कहे हैं और समा, लोबिया, मसूर, सणका साग, बैंगन, कलिंग इनको देवशयनमें त्याग देना । वहां ही विष्णुधर्मका कथन है कि, जो मनुष्य चातुर्मास्यमें हविष्य भोजन करता है वह पापभागी नहीं होता । पृथ्वीचन्द्रोदयमें भविष्यपुराणके वाक्यसे हविष्य ये लिखे हैं कि, हेमन्तकी खांड, विना अग्नि पकाया अन्न, चावल, मूंग, यव, तिल, कलाय (सतोनक) जिसको मटर कहते हैं, कांगनी, नीवार, बथुवा, हिलमोचिका, साठी, कालशाक, मूलीके मुखसे भिन्न कन्द, शैला, समुद्रझाग, दही, घी, गौका दूध, पनस (कटहल), हरड, पीपल, जीरा, नागरमोथा, इमली, केला, लवली, आँवले, गुडसे भिन्न इक्षुका विकार,विना तेल पकाये हुए इनको मुनिजन हविष्य कहते हैं । मदनरत्नमें भी इसी प्रकार लिखा है, अगस्त्यसंहितामें भी पूर्वोक्त हेमन्त आदिको कहकर यह कहा है कि, नारियल, केला, लवली, आम्र, आंमला, पनस, हरड और अन्य व्रतोंमें प्रसिद्ध (ताल आदि) को भी पण्डितजनोंने हविष्य कहा है और भी फल हेमाद्रिमें भविष्यपुराणके वाक्यसे इस प्रकार लिखे हैं कि, स्त्री वा मनुष्य मेरा भक्त दृढ संकल्प करके दन्तधावन (दतोन) करके इन नियमोंको ग्रहण करे, इनके करनेवालेके फलोंको भिन्न भिन्न कहता हूं कि, गुडके त्यागनेसे मधुरस्वरवाला राजा होता है, तैलके त्यागनेसे सुन्दरवर्ण मिलता है, कडुवे तेल त्यागनेसे शत्रुनाश होते हैं, जो योगका अभ्यास करे वह ब्रह्मपदको प्राप्त होता है, ताम्बूलके त्यागनेसे भोगवान् और लाल

त्यागाच्च लावण्यं सर्वस्निग्धतनुर्भवेत्। शाकपत्राशनाद्भोगी अपक्वादोऽमलो भवेत्॥ भूमौ प्रस्तरशायी च विप्रो मुनिवरो भवेत्। एकांतरोपवासेन ब्रह्मलोके महीयते॥ धारणान्नखरोम्णां च गंगास्नानफलं लभेत्। मौनव्रती भवेद्यस्तु तस्य ज्ञास्खलिता भवेत्॥ भूमौ भुंक्ते सदा यस्तु स पृथिव्याः पतिर्भवेत्। प्रदक्षिणाशतं यस्तु करोति स्तुतिपाठकः॥ हंसयुक्तविमानेन स च विष्णुपुरं व्रजेत्। अयाचितेन प्राप्नोति पुत्रान् धर्म्यान्विशेषतः॥ षष्ठान्नकालभोक्ता यः कल्पस्थायी भवेदिति। पर्णेषु यो नरो भुंक्ते कुरुक्षेत्रफलं लभेत्॥ गुडवर्जी नरो दद्यात्तद्भृतं ताम्रभाजनम्। सहिरण्यं नरश्रेष्ठ लवणस्याप्ययं विधिः॥ सुप्ते देवे तु यो विष्णोः शिवस्याङ्गण-मर्चयेत्। पंचवर्णैस्तु यो नित्यं स्वस्तिकैः पद्मकैस्तथा॥ स याति रुद्रलोकं हि गाणपत्यमवाप्नुयात्"॥ घृतांते दाननिर्णयः। अथैषां समाप्तौ कार्तिक्यां दानानि। एकभुक्तव्रते दंपती संपूज्य धेनुर्देया। नक्ते वस्त्रयुगम्। एकांतरोपवासे गौः। भूशयने शय्या। षष्ठकालभोजने गौः। व्रीहिगोधूमादित्यागे हैमव्रीह्यादि। कृच्छ्रे गोयुग्मम्। शाकाशने गौः पयोव्रते च। दाधिमधुघृतव्रते वासो गौश्च। ब्रह्मचर्ये स्वर्णमूर्तिः। ताम्बूलव्रते वासोयुगम्। मौने घृतकुम्भो वस्त्रयुगं घण्टा च॥

कण्ठ होता है, घृतके त्यागनेसे शोभी और चिकना शरीर होता है, पके हुए शाकोंके भोजनसे भोगी और कच्चोंके खानेसे उज्ज्वल होता है, भूमिके बिछौनेपर सोनेवाला ब्राह्मण मुनियोंमें श्रेष्ठ होता है, एकान्तव्रत (तृतीयदिनभोजन) से ब्रह्मलोकमें प्रतिष्ठित होता है, नख और कशोंके धारणसे गंगास्नानका फल मिलता है, जो मौनव्रत धारण करता है, उसकी आज्ञा सब पालन करते हैं, जो सदैव भूमिपर भोजन करता है वह भूमिका पति होता है और जो स्तोत्रपाठ करता है वह भूमिका पति होता है और स्तोत्रपाठ करता हुआ जो सौ प्रदक्षिणा करता है, वह हंसोंके विमानमें बैठकर विष्णुके लोकमें गमन करता है, अयाचितके भक्षणसे धर्मवाले पुत्रोंको प्राप्त होता है, जो छठे समयमें भोजन करता है वह स्वर्गमें एक कल्पतक निवास करता है, जो मनुष्य पत्तोंमें भोजन करता है उसे कुरुक्षेत्र-स्नान फल मिलता है, गुड त्यागनेवाला मनुष्य गुडसे भरे सोने सहित तांबेके पात्रको दान करे। हे नरश्रेष्ठ ! लवणकी भी यही विधि है, देवशयनके समय जो विष्णु और शिवजीके आंगनकी ऐसी पूजा करता है, जिसमें पांच रंगके स्वस्तिक (पद्मके चिह्न) हों, वह रुद्रलोकमें जाकर गणोंका पति होता है। इसके उपरान्त इन व्रतोंकी समाप्ति होनेपर कार्तिककी पूर्णमासीको दान कहते हैं कि, नक्त व्रतमें दो वस्त्र, एकान्तर व्रतमें गौ, भूमिपर सोनेमें शय्या, छठे काल भोजनमें गौ, चावल और गेहूंके त्यागमें सोनेके तन्दुल आदि, कृच्छ्रव्रतमें दो गौ, शाकभोजन और दूधके व्रतमें गौ, मधु, दही, घीके व्रतमें वस्त्र और गौ ब्रह्मचर्यमें सोनेकी मूर्ति, ताम्बूलके व्रतमें दो वस्त्र, मौनमें घीका घट और दो वस्त्र और

देवाग्रे रंगमालिककरणे धेनुर्हेमपद्मं च । दीपिकाव्रते दीपिका वासोयुगं च । भूमिभोजने च कांस्यपात्रं गौश्च । चतुष्पथदीपे गोग्रासे च गोवृषौ । प्रदक्षिणाशते वस्त्रम् । अनुक्तेषु स्वर्णं गौश्च ॥ इत्यादि हेमाद्रौ ज्ञेयम् । तथा च भार्गवार्चनदीपिकायां पाद्मे—"शयनीबोधिनीमध्ये शमीदूर्वापमार्गकैः।भृंगराजेन देवांस्तु नार्चयीत कदाचन ॥" हेमाद्रौ पाद्मे—"आषाढादिचतुर्मासानभ्यंगं वर्जयेन्नरः । समाप्तौ च पुनर्दद्यात्तिलतैलयुतं घटम् ॥ आषढादिचतुर्मासं वर्जयेन्नखकृन्तनम् । वृंताकं गृञ्जनं चैव मधुसर्पिर्घटोचितम् ॥ कार्त्तिक्यां तत्पुनर्हैमं ब्राह्मणाय निवेदयेत्" ॥ ३ ॥ अन्यान्यपि केशकर्तनादिवर्जनसंकल्पानुरूपाणि पृथ्वीचन्द्रोदये ज्ञेयानि । टोडरानन्दे स्कांदे—"एकान्तरं द्व्यन्तरं वा कुर्यान्मासोपवासकम् । अनोदनं फलाहारं नक्तव्रतमथापि वा" तप्तमुद्राधारणानिर्णयः । अत्रैव तप्तमुद्राधारणमुक्तं रामार्चनचान्द्रिकायां भविष्ये—"शयन्यां चैव बोधिन्यां चक्रतीर्थे तथैव च । शंखचक्रविधानेन वह्निपूतो भवेन्नरः । इति । अतप्ततनूर्न तदामो अश्नुते' इति ऋग्वेदात् । "स होवाच याज्ञवल्क्यस्तस्मात् पुमानात्महिताय हरिं भजेत् । सुश्लोक-

---

घण्टा, देवके आगे चित्राम करनेमें गौ और सोनेके पद्म दीपकके व्रतमें, दीवट और दो वस्त्र, भूमि और पत्तोंके भोजनमें कांसीका पात्र और गौ, चौराहेमें दीपक और गोग्रासमें गौ और बैल, सौ प्रदक्षिणामें वस्त्र दे । जिनका दान नहीं कहा उनमें सोना और गौका दान करे इत्यादिक सब हेमाद्रिमें लिखा है, वहां देख लेना । ऐसे ही भार्गवार्चनदीपिकामें पद्मपुराणका वाक्य है कि, शयनी बोधिनी एकादशियोंके बीचमें मनुष्य शमी (जांड), दूब, चिरचिटा, भांगरा इनसे देवताओंका पूजन कदाचित् भी न करे । हेमाद्रिमें पद्मपुराणका वाक्य है कि, आषाढ आदि चार मासोंमें मनुष्य उबटना न लगावे और समाप्तिमें तिलके भरे घड़ेका दान करे, आषाढ आदि चार महीनोंमें नखोंका न कटवावे और बैंगन गाजरको भी न खाय और कार्तिकका पूर्णिमाको मधु और घीसे युक्त सोनेका घडा ब्राह्मणको दे और भी संकल्पसे त्यागने योग्य पदार्थ पृथ्वीचन्द्रोदयमें लिखे हैं वहां देखने चाहिये।टोडरानन्दमें स्कन्दपुराणका लेख है कि, एकान्तर वा दो अन्तर वा दो महीनोंका व्रत, चावलका त्याग फलाहार नक्तव्रत इनको करे। इसमें ही तप्तमुद्राका धारण रामार्चनचन्द्रिकामें भविष्यपुराणके वाक्यसे लिखा है, कि शयनी वा बोधिनीको और चक्रतीर्थमें शंखचक्रकी विधिसे मनुष्य अग्निसे पवित्र होजाय और ऋग्वेदमें भी कहा है कि, जो तप्त शरीर नहीं वह मोक्षको प्राप्त नहीं होता और

---

१ 'पवित्रं ते विततं ब्रह्मणस्पते प्रभुर्गात्राणि पर्येषि विश्वतः । अतप्ततनूर्न तदामो अश्नुते शृतास इद्वहन्तस्तत्समा शत' । ऋ० । ३ । ८ ॥ सायनभाष्यम्—हे ब्रह्मणस्पते मन्त्रस्य स्वामिन् सोम ते पवित्रं शोधकं अंगं विततं सर्वत्र विस्तृतं स प्रभुः प्रभविता त्वं गात्राणि पातुरंगाणि पर्येषि परिगच्छसि विश्वतः सर्वतः तव तत्पवित्रं अतप्ततनूः पयोव्रतादिना असंतप्तगात्रः आमः अपरिपक्वो नाश्नुते न व्याप्नोति शृता स इत् शृता एव परिपक्वा एव वहन्तो यागं निर्वहन्तः तत्पवित्र-

मौलेर्वर्माण्यग्निना संदधते" इति शतपथश्रुतेः ॥ "प्रतद्विष्णो अब्जचक्रे सुतप्ते जन्मांभोधी तर्तवे चर्षणींद्राः ॥ मूले बाह्वोर्दधन्ये पुराणात्तु लिंगान्यंगेतप्तायुधान्यर्पयंतः" ॥ इति सामवेदात् ॥ "अग्निहोत्रं यथा नित्यं वेदस्याध्ययनं यथा । ब्राह्मणस्य तथैवेदं तप्तमुद्रादिधारणम्" इति पद्मपुराणाच्चेति ॥ "ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रो वा यदि वेतरः । शंखमुद्रांकिततनुस्तुलसीमञ्जरीधरः ॥ गोपीचन्दनलिप्तांगो दृष्टश्चेत्तदघं कुतः". इति काशीखण्डात् ॥ तत्प्रकारस्तु रामार्चनचन्द्रिकातो ज्ञेयः ॥ पृथ्वीचन्द्रोदयादयस्तु—"यस्तु सन्तप्तशंखादि लिङ्गचिह्नतनुर्नरः । स सर्वयातनाभोगी चाण्डालो जन्मकोटिषु॥द्विजं तु तप्तशंखादिलिंगांकिततनुं नरः।सम्भाष्य रौरवं याति यावदिन्द्राश्चतुर्दश" ॥२॥ इति बृहन्नारदीयोक्तेः ॥ "शंखचक्राद्यंकनं च गीतनृत्यादिकं तथा । एकजातेरयं धर्मो न जातु स्याद्द्विजन्मनः ॥ शंखचक्रे मृदा यस्तु कुर्यात्तप्तायसेन वा । स शूद्रवद्बहिः कार्यः सर्वस्माद्द्विजकर्मणः ॥ यथा श्मशानजं काष्ठमनर्हं सर्वकर्मसु । तथा चक्रांकितो विप्रः सर्वकर्मसु गर्हितः" ॥ ३ ॥

शतपथकी भी यह श्रुति है कि, याज्ञवल्क्य कहने लगे कि, इससे पुरुष अपने हितके निमित्त हरिको भजन करे । और हरिके चक्रोंको अग्निसे तपाय अंगोंमें धारण करे, हे विष्णो ! भवसागरके तरनेके निमित्त जो तुम्हारे शंख चक्रसे तपते हैं वे स्वर्गमें इन्द्र होते हैं, भुजाओंके मूलमें जो तुम्हारे सनातन लिंगोंको धारण करते हैं वे तुम्हारे भक्त होते हैं, यह सामवेदका वाक्य है । और पद्मपुराणमें भी लिखा है कि, ब्राह्मणके निमित्त अग्निहोत्र वेदका पढ़ना जैसे नित्य है वैसे तप्तमुद्रिकाका धारण करना भी नित्य है और काशीखण्डमें भी लिखा है कि, ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र वा अन्यजाति जो मनुष्य शंख, चक्र, तुलसीकी मञ्जरी, गोपीचन्दनका अपने अंगमें धारण करते हैं उनके पाप कहां ? शंख चक्र लेनेकी विधि तो रामर्चनचांद्रिकामें लिखी है । पृथ्वीचन्द्रोदय आदि तो यह कहते हैं कि, अग्निसे तपाये हुए शंख चक्रसे अंकित शरीरवालेके संग सम्भाषण करनेवाला मनुष्य इतने समय रौरवनरकमें जाता है जबतक चौदह १४ इन्द्र भोगें, यह बृहन्नारदस्मृतिमें लिखा है, शंख चक्रसे अंकित होना गाना ओर नाचना यह शूद्रका धर्म है, द्विजातियोंका नहीं है । जो मनुष्य मृत्तिकासे वा तपाये लोहेसे अपने शरीरपर शंख चक्र अंकित करते हैं, वे द्विजातियोंके सम्पूण कर्मसे शूद्रके समान बाहर करने योग्य हैं । जैसे श्मशानकी भूमिका काष्ठ सब कर्मोंके अयोग्य है, इस प्रकार शंख चक्रसे अंकित ब्राह्मण भी कर्मके अयोग्य है, ऐसे ही आश्वलायनका कथन

—समाशत व्याप्नुवन्ति ॥ भाषार्थः—हे मन्त्रके स्वामी ! सोम आपका पवित्र अंग सब ओर विस्तृत है समर्थ आप सबकी पालना करते हो आपके पवित्र स्वरूपको पयोव्रत ब्रह्मचर्यादिसे रहित अपरिपक्व आत्मावाला पुरुष नहीं प्राप्त होता और जो तपसे शुद्ध हैं वे तपका आचरण करते हुए उस शुद्धस्वरूपको भले प्रकार पाते हैं । इस मन्त्रमें शरीर दुगानेका कुछ भी प्रसंग नहीं है ॥

तथा-" शिवकेशवयोरंकाञ्छूलचक्रादिकान् द्विजः । न धारयेत मतिमान्वैदिके वर्त्मनि स्थितः " इति विष्णवाश्वलायनादिवचनात् । ऋग्वेदादिश्रुतीनामन्यार्थत्वादन्यश्रुतीनां चासत्त्वात् चक्रादिधारणं शूद्रविषयमित्यूचुः । नृत्यं चोदरार्थं निषिद्धमिति श्रीधरस्वामी । यद्यपि निषेधस्य प्राप्तिसापेक्षत्वाद्विधिं विना च तदयोगादुपजीव्यविरोधेन ' न तौ पशौ करोति' इतिवद्विकल्पो युक्तस्तथापि एकजातेरयं धर्म इत्यनेन सामान्यवाक्यानामुपसंहरात् द्विजातिनिषेधो. नित्यानुवाद इति तदाशयः ॥ अत्र शिष्टाचार एव संकटपाशनिःसरणसृणिरिति संक्षेपः ॥ आषाढशुक्लपूर्णिमायां कोकिलाव्रतविधिः । आषाढपौर्णमास्यां कोकिलाव्रतमुक्तं हेमाद्रौ भविष्ये-"आषाढपौर्णमास्यां तु सन्ध्याकाले ह्युपस्थिते । संकल्पयेन्मासमेकं श्रावणे प्रत्यहं ह्यहम् ॥ स्नानं करिष्ये नियता ब्रह्मचर्यस्थिता सती । भोक्ष्यामि नक्तं भूशय्यं करिष्ये प्राणिनां दयाम् ॥ " इति । अस्य नक्तव्रतत्वात् सायाह्नव्यापिनी ग्राह्या ॥ तत्र शिवशयनोत्सवनिर्णयः । अत्रैव शिवशयनोत्सव उक्तो हेमाद्रौ · वामनपुराणे-"पौर्णमास्यामुमानाथः स्वपते चर्मसंस्तरे । वैयाघ्रे च जटाभारं समुद्ग्रथ्याहिवर्ष्मणा ॥ " मदनरत्नेऽप्येवम् । इयं च प्रदोषव्यापिनी ॥ व्यासपूजानिर्णयः । अत्रैव व्यासपूजोक्ता । तत्र त्रिमुहूर्ता चेत् परैवेति संन्यासपद्धतौ-'त्रिमुहूर्ताधिकं ग्राह्यं पर्व क्षौरप्रणामयोः' इति वचनात् ॥ इति श्रीरामकृष्णभट्टात्मजदिनकरभट्टानुजकमलाकरभट्टकृते निर्णयसिन्धौ आषाढमासः समाप्तः ॥

है कि, द्विज, शिव और विष्णुके शूल चक्र आदि अंक (चिह्न) को वैदिक कर्ममें स्थित और बुद्धिमान् होकर न करे, इससे पूर्वोक्त ऋग्वेद आदि श्रुतियोंका और ही अर्थ है और अन्यश्रुति नहीं है इससे चक्र आदिका धारण शूद्रोंके निमित्त है, श्रीधर स्वामीने उदरार्थ नृत्य करनेसे निषेध कहा है, यद्यपि प्राप्तिके विना निषेध नहीं होसकता, उनको पशु नहीं करता, इसके समान विकल्प युक्त है, तथापि एक जातिका यह धर्म है, इससे सब सामान्य वाक्योंकी (पूर्ति) होनेसे द्विजातिको चक्रांकित होनेका निषेध नित्यानुवाद (अर्थातसिद्ध) है इस संकट पाशके काटनेके निमित्त शिष्टाचार ही अंकुश है, इति संक्षेपः । आषाढकी पूर्णिमाको कोकिलाका व्रत हेमाद्रिग्रन्थमें भविष्यपुराणके वाक्यसे लिखा है कि, आषाढकी पूर्णिमाको संध्याकालके समय यह संकल्प करे कि, मैं नियमसे ब्रह्मचर्ययुक्त होकर प्रतिदिन स्नान, रात्रिमें भोजन, भूमिपर शयन, प्राणियोंपर दया करूंगी, इसको रात्रिव्रत होनेसे यह सायाह्नव्यापिनी करनी । इसी दिन शिवजीका शयन भी हेमाद्रिग्रन्थमें वामनपुराणके वाक्यसे कहा है कि, पौर्णमासीको शिवजी जटाभारको सांपके शरीरसें बांधकर व्याघ्रचर्मके विस्तरपर शयन करते हैं । मदनरत्नमें भी यही कहा है, यह भी प्रदोषव्यापिनी ग्रहण करनी । इसी दिन व्यासकी पूजा लिखी है । संन्यासपद्धतिमें यह लिखा है कि, तीन मुहूर्त हो तो अगली लेनी. कारण यह है कि, पर्व और

अथ श्रावणमासः। कर्कसंक्रांतिनिर्णयः। कर्कसंक्रान्तौ पूर्वं त्रिंशद्दंडाः पुण्यकालः। सूर्योदयोत्तरं संक्रमे तु परत एव पुण्यं रात्रौ तु निशीथात् प्राक् परतश्च संक्रमे अपरार्के हेमाद्र्यनन्तभट्टादिमते पूर्वोत्तरदिनयोः पञ्च नाड्यः पुण्यकालः। "धनुर्मीनावतिक्रम्य कन्यां च मिथुनं तथा। पूर्वापरविभागेन रात्रौ संक्रमते रविः॥ दिनान्ते पंचनाड्यस्तु तदा पुण्यतमाः स्मृताः। उदयेऽपि तथा पञ्च दैवे पित्र्ये च कर्मणि ॥ २ ॥" इति स्कांदोक्तेः। पूर्वापरविभागेनेति मकरकर्कभिन्नसंक्रान्तिपरम्। वक्ष्यमाणवचोविरोधादित्युक्तं मदनरत्ने। तेनायमर्थः—रात्रौ पूर्वभागे मकरे उदये पञ्च नाड्यः पुण्यकालः। रात्रावपरभागे कर्कटे दिनान्ते पञ्च नाड्यः पुण्यकालः। विषुवतोस्तु पूर्वदिने पश्चापरदिने च पंचेति वाक्यान्तरानुरोधात्। तेन हेमाद्रिमाधवयोः सर्ववचनानां चाविरोधः। माधवमते तु—"अर्धरात्रे तदूर्ध्वं वा संक्रान्तौ दक्षिणायने। पूर्वमेव दिनं ग्राह्यं यावन्नोदयते रविः॥" इति वृद्धगार्ग्योक्तेः। "मिथुनात्कर्कसंक्रान्तिर्यदि स्यादंशुमालिनः। प्रभाते वा निशीथे वा तद्पुण्यं तु पूर्वतः॥" इति भविष्योक्तेश्च पूर्वदिने एव पुण्यं दाक्षिणात्यास्त्वेतदेवाद्रियन्ते। अत्र रात्रावपि स्नानादि भवतीत्युक्तं प्राक्। अत्र दानोपवासादि पूर्वमुक्तम्।

और प्रणाममें तीन मुहूर्तसे अधिक तिथि लेनी चाहिये ॥ इति श्रीरामकृष्णभट्टात्मजदिन० कमलाकरभट्टकृते निर्णयसिन्धौ भाषाटीकायामाषाढमासः समाप्तः॥ कर्ककी संक्रांतिमें पहली तीन घडीका पुण्यकाल है। सूर्योदयके पीछे संक्रांति हो तो अपरार्क हेमाद्रि अनन्तभट्ट आदिके मतसे प्रथम और पिछले दिन पांच घडी पवित्र काल है। कारण कि, स्कन्दपुराणमें लिखा है कि, धनु, मीन, कन्या, मिथुनको त्यागकर रात्रिके प्रथम वा पिछले भागमें सूर्यकी संक्रांति हो तो पांच घडी दिनके पीछें और पांच घडी सूर्यके उदयमें, देवता और पितरोंके कर्ममें पुण्य कही है और रात्रिके प्रथम वा पिछले दिनमें यह वाक्य भी मकर और कर्कसंक्रांतिसे भिन्न संक्रांतिके विषयमें आगे कहे वाक्यके विरोधसे जानना, यह मदनरत्नमें लिखा है। इससे यह अर्थ है कि, रात्रिके पूर्वभागमें मकरकी संक्रांति हो तो उदयकी पांच घडी और रात्रिके पिछले भागमें कर्ककी संक्रांति हो तो दिनके अन्तकी पांच घडी पवित्रकाल है और विषुव (तुला और मेष) संक्रांतियोंमें प्रथम दिन और पिछले दिन पांच घडी इस वाक्यान्तरका भी अनुरोध है इससे हेमाद्रि, माधव और सब वाक्योंका कुछ भी विरोध नहीं। माधवके मतमें तो अर्धरात्रि वा उसके पीछे उदयसे प्रथम दक्षिणायन हो तो पूर्व दिन ही ग्रहण करना, यह वृद्धगर्गका कथन है। और यह भविष्यका भी वाक्य है कि, मिथुनके उपरान्त यदि सूर्यकी कर्कसंक्रांति हो तो चाहे प्रभातकाल हो वा अर्द्धरात्रमें तो पुण्यकाल पूर्वदिनमें होता है दाक्षिणात्य भी इस वचनका ही आदर कथन करते हैं। इसमें रात्रिमें भी स्नान आदि करते हैं यह पहले कह आये हैं, इसमें दान और व्रत आदि प्रथम लिख आये

तथा कर्के केशादिकर्तनं निषिद्धम् "कुम्भे कर्कटके वापि कन्यायां कार्मुके रवौ। रोमखण्डं गृहस्थस्य पितॄन्प्राशयते यमः॥" इति सुमन्तुवचनादित्युक्तं जीवत्पितृकनिर्णये गुरुभिः॥ नदीनां रजोदोषनिर्णयः। अथ नदीनां रजोदोषः॥ हेमाद्रावत्रिः– "सिंहकर्कटयोर्मध्ये सर्वा नद्यो रजस्वलाः। न स्नानादीनि कर्माणि तासु कुर्वीत मानवः॥" इदं च क्षुद्रनदीषु। "सिंहकर्कटयोर्मध्ये सर्वा नद्यो रजस्वलाः। तासु स्नानं न कुर्वीत वर्जयित्वा समुद्रगाः" इति व्याघ्रोक्तेः। मात्स्ये त्वगस्त्योदयावधित्वमुक्तम्। "यावन्नोदेति भगवान्दक्षिणाशाविभूषणः। तावद्रजो महानद्यः करतोयाः प्रकीर्तिताः॥" करतोया अल्पतोयाः। तथा कात्यायनः– "याः शोषमुपगच्छन्ति ग्रीष्मे कुसरितो भुवि। तासु प्रावृषि न स्नायादपूर्णे दशवासरे॥" इदं चापदि। स्मृतिसंग्रहे– "धनुःसहस्राण्यष्टौ तु गतिर्यासां न विद्यते। न ता नदीशब्दवहा गर्तास्ताः परिकीर्तिताः॥" महानदीषु विशेषः। महानदीषु तु भविष्ये उक्तम्– "आदौ तु कर्कटे देवि महानद्यो रजस्वलाः। त्रिदिनं च चतुर्थेऽह्नि शुद्धाः स्युर्जाह्नवी यथा॥" महानदीनां नामानि। महानद्यश्च ब्राह्मे– "गोदावरी भीमरथी तुंगभद्रा च वेणिका।

हैं; तैसे ही कर्कमें केश आदिका कटवाना भी निषिद्ध है। कारण कि, सुमन्तुने कहा है कि, कुम्भ, कर्क, कन्या और धन संक्रांतियोंमें गृहस्थीके कटवाये बालोंको यमराज पितरोंको भोजन कराते हैं। जीवत्पितृकनिर्णयमें गुरुओंने भी कहा है। अब नदियोंके रजोदोषको कथन करते हैं। हेमाद्रिमें अत्रिका वाक्य है कि, सिंह और कर्कके मध्यमें सम्पूर्ण नदी रजस्वला होती हैं, उनमें मनुष्योंको स्नान आदि कर्म न करना चाहिये। यह निषेध क्षुद्रनदियोंमें है, इसका कारण व्याघ्रने लिखा है कि, सिंह कर्कके मध्यमें सब नदी रजस्वला होती हैं उनमें समुद्रमें जानेवाली नदियोंको त्यागकर स्नान न करे, मत्स्यपुराणमें तो अगस्त्यके उदय पर्यन्त लिखा है कि, इतने दक्षिणदिशाके भूषण भगवान् अगस्त्यका उदय न हो उतने कालतक नदियोंमें रज बहती है और अल्पतोय कहाती हैं। यही कात्यायनने लिखा है कि, जो निंदित नदी भूमिपर ग्रीष्मऋतुमें सूख जाती हैं उनमें वर्षाके समय इतने कालतक स्नान न करे, जबतक दश दिन पूर्ण न हों, यह भी आपत्कालमें है। स्मृतिसंग्रहमें कहा है कि, जिनका प्रवाह आठ सहस्र धनुषतक नहीं वह नदी नहीं किन्तु गर्त कहाती है। महानदियोंमें भविष्यपुराणका वाक्य है कि, हे देवि ! कर्ककी आदिसे महानदी भी रजस्वला तीन दिन होती हैं, चौथे दिन गंगाके समान शुद्ध हो जाती हैं। महानदी ब्रह्मपुराणमें लिखी हैं। गोदावरी, भीमरथी,

---

१ "धनुःकुम्भौ द्विधा कृत्वा पूर्वभागं यदि त्यजेत्। कर्कटस्यान्तिमं भागं कन्यां तु सकलां त्यजेत्"॥ धनुकुम्भको दो भाग करके पूर्व भाग छोड़ दे कर्कका अन्तिम भाग और कन्याका सब भाग त्याग दे यह कहते हैं॥

तापी पयोष्णी विन्ध्यस्य दक्षिणे तु प्रकीर्तिताः ॥ भागीरथी नर्मदा च यमुना च सरस्वती। विशोका च विहस्ता च विन्ध्यस्योत्तरसंस्थिताः ॥ द्वादशैता महानद्यो देवर्षिक्षेत्रसंभवाः" ॥ २ ॥ मदनरत्ने पुराणान्तरे-"महानद्यो देविका च कावेरी वंजरा तथा। रजसा तु प्रदुष्टाः स्युः कर्कटादौ ऽयहं नृप ॥" कात्यायनः-"कर्कटादौ रजोदुष्टा गोमती वासरत्रयम्। चन्द्रभागा सती सिन्धुः सरयूर्नर्मदा तथा ॥" इदं गंगाद्यतिरिक्तविषयम्। "गंगा च यमुना चैव प्लक्षजाता सरस्वती। रजसा नाभिभूयंते ये चान्ये नदसंज्ञिताः ॥ शोणसिन्धुहिरण्याख्याः कोकलोहितघर्घराः। शतद्रुश्च नदाः सप्त पावनाः परिकीर्तिताः ॥ २ ॥" इति देवलोक्तेः। यत्तु-"प्रथमं कर्कटे देवि ऽयहं गंगा रजस्वला" इत्यादिवचनम्। तज्जाह्नवीभिन्नगोदावर्यादिगंगान्तरपरमिति मदनरत्ने। अन्ये त्वन्तर्गतरजोविषयम्। "गंगा धर्मद्रवः पुण्या यमुना च सरस्वती। अन्तर्गतरजोदोषाः सर्वावस्थासु चामलाः ॥" इति निगमोक्तेः। तीरवासिनां तु रजोदोषो नास्ति। 'न तु तत्तीरवासिनाम्' इति निगमोक्तेः रजोदुष्टमपि जलं गंगाजलयोगे पावनम्। 'गंगाम्भसा समायोगाद्दुष्टमप्यम्बु पावनम्।' इति मात्स्योक्तेः। नूतनकूपादौ तु योगियाज्ञवल्क्यः-"अजा गावो

तुंगभद्रा, वेणिका, तापी, पयोष्णी ये विंध्याचलके दक्षिण भागमें कही हैं, भागीरथी, नर्मदा, यमुना, सरस्वती, विशोका, विहस्ता ये विंध्याचलके उत्तरभागमें स्थित हैं, देवता ऋषियोंके क्षेत्रोंसे उत्पन्न हुई ये बारह महानदी हैं। मदनरत्नमें और पुराणका वाक्य है कि, देविका, कावेरी, वंजरा ये महानदी कर्क आदि संक्रांतिमें तीन दिन रजस्वला होती हैं। कात्यायनने कहा है कि, कर्क आदि संक्रांतिमें गोमती, चन्द्रभागा, सिन्धु, सरयू, नर्मदा ये तीन दिन रजसे दुष्ट होती हैं। यह गंगासे भिन्न नदियोंमें जानना। कारण कि, देवलने कहा है कि, गंगा, यमुना, प्लक्षजाता, सरस्वती और जो नदसंज्ञक हैं इतनी रजसे दूषित नहीं होतीं। शोण, सिन्धु, हिरण्य, कोक, लोहित, घर्घर, शतद्रु, ये सात पवित्र करनेवाले नद कहाते हैं। जो यह वाक्य है कि, कर्कसंक्रांतिमें प्रथम तीन दिन गंगा रजस्वला होती है सो गंगासे भिन्न गोदावर्य्यादि गंगाके विषयमें हैं, यह मदनरत्नमें लिखा है। कोई तो अन्तर्गत रजका दोष है यह कहते हैं। गंगा धर्मद्रव और पवित्र है ऐसेही यमुना और सरस्वती हैं। ये अन्तर्गत रजोदोष होनेसे सब अवस्थाओंमें निर्मल हैं और ये सब अवस्थाओंमें पवित्र हैं और निकटके बसनेवालोंको तो इस शास्त्रके वाक्यसे रजका दोष नहीं लगता कि, तटके वासियोंको रजका दोष नहीं लगता, रजसे दूषित भी जल गंगाजलके संयोगसे शुद्ध होता है। कारण कि, मत्स्यपुराणमें लिखा है कि, दूषित जल भी गंगाजलके योगसे शुद्ध होता है। नये कूपआदि जलमें तो योगी याज्ञवल्क्यका यह कथन है कि, बकरी, गौ, भैंस और प्रसूता ब्राह्मणी ये

महिष्यश्च ब्राह्मणी च प्रसूतिका। भूमेर्नवोदकं चैव दशरात्रेण शुद्ध्यति॥" इति। क्वचित्त्वदोषमाह व्याघ्रपादः-" अभावे कूपवापीनामनपायिपयोभृताम्। रजोदुष्टेऽपि पयसि ग्रामभोगो न दुष्यति॥" गौडास्तु-'अन्येनापि समुद्धृतः' इति द्वितीयपादे पाठः। तेनोद्धृत न दोषः। तथा च तासु स्नानं नेति प्रागुक्तमित्याहुः। वसिष्ठोऽपि-"उपाकर्मणि चोत्सर्गे प्रेतस्नाने तथैव च। चन्द्रसूर्यग्रहे चैव रजोदोषो न विद्यते॥" इत्यलं विस्तरेण। श्रावणशुक्लतृतीयानिर्णयः। श्रावणशुक्लतृतीया मधुस्रवाख्या। मधुस्रवा गुर्जरेषु प्रसिद्धा। सा परयुता ग्राह्येति दिवोदासः। श्रावणशुक्लचतुर्थीनिर्णयः। श्रावणशुक्लचतुर्थी पूर्वयुता 'मातृविद्धा गणेश्वरः' इत्यादिवचनात्। श्रावणशुक्लपञ्चमी-(नागपंचमी) निर्णयः। श्रावणशुक्लपञ्चमी नागपूजादौ परैवेति सामान्यनिर्णये उक्तम्॥ चमत्कारचिन्तामणौ-"पञ्चमी नागपूजायां कार्या षष्ठीसमन्विता। तस्यां तु तुषिता नागा इतरा सचतुर्थिका॥" इति। "श्रावणे पञ्चमी शुक्ला संप्रोक्ता नागपञ्चमी। तां परित्यज्य पञ्चम्यश्चतुर्थीसहिता हिताः॥" इति मदनरत्नेऽभिधानाच्च। तेन परैवेति। अत्र विशेषो हेमाद्रौ भाविष्ये-"श्रावणे मासि पञ्चम्यां शुक्लपक्षे नराधिप। द्वारस्योभयतो लेख्या गोमयेन विषोल्बणाः। पूजयेद्विधिवद्वीर दधिदूर्वाङ्कुरैः कुशैः। गन्धपुष्पोपहारैश्च ब्राह्मणानां च तर्पणैः॥ ये तस्यां पूजयन्तीह नागान्भक्तिपुरःसराः। न तेषां सर्पतो वीर भयं भवति कुत्रचित्॥" इति। श्रावणशुक्लद्वादश्यां दधि-

---

दशरात्रमें पवित्र होती हैं और कहीं तो व्याघ्रपादने दोष नहीं लिखा कि, जहाँ कूप और बावडी न मिले और जिसका जल सदैव रहे ऐसी नदीके जलमें ग्रामका भाग दूषित नहीं होता। गौड तो यह लिखते हैं कि, औरके लाये हुएमें दोष है और स्वयं लानेमें दोष नहीं हैं उससे उनमें न न्हाय यह प्रथम कथन कर आये हैं. वसिष्ठने भी कहा है कि, उपाकर्म, उत्सर्ग, प्रेतका स्नान, चन्द्रमा और सूर्यके ग्रहणमें रजका दोष नहीं लगता विस्तारसे अधिक प्रयोजन नहीं। श्रावणसुदी ३ मधुस्रवा गुर्जरोंमें प्रसिद्ध है उसको परसंयुत लेनी चाहिये, यह दिवोदासने कहा है। श्रावणसुदी ४ गणेशजीका व्रत तृतीयाके वेधमें होता है, इस कथनसे पूर्वतिथिसंयुक्त लेनी। श्रावणसुदी ५ नागपूजा आदिमें अगली लेनी यह सामान्यनिर्णय लिख आये हैं। चमत्कारचिन्तामणिमें लिखा है कि, नागपूजामें षष्ठीसे युक्त पञ्चमीव्रत करना चाहिये उसमें नाग प्रसन्न होते हैं और सब पञ्चमी चतुर्थीसे युक्त लेनी चाहिये। मदनरत्नमें भी लिखा है कि, श्रावणशुक्ला पञ्चमी नागपंचमी लिखी है, उसे छोडकर और चतुर्थीसे युक्त श्रेष्ठ हैं, उससे अगली ही लेनी। इसका विशेष हेमाद्रिमें भविष्यपुराणके वाक्यसे लिखा है कि, हे राजन्! श्रावणशुक्ल पञ्चमीको गृहके द्वारके दोनों ओर गोबरसे लीप सर्पोंको काढे और हे वीर! दही, दूर्वा, कुश, गन्ध, फूल, भेंट, ब्राह्मणभोजनसे विधिपूर्वक उनके अर्चन करें। जो मनुष्य भक्तिसे इस पञ्चमीको नागोंका पूजन करते हैं, उनको कभी भी नागोंसे भय नहीं होता। श्रावण शुक्ल द्वादशीको दधिव्रत (दहीका निषेध) प्रथम कह

व्रतानिर्णयः। श्रावणशुक्लद्वादश्यां दधिव्रतं प्रागुक्तम्। तक्रादीनां त्वनिषेधः। तत्र दधिव्यवहाराभावादिति वक्ष्यते। पवित्रारोपणनिर्णयः। अत्रैव विष्णोः पवित्रारोपणमुक्तं हेमाद्रौ विष्णुरहस्ये—"श्रावणस्य सिते पक्षे कर्कटस्थे दिवाकरे। द्वादश्यां वासुदेवाय पवित्रारोपणं स्मृतम्॥ द्वादश्यां श्रवणे वापि पञ्चम्यामथ वा द्विज। आनुकूल्येषु कर्तव्यं पञ्चदश्यामथापि वा॥ २॥" इति। शिवे तु तत्रैव कालोत्तरे—"आषाढांते चतुर्दश्यां नभस्यनभसोस्तथा। अष्टम्यां च चतुर्दश्यां पक्षयोरुभयोः समम्॥" इति॥ अन्यदेवतानां तु वक्ष्यते। अधिवासनं तु दीपिकायाम्—'गोदोहान्तरिते काले पूर्वेद्युर्वाधिवासनम्।' इति। गौणकालो रामार्चनचन्द्रिकायाम्—"पवित्रारोपणं विघ्नाच्छ्रावणे न भवेद्यदि। कार्त्तिक्यवधि शुक्रास्ते कर्तव्यमिति नारद॥" "हेमराप्यताम्रक्षौमैः सूत्रैः कौशेयपद्मजैः। कुशैः काशैश्च कार्पासैर्ब्राह्मण्या कर्तितैः शुभैः॥ कृत्वा त्रिगुणितं सूत्रं त्रिगुणीकृत्य शोधयेत्। तत्रोत्तमं पवित्रं तु षष्ट्या सह शतैस्त्रिभिः॥ सप्तत्या सहितं द्वाभ्यां शताभ्यां मध्यमं स्मृतम्। साशीतिना शतेनैव कनिष्ठं तत्समाचरेत्॥ साधारणपवित्राणि त्रिभिः सूत्रैः समाचरेत्। उत्तमं तु शतग्रन्थि पञ्चाशद्ग्रन्थि मध्यमम्॥ कनिष्ठं तु पवित्रं स्यात्षट्त्रिंशद्ग्रन्थि शोभनम्। षट्त्रिंशच्च चतुर्विंशद्द्वादशेति च केचन॥ चतुर्विंश-

---

आये हैं और मट्ठेमें दहीका व्यवहार न होनेसे तक्र (मट्ठा) का निषेध नहीं, यह लिखेंगे। इसी द्वादशीको विष्णुका पवित्रारोपण हेमाद्रि और विष्णुरहस्यमें लिखा है कि, श्रावणशुक्ल द्वादशी कर्कके सूर्यमें वासुदेवका पवित्रारोपण लिखा है। द्वादशीको श्रवण नक्षत्रमें अथवा पूर्णिमामें जब अपने योग्य बने तब पवित्रारोपण करे। शिवजीका पवित्रारोपण तो हेमाद्रिमें कालोत्तरके वाक्यसे लिखा है कि, आषाढ़के उपरान्त चतुर्दशी और श्रावण भाद्रपदकी दोनों पक्षकी अष्टमी और चतुर्दशीको शिवजीका पवित्रारोपण तुल्य है और देवोंका पवित्रारोपण लिखेंगे। अधिवासन तो दीपिकामें लिखा है कि, गोदोहनके समय प्रथम दिन अधिवासन करे। रामार्चनचन्द्रिकामें गौणकाल भी लिखा है कि, यदि श्रावणमें पवित्रारोपण विघ्नके कारण न हो तो कार्तिक तक शुक्रास्तमें भी कर लेना यह नारदने कहा है। सोना, चांदी, तांबा, पाट, रेशम, पद्म, कुश, कुशा, काश, कपास और ब्राह्मणीका काता हुआ सूत इनका पवित्रारोपण शुभ है। सूतको तिगुना करके फिर तिगुना करे उनमें तीनसे साठ ३६० तारोंका उत्तम और २७० दोसौ सत्तरका मध्यम और १८० एकसौ अस्सी तारोंका निकृष्ट पवित्रा निर्माण करे और छोटी २ पवित्रा तीन २ सूतकी बनावे जिसमें १०० ग्रंथि हों वह उत्तम और पचासका मध्यम और ३६ का निकृष्ट होता है और कोई ३६ का उत्तम, २४ का मध्यम,

द्वादशाष्टावित्येके मुनयो विदुः ॥ १ ॥" हेमाद्रौ विष्णुरहस्ये त्वन्यथोक्तम्-"अष्टोत्तरशतं कुर्याच्चतुःपञ्चाशदेव वा । सप्तविंशतिरेवाथ ज्येष्ठमध्यकनीयसम् ॥ उत्तमं नाभिमात्रं स्यादूरुमात्रं द्वितीयकम् । प्रलम्बतो जानुमात्रं प्रतिमायां निगद्यते ॥ २ ॥" शिवपवित्रं तु तत्रैव शैवागमे-"एकाशीत्यथ वा सूत्रैस्त्रिंशता वाष्टयुक्तया । पञ्चाशता वा कर्त्तव्यं तुल्यग्रंथ्यन्तरालकम् ॥ द्वादशांगुलमानानि व्यासादष्टांगुलानि वा । लिंगविस्तारमानानि चतुरंगुलकानि च ॥ २ ॥" इति ॥ पवित्रारोपणे अधिकारिनिर्णयः । अधिकारिणोऽपि तत्रैव विष्णुरहस्ये-"ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यस्तथा स्त्री शूद्र एव च । स्वधर्मावस्थिताः सर्वे भक्त्या कुर्युः पवित्रकम् ॥" तथा-"अतो देवेतिमन्त्रेण द्विजो विष्णौ निवेदयेत् । शूद्रस्य मूलमन्त्रो वा येन वा पूजयेद्धरिम् ॥" एतच्च नित्यम्-"न करोति विधानेन पवित्रारोपणं तु यः । तस्य सांवत्सरी पूजा निष्फला मुनिसत्तम ॥ तस्माद्भक्तिसमायुक्तैर्नरैर्विष्णुपरायणैः । वर्षेवर्षे प्रकर्तव्यं पवित्रारोपणं हरेः ॥ २ ॥" इति तत्रैवोक्तेः । देवताविशेषे तिथयोऽपि तत्रैव-"धनदश्च रमा गौरी गणेशः सोमराड् गुहः । भास्करश्चण्डिकाम्बा च वासुकिश्च तथर्षयः ॥ चक्रपाणिह्यनंगश्च शिवो ब्रह्मा तथैव च । प्रतिपत्प्रभृतिष्वेताः पूज्यास्तिथिषु देवताः ॥ यथोक्ताः शुक्लपक्षे

---

१२ का निकृष्ट कहते हैं । हेमाद्रिग्रंथमें विष्णुरहस्यमें और प्रकार लिखा है कि, एकसौ आठ १०८ वा ५४ चौवन वा २७ सत्ताईस सूत्रोंसे क्रमसे उत्तम, मध्यम, कनिष्ठ पवित्रा बनावे।उत्तम नाभिपर्यन्त, मध्यम जंघापर्यन्त, परन्तु जानुपर्यन्त निकृष्ट है, यह प्रमाणमें कहा है। शिवजीका पवित्रा तो हेमाद्रिग्रन्थमें शैवागमवाक्यसे लिखा है कि, इक्यासी ८१ वा ३८ वा ५० सूत्रोंसे ऐसी पवित्री बनावे, जिसकी ग्रन्थि और मध्यभाग तुल्य हो, और जिसका प्रमाण बारह १२वा८वा४ अंगुल हो अथवा महादेवके लिंगके तुल्य हो। हेमाद्रिग्रन्थमें कालोत्तर और युगधर्ममें यह लिखा है कि, सतयुगमें मणि, त्रेतामें सुवर्ण, द्वापरमें पद, कलियुगमें कपासकी पवित्री कही है।। अधिकारी भी हेमाद्रिमें विष्णुरहस्यसे लिखे हैं-ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, स्त्री, शूद्र, अपने धर्ममें स्थित हुए भक्तिसे पवित्री करें इससे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य ये तीनों 'अतो देव' इस मन्त्रसे विष्णुको पवित्रा समर्पित करें और शूद्र मूलमन्त्रसे अथवा जिस मन्त्रसे विष्णुकी पूजा करे उस मन्त्रसे निवेदन करे। यह नित्य विधान जानना चाहिये कारण कि, वहां ही यह लिखा है कि हे मुनिश्रेष्ठ! जो मनुष्य विधिसे पवित्रारोपण नहीं करता उसकी वर्षदिनकी पूजा निष्फल होती है इससे भक्तिमान् विष्णुके भक्त वर्षदिनमें विष्णुको पवित्रारोपण करें देवता विशेषोंकी भिन्न२तिथि भी उसी उसी स्थलमें लिखी है कि, कुबेर, लक्ष्मी, गौरी, गणेश, चन्द्रमा, गुह, सूर्य, चण्डिका, अम्बा, वासुकि, ऋषि, चक्रपाणि, अनंग, शिव, ब्रह्मा ये देवता प्रतिपदा आदि तिथियोंमें पूज्य हैं । ये श्रावणके

तु तिथयः श्रावणस्य च ॥ ३ ॥" इति ॥ यथा हेमाद्रौ कालोत्तरे-'चतुर्दश्या- मथाष्टम्यां सर्वसाधारणं तु तत्।' इति। तत्प्रकारस्तु रामार्चनचन्द्रिकायां यथा- "ततस्तानि पवित्राणि वैणवे पटले शुभे। संस्थाप्य शुचिवस्त्रेण पिधाय पुरतो न्यसेत्॥ अरत्निसंमितां वेणीं कुर्यात् षट्त्रिंशता कुशैः। क्रियालोपविघातार्थं यत्त्वया विहितं प्रभो॥ मयैतत्क्रियते देव तव तुष्ट्यै पवित्रकम्। न मे विघ्नो भवे- द्देव कुरु नाथ दयां मयि॥ सर्वथा सर्वदा विष्णो मम त्वं परमा गतिः। उपवा- सेन देव त्वां तोषयामि जगत्पते॥ कामक्रोधादयोऽप्येते न मे स्युर्व्रतघातकाः। अद्यप्रभृति देवेश यावद्वैशेषिकं दिनम्॥ तावद्रक्षा त्वया कार्या सर्वस्यास्य नमोऽस्तु ते॥ ६ ॥" इति देवं सम्प्रार्थ्य कुम्भं संस्थाप्य तत्र वंशपात्रे-"ॐ सांवत्स- रस्य यागस्य पवित्रीकरणाय भोः। विष्णुलोकात्पवित्राद्य आगच्छेह नमोऽस्तु ते॥" अनेन मूलेन चावाह्योत्तममध्यमकनिष्ठेषु विष्णुब्रह्मरुद्रान् सत्त्वरजस्तमांसि वेदत्रयं वनमालायां प्रकृतिं चावाह्य त्रिसूत्र्यां ब्रह्मविष्णुरुद्रान् ग्रन्थिषु क्रिया पौरुषी वीरा विजया ईशा अपराजिता मनोन्मनी जया भद्रा मुक्तिश्चेत्यावाह्य सम्पूज्य। "ॐ संवत्सरकृतार्चायाः सम्पूर्णफलदोऽपि यत्। पवित्रारोपणायैतत्कुरु कुन्धर ते नमः॥ विष्णुतेजोद्भवं रम्यं सर्वपातकनाशनम्। सर्वकामप्रदं देव तवांगे धारया

शुक्लपक्षमें तिथि वर्णन की हैं, ऐसे ही हेमाद्रिके कालोत्तर प्रकरणमें लिखा है कि, चतुर्दशी और अष्टमीको सब देवताओंका तुल्य पवित्रारोपण होता है उसका प्रकार तो रामार्चन- चन्द्रिकामें लिखा है। फिर उन पवित्रोंको बाँसके श्रेष्ठ दोनोंमें और शुद्ध वस्त्रमें लपेटकर देवताके आगे रक्खे, छत्तीस अंकुशोंकी बिलस्तभर वेणी करे, हे प्रभो! कर्म लोप न करनेके निमित्त जो तुमने लिखा है, हे देव! आपकी प्रसन्नताके निमित्त यह पवित्री मैंने की है, हे नाथ! मेरे विघ्न न हो मुझपर कृपा करो, हे विष्णो! सब प्रकारसे सम्पूर्ण समयमें तुम मेरी परमगति हो। हे देव! हे जगत्पते! व्रतसे आपको प्रसन्न करता हूं। काम क्रोध आदि भी मेरे व्रतको नष्ट न करें, आजसे लेकर जबतक शेषका दिन हो, तबतक आपको इन सबकी रक्षा करनी चाहिये आपको प्रणाम है। इस प्रकार देवकी स्तुति और घटकी स्थापना करके उस घटपर वंशके पात्रमें 'ॐ इस वर्ष दिनकी यज्ञकी सिद्धिके और पावित्र करनेके निमित्त विष्णुलोकसे इस पवित्रीमें आओ आपको प्रणाम है।' इस मन्त्रसे वा मूलमन्त्रसे आवाहन करके और उत्तम, मध्यम, कनिष्ठ पवित्रोंमें क्रमसे विष्णु, ब्रह्मा, रुद्रोंका और सत्त्व, रज, तमका और तीन वेदोंका और वन- मालाओंमें प्रकृतिका आवाहन करके तीन सूत्रोंमें ब्रह्मा, विष्णु रुद्रोंका और ग्रन्थियोंमें क्रिया, वीरा, विजया, ईशा, अपराजिता, मनोन्मनी, जया, भद्रा, मुक्ति देवीका आवाहन और पूजन करके, 'ॐ वर्ष दिनमें सम्पादन की हुई पूजाके सम्पूर्ण फल देनेवाले उस पवित्रारोपणके निमित्त आप सफल करो' हे कुंधर! आपको प्रणाम है। हे देव! विष्णुके तेजसे उत्पन्न रमणीय सब पापोंके नाशक सब कामनाओंके दाता इस पवित्रेको आपके अंगमें मैं धारण करता हूं' इस

म्यहम् ॥ २ ॥" इति देवकरे मंगलसूत्रं बद्ध्वा देवं सम्पूज्य निमन्त्रयेत्।" आमन्त्रितोऽसि देवेश पुराण पुरुषोत्तम । प्रातस्त्वां पूजयिष्यामि सान्निध्यं कुरु केशव ॥ क्षीरोदधिमहानागशय्यावस्थितविग्रह । प्रातस्त्वां पूजयिष्यामि सन्निधौ भव ते नमः ॥ निवेदयाम्यहं तुभ्यं प्रातरेतत्पवित्रकम् ॥ सर्वथा सर्वदा विष्णो नमस्तेऽस्तु प्रसीद मे " ॥ ३ ॥ ततः पुष्पाञ्जलिं दत्त्वा रात्रौ जागरणं कुर्यादिति अधिवासनम् । प्रातर्नित्यपूजां कृत्वा गन्धदूर्वाक्षतयुतं पवित्रमादाय । " ॐ देवदेव नमस्तुभ्यं गृहाणेदं पवित्रकम् । पवित्रीकरणार्थाय वर्षपूजाफलप्रदम् ॥ पवित्रकं कुरुष्वाद्य यन्मया दुष्कृतं कृतम् । शुद्धो भवाम्यहं देव त्वत्प्रसादान्महेश्वर ॥ " मूलसंपुटितेनानेन दत्त्वांगदेवताभ्यो नाम्ना समर्प्य महानैवेद्यं दत्त्वा नीराज्य । मणिविद्रुममालाभिरित्यादिभिर्दमनारोपणोक्तमन्त्रैः प्रार्थयित्वा गुरवे ब्राह्मणेभ्यश्च दत्त्वा स्वयं धारयेत् । तथा-" मासं पक्षमहोरात्रं त्रिरात्रं धारयेत्तथा । देवे तं सूत्रसन्दर्भं देशकालविवक्षया ॥ " अकरणे तु तत्रैव-" पवित्रारोपणं काले न करोति कथञ्चन । तदायुतं जपेन्मन्त्रं स्तोत्रं वापि समाहितः ॥ " इत्युक्तम् । इति पवित्रारोपः । श्रावणशुक्लचतुर्दशीनिर्णयः । श्रावणशुक्लचतुर्दशी पूर्वयुता ग्राह्या ॥ अत्र वक्तव्यो

मन्त्रसे देवताके हाथमें मङ्गलसूत्रको बांधकर और देवकी पूजा करके निमन्त्रण करे कि, हे देवताओंके ईश ! हे पुराण पुरुषोत्तम ! हे केशव ! आपको मैं निमन्त्रण देता हूँ, प्रातःकाल आपका पूजन करूंगा। आप मेरे निकट हों। हे विष्णो ! इस पवित्रेको प्रातःकाल आपको निवेदन करूंगा। हे विष्णो ! सब प्रकार सब कालमें आपको नमस्कार है। मेरे ऊपर प्रसन्न हो। फिर पुष्पांजली देकर रात्रिको जागरण करे। इति अधिवासनम्। फिर प्रातःकाल नित्य पूजन करके गन्ध, दूर्वा, अक्षतसे युक्त पवित्रेका ग्रहण करे, हे देवताओंके देव ! आपको नमस्कार है, इस पवित्रेको ग्रहण करो, जो पवित्र करनेके निमित्त वर्षदिनकी पूजाक फलका दाता है और जो मैंने पाप किया है उससे मुझे आज पवित्र करो। हे देवताओंके ईश्वर ! आपकी प्रसन्नतासे पवित्र होता हूं। मूलमंत्रसे सम्पुट और इस मन्त्रसे पवित्रेको प्रदान कर, अंग देवताओंके नाम ले ले कर अर्पण करके और महानैवेद्यको देकर और आरती करके (मणिविद्रुममालाभिः) इत्यादि दमनारोपणमें लिखे हुए मन्त्रोंसे स्तुति करक गुरु और ब्राह्मणोंको पवित्रे देकर स्वयं भी धारण करे। उस सूत्रको मास, पक्ष, एक दिन वा तीन दिन, देवके देहमें धारण करे, न करे तो वहां ही यह कहा है कि, जो किसी प्रकार समयपर पवित्रारोपण न करे, तब दश सहस्र मन्त्र और स्तोत्र सावधान होकर जपे। इति पवित्रारोपः। श्रावणशुक्ल चतुर्दशी पूर्वतिथिसे युक्त लेनी, इसमें विशेष कहने योग्य चैत्रकी चतुर्दशीमें लिख

विशेषश्चैत्रचतुर्दश्यामुक्तः। उपाकर्मनिर्णयः। अथोपाकर्म। तत्र बह्वृचानां प्रयोगपारिजाते शौनकः—"अथातः श्रावणे मासे श्रवणर्क्षयुते दिने। श्रावण्यां श्रावणे मासि पञ्चम्यां हस्तसंयुते॥ दिवसे विदधीतैतदुपाकर्म यथोदितम्। अध्यायोपाकृतिं कुर्यात्तत्रोपासनवह्निना॥" इति। अत्र पौर्णमास्युपसंहारन्यायेन यजुर्वेदिपरेति हेमाद्रिः। अत्र हस्तयुक्ता पञ्चम्युक्ता। कारिकापि—"तन्मासे हस्तयुक्तायां पञ्चम्यां वा तादिष्यते।" इति केवलपंचम्यां हस्तयुतेऽन्यस्मिन् दिने, इति तु हेमाद्रिः। उपासनवह्निनेति तु कर्मद्वयमिदं केचिल्लौकिकाग्नौ प्रकुर्वत इति। कारिकोक्तलौकिकाग्निना विकल्पते। तत्र—'अध्याप्यैरन्वारब्धः' इति सूत्रात्। सशिष्यत्वे तदधिकारिकस्याचार्याग्नौ—'नान्यस्याग्नावन्यो जुहुयादिति निषेधाल्लौकिक एव तदभावे तु स्मार्ते' इति निगर्वः। यद्यपि दीपिकायाम्—'वेदोपाकृतिरोषधिप्रजनने पक्षे सिते श्रावणे' इति शुक्लपक्षोऽपि सर्वेषां मुख्यकालत्वेनोक्तः। वक्ष्यमाणगार्ग्यवचनेन छन्दोगान् प्रति विहितस्य तस्याविरोधिनः सर्वान् प्रति प्रवृत्तिश्च। तथापि श्रावणमाससंबन्धस्य सूत्रोक्तत्वात्। कृष्णपक्षेऽपि कार्यमिति वृद्धाः। तथाच सूत्रम्—'अथातोऽध्यायोपाकरणमोषधीनां प्रादुर्भावे श्रवणेन

चुके हैं। वहां बह्वृचोंका प्रयोगपारिजातमें शौनकके वाक्यसे लिखा है कि, इसके उपरान्त श्रावणके मासमें श्रवण नक्षत्रसे युक्त दिनमें अथवा श्रावणकी पूर्णिमाको वा हस्तनक्षत्रयुक्त पञ्चमीको शास्त्रोक्तके अनुसार उपाकर्म करे, पढ़े हुए वेदोंका उपाकर्म उपासनाकी अग्निमें करे, हेमाद्रि यह लिखते हैं कि, इसमें पूर्णिमा उपसंहार समाप्तिमें लिखनेसे यजुर्वेदियोंके निमित्त है, इसमें जो हस्तनक्षत्रयुक्त पञ्चमी लिखी है उसमें यह कारिकाका वाक्य भी प्रमाण है कि, अथवा उस महीनेमें हस्तनक्षत्रयुक्त पञ्चमीमें उपाकर्म इच्छित है, हेमाद्रि तो यह लिखते हैं कि, केवल पञ्चमीको वा हस्तनक्षत्रयुक्त अंत्य दिनमें भी उपाकर्म कर्म करना चाहिये। उपासना अग्निमें करनी, इसमें तो इस कारिकाके वाक्यसे विकल्प आता है कि, कोई आचार्य लौकिक अग्निमें करते हैं, उसमें भी शिष्यों सहित गुरु उपाकर्म करे, इस सूत्रसे शिष्यसहित गुरुको उपाकर्मका अधिकार प्राप्त होनेसे आचार्यकी अग्निमें शिष्य भी कर ले और दूसरेकी अग्निमें और कोई होम न करे, इस निषेधसे लौकिक अग्निमें ही करना, वह न मिले तो स्मार्त्त अग्निमें करे यह सबका सिद्धान्त है। यद्यपि ओषधियोंके उपजनेपर श्रावणमें वेदोंका उपाकर्म करे इस दीपिकाके कथनसे शुक्लपक्ष सबका मुख्य समय लिखा है और छांदोगोंके निमित्त आगे कहना योग्य गर्गके वाक्यसे शुक्लपक्षकी प्रवृत्तिमें भी सबके निमित्त विरोध नहीं तो भी श्रावण महीनेका संबन्ध सूत्रमें लिखा है इससे कृष्णपक्षमें भी करना चाहिये। यह वृद्ध कहते हैं। सोई यह सूत्र है कि, इसके अनन्तर वेदोंका उपाकर्म ओषधियोंके उत्पन्न होनेपर श्रवण

श्रावणस्य पंचम्यां हस्तेन वा ।' अत्र श्रवणो मुख्योऽन्ये गौणाः । तस्याहर्द्वय-योगे हेमाद्रौ व्यासः–"धनिष्ठासंयुतं कुर्याच्छ्रावणं कर्म यद्भवेत् । तत्कर्म सफलं ज्ञेयमुपाकरणसंज्ञितम् ॥ श्रवणेन तु यत्कर्म ह्युत्तराषाढसंयुतम् । संवत्सरकृतोध्या-यस्तत्क्षणादेव नश्यति ॥ २ ॥" इति । गार्ग्योऽपि–"उदयव्यापिनी त्वेव विष्णवृर्क्षे घटिकाद्वयम् । तत्कर्म सकलं ज्ञेयं तस्य पुण्यं त्वनन्तकम् ॥ " इति पूर्वेद्युरुत्तरा-षाढयोगे परेद्युः श्रवणाभावे घटिकाद्वयन्यूने वा पंचम्यादौ कार्यम् । न तु पूर्व-विद्धायां संगवमात्रे अपवादाभावात् । किं च । परेद्युः संगवास्पर्शे निषिद्ध-पूर्वाग्रहणे किं मानम् । संगववाक्यं श्रवणवाक्यं चेति चेत् तर्हि व्रीहिवाक्याद-श्वशफवाक्याच्च माषमिश्राणामप्युपादानं स्यादिति महत्पाण्डित्यं निषेधानुप्रवेशा-न्नैरपेक्ष्यबाधा नेति चेत् । इहापि तुल्यम् । एतेन पर्वाप्यौदयिकं व्याख्यातं निषे-धानुप्रवेशस्योभयत्र तुल्यत्वात् । तत्र ग्रहणसंक्रांत्यादौ निर्णयः । श्रवणयुतदिने संक्रान्त्यादौ तु–"उपाकर्म न कुर्वन्ति क्रमात्सामर्ग्यजुर्विदः । ग्रहसंक्रान्तियुक्तेषु हस्तश्रवणपर्वसु " इति हेमाद्रौ निषेधात् पंचम्यादयो ग्राह्याः । मदनरत्नेऽपि-"यदि स्याच्छ्रावणं पर्व ग्रहसंक्रान्तिदूषितम् । स्यादुपाकरणं शुक्लपंचम्यां श्रावणस्य

नक्षत्र अथवा श्रावणकी हस्तनक्षत्रयुक्त पंचमीमें करना चाहिये । इसमें श्रवणका योग मुख्य कहा है और गौण है, उस श्रवणका योग दो दिन हो तो हेमाद्रिमें व्यासजीने यह लिखा है कि, श्रवणनक्षत्रका कर्म धनिष्ठानक्षत्रसे युक्त किया जाय तो उस उपाकर्मको सफल जानना चाहिये । यदि वह श्रावणमासका कार्य उत्तराषाढ नक्षत्रसे संयुक्त किया जाय तो वर्षदिनका किया वेदपाठ उसी क्षणमें नष्ट होता है, प्रयोगपारिजातमें गर्गका कथन है कि, यदि सूर्योदयमें श्रवणकी दो घडी हों तो वह कर्म सफल जानना चाहिये और उसका अनन्त फल जानना चाहिये । यदि प्रथम दिन उत्तराषाढ नक्षत्रका योग हो और दूसरे दिन श्रवणका अभाव हो वा दो घडी न्यून हो तो पंचमी आदिमें उपाकर्म करना, चतुर्दशीसे विद्धा पूर्णिमाको न करना । संगवमें कोई निषेध नहीं मिलता है और दूसरे दिन संगवका स्पर्श न हो तो निषिद्ध पहली तिथिके ग्रहणमें प्रमाण है । यदि संगववाक्यसे श्रवणवाक्य ग्रहण करोगे तो व्रीहिवाक्यसे अश्वशफ वाक्यसे मास-युक्त तिथियोंका भी ग्रहण हो जायगा, यह तुम्हारा बड़ा पाण्डित्य होगा, इससे पर्व भी उदयकालका लिखा है । कारण कि, निषेधकी प्रवृत्ति दोनोंमें समान है । श्रवणयुक्त दिनमें संक्रांति आदि हो तो क्रमसे साम, ऋक्, यजुर्वेदी उपाकर्म नहीं करते । कारण कि, हेमाद्रिमें यह निषेध लिखा है कि, ग्रहण संक्रांतिसे युक्त हस्त श्रवण पूर्णिमामें न करना, इससे पंचमी आदि ग्रहण करनी, इसमें एक तो यह वाक्यार्थ है कि, ग्रहण और संक्रांतिके दिन उन सबको उपाकर्म करना चाहिये जिनको प्राप्त हो; इससे अथर्ववेदियोंको भी निषेध है, नहीं तो हस्त आदि तीनमें प्रत्येक ग्रहण वा संक्रांति हो तो छः वाक्यों-की कल्पना करनी पड़ेगी । मदनरत्नमें भी कहा है कि, यदि श्रवणनक्षत्रसे युक्त पूर्णिमा

तु" ॥ स्मृतिमहार्णवे–" संक्रान्तिग्रहणं वापि यदि पर्वणि जायते । तन्मासे हस्तयुक्तायां पंचम्यां वा तदिष्यते ॥ " तत्रापि प्रयोगपारिजाते वृद्धमनुकात्यायनौ–"अर्धरात्रादधस्ताच्चेत्संक्रान्तिग्रहणं तदा । उपाकर्म न कुर्वीत परतश्चेन्न दोषकृत् ॥" इति । मदनरत्ने गार्ग्योऽपि–"यद्यर्धरात्रादर्वाक् तु ग्रहः संक्रम एव च । नोपाकर्म तदा कुर्याच्छ्रावण्यां श्रवणेऽपि वा ॥" एतेन ग्रहणसंक्रान्तिकाले श्रवणसत्त्वे निषेधो नार्वागिति मूर्खशंका परास्ता । ग्रहविशिष्टानां हस्तश्रवणपर्वणां प्रत्येकं निषेध तद्युतोपाकर्मनिषेधे च विशिष्टोद्देशैः वाक्यभेदात् । पञ्चम्यां संक्रान्तौ निषेधाभावापत्तेश्च । तेनार्धरात्रात् पूर्वं ग्रहसंक्रमसत्त्वे एवोपाकर्मनिषेधो न तद्योगे एव । यत्तु–"प्रतिपन्मिश्रिते नैव नोत्तराषाढसंयुते । श्रवणे श्रावणं कुर्युर्ग्रहसंक्रान्तिवर्जिते॥" इति प्रतिपन्मिश्रनिषेधकं वचनं तन्निर्मूलम् । अत्र च–"वेदोपाकरणे प्राप्ते कुलीरे संस्थिते रवौ । उपाकर्म न कर्तव्यं कर्तव्यं सिंहयुक्तके ॥" इति वचनं देशान्तरविषयम् ॥ " नर्मदोत्तरभागे तु कर्तव्यं सिंहयुक्तके । कर्कटे संस्थिते भानावुपाकुर्यात्तु दक्षिणे ॥" इति । बृहस्पतिवचनादिति प्रयोगपारिजातेनोक्तम् ।

ग्रहण वा संक्रांतिसे दूषित हो जाय तो श्रावणशुक्ल पंचमीको उपाकर्म करना । स्मृतिमहार्णवमें भी कहा है कि, जिस पर्वमें ग्रहण वा संक्रांति हो जाय तो उस महीनेकी हस्तयुक्त पंचमीको उपाकर्म करना। प्रयोगपारिजातमें वृद्धमनु और कात्यायनका वाक्य है कि, अर्द्धरात्रिसे प्रथम संक्रांति ग्रहण हो तो उपाकर्म न करे, पीछे हो तो कुछ दोष नहीं है कर ले। मदनरत्नमें गर्गका कथन है कि, आधीरातसे प्रथम ग्रहण और संक्रांति हो तो पूर्णिमा श्रवणमें उपाकर्म न करना चाहिये । इससे यह शंका दूर हुई कि, ग्रहणके समय ही श्रवण होनेपर दोष है, प्रथम नहीं। कारण कि, ग्रहणसे युक्त हस्त, श्रवण, पूर्णिमा भिन्न निषेध होगा और उनमें उपाकर्मका निषेध होगा तो सबके उद्देशमें वाक्यका भेद हो जायगा और पंचमीमें संक्रांति न हो तो निषेध प्राप्त होगा । इससे अर्द्धरात्रिके प्रथम ग्रहणके होनेपर उपाकर्मका निषेध है कुछ हस्त आदिके प्रयोगमें नहीं और जो यह प्रतिपदाके मूलमें उपाकर्मके निषेधको कहा है कि, उत्तराषाढसे युक्त ग्रहण और संक्रांतिसे वर्जित श्रवणनक्षत्रमें उपाकर्म न करे और प्रतिपदा युक्तमें भी उपाकर्म न करे, वह वाक्य निर्मूल है । कारण कि, हेमाद्रिमें शाखका यह वाक्य है कि, ग्रहणका योग गुरुको, संक्रांतिका योग शिष्यको और उत्तराषाढका योग दोनोंको विष्णुके उपाकर्ममें नष्ट करते हैं । इसमें जो यह कथन है कि, वेदोंके उपाकर्मके समयमें सूर्य कर्कका हो तो उपाकर्म न करना चाहिये। सिंहस्थमें करना यह वाक्य देशान्तरके निमित्त है। कारण कि,प्रयोगपारिजातमें बृहस्पतिने यह कहा है कि, नर्मदाके

पराशरमाधवीयेऽप्येवम् । सामगानां सिंहस्थरवावुक्तेस्तद्विषय इदं पुरोडाशचतुर्धाकरणवदुपसंह्रियते। तेषामेव देशव्यवस्था न तु बह्वृचादिपरम् । तेषां सूत्रे-चान्द्रश्रावणोक्तेः। सौरे पञ्चम्ययोगात् इति तु वयं पश्यामः । यत्तु कालादर्शे- "अध्ययानामुपाकर्म श्रावण्यां तैत्तिरीयकाः । बह्वृचाः श्रवणे कुर्युः सिंहस्थोऽर्को भवेद्यदि ॥ सहस्तशुक्लपञ्चम्यां वातग्रहणसंक्रमे । असिंहार्के प्राष्ठपद्यां श्रवणेन व्यवस्थया ॥ २ ॥" इति । तन्मूलालेखनाच्चिन्त्यम् । श्रावणे सस्यानुद्गमादौ तु बह्वृचपरिशिष्टे-"अवृष्ट्यौषधयस्तस्मिन्मासे तु न भवन्ति चेत् । तदा भाद्रपदे मासि श्रवणेन तादिष्यते" इति ॥ 'तत्राप्यनुद्गमे तु कुर्यादेव तद्वार्षिकमित्याचक्षते' इति सूत्रात् । वर्षर्तौ भवं वार्षिकम् । एतच्च शुक्रास्तादावपि कार्यम् । 'उपाकर्मोत्सर्जनं च पवित्रदमनार्पणम्' इति दमनारोपे लिखितवचनात् । "नित्ये नैमित्तिके जप्ये होमे यज्ञक्रियासु च । उपाकर्मणि चोत्सर्गे ग्रहवेधो न विद्यते" इति प्रयोगपारिजाते संग्रहोक्तेः । पर्वणि ग्रहणे सति पूर्वं त्रिरात्रादिवेधाभावं वक्तुमिदम् ।

उत्तर तटमें सिंहके सूर्यमें और नर्मदा नदीके दक्षिण तटमें कर्कक सूर्यमें उपाकर्म करे; पराशर और माधवग्रंथमें भी इसी प्रकार कहा है । हम तो यह जानते हैं कि, सिंहके सूर्यमें सामवेदियोंको उपाकर्म करना लिखा है,उनके निमित्त पुरोडाशके चार प्रकार करनेके तुल्य यह वाक्य है कि, कालादर्शमें लिखा है कि, तैत्तिरीय शाखावालोंको वेदोंका उपाकर्म श्रावणकी पूर्णिमाको, बह्वृचोंको श्रवणनक्षत्रमें करना चाहिये । यदि सिंहका सूर्य हो और हस्तयुक्त श्रावण शुक्ला पंचमी हो पूर्णिमाको ग्रहण वा संक्रांति हो सिंहके सूर्य न होनेपर भाद्रपदकी पूर्णिमाको वा श्रवणमें व्यवस्थासे करना । इस वाक्यका कालादर्शमें मूल नहीं लिखा है और इसमें सूत्रसे विरोध आता है, इससे वह वाक्य असंगत है । कारण कि, सूत्रमें श्रावणके नामद्वारा श्रवण कहनेसे चान्द्रमास ग्रहण किया है सौर नहीं । कारण कि, उसमें पंचमीका अभाव पड़ता है यदि श्रुति और लक्षणसे दोनों मास लो तो दो वृत्ति (अर्थ) माननेमें विरोध है, इससे सिंहका सूर्य हो और कर्कमें ग्रहण या संक्रांति हो, तो सिंहके सूर्यको त्याग कर श्रावणशुक्लपंचमीको बह्वृच शाखावालोंको उपाकर्म करना चाहिये और तैत्तिरीयशाखावालोंको भाद्रपदकी पूर्णिमा करनी चाहिये । कारण कि, उनको सूर्य महीनेका नियम नहीं है । श्रावणमें सस्य उत्पन्न न हो तो बह्वृच परिशिष्टमें यह कहा है कि,यदि वर्षाके अभावसे श्रावणमें औषधी उत्पन्न न हो तो भाद्रपदके श्रवणनक्षत्रमें उपाकर्म करना श्रेष्ठ है।भाद्रपदमें भी उत्पन्न न हो तो उसको इस सूत्रके अनुसार वार्षिक लिखनेसे उसमें उपाकर्म कर देना कि, भाद्रपदको वर्षाऋतुमें होनेवाला कहते हैं । शुक्रके अस्त आदिमें भी उपाकर्म करना चाहिये।कारण कि, दमनारोपप्रकरणमें यह वाक्य लिख आये हैं कि, उपाकर्म, उत्सर्जन, पवित्रा दमनका अर्पण ये शुक्रास्त आदिमें भी करने चाहिये । प्रयोगपारिजात हेमाद्रिमें संग्रहका कथन है कि, नित्य, नैमित्तिक, जप, होम, यज्ञ, क्रिया, उपाकर्म उत्सर्गमें ग्रहोंका वेध नहीं मानना चाहिये । पर्वके दिन

तेन पर्वणि ग्रहणेऽपि चतुर्दश्यां श्रवणे कार्यमिति हेमाद्रिः ॥ अस्ते प्रथमारम्भस्तु न भवति-"गुरुभार्गवयोर्मौढ्ये बाल्ये वा वार्द्धकेऽपि वा । तथाधिमाससंसर्पमलमासादिषु द्विज ॥ प्रथमोपाकृतिर्न स्यात्कृतं कर्म विनाशकृत् ॥" इति तत्रैव काश्यपोक्तेः। अत्र प्रथमारम्भे वृद्धिश्राद्धं कुर्यादिति नारायणवृत्तौ ॥ एतच्चाधिमासे न कार्यम्। "उपाकर्म तथोत्सर्गः प्रसवाहोत्सवाष्टकाः। मासवृद्धौ परे कार्या वर्जयित्वा तु पैतृकम् ॥" इति ज्योतिःपराशरोक्तेः। "उत्कर्षः कालवृद्धौ स्यादुपाकर्मादिकर्मणि । अभिषेकादिवृद्धीनां न तूत्कर्षो युगादिषु ॥" इति कात्यायनोक्तेश्च। यत्तु-'उपाकर्मणि चोत्सर्गे ह्येतदिष्टं वृषादितः' इति ऋष्यशृङ्गवचनं तत्सामगविषयम्। तेषां सिंहार्के एवोक्तेः। एतच्चापराह्णे कार्यम्-'उपाकर्मापराह्णे स्यादुत्सर्गः प्रातरेव तु ॥' इति । "अध्यायानामुपाकर्म कुर्यात्कालेऽपराह्णिके । पूर्वाह्णे तु विसर्गः स्यादिति वेदविदो विदुः ॥" इति च हेमाद्रौ गोभिलोक्तेः। वस्तुतस्तु-'भवेदुपाकृतिः पौर्णमास्यां पूर्वाह्ण एव तु' इति प्रचेतसो वचनात्। पूर्ववाक्यं सामगविषयम्। तेषामपराह्ण एवोक्तेरित्यनुपदं वक्ष्यते। दीपिकापि-'अस्य तु विधेः पूर्वाह्णकालः स्मृतः' इति। याजुषास्तु पर्वणि कुर्युः।

ग्रहण हो तो उसके पहले तीन दिन वेध नहीं मानना चाहिये। इससे यह कथन है कि, इससे पर्वके दिन ग्रहण होनेसे तो श्रवणयुक्त चतुर्दशीमें उपाकर्म करना, यह हेमाद्रिका कथन है। उपाकर्मका प्रथम आरम्भ न करे। कारण कि, हेमाद्रिमें कश्यपने कहा है कि, गुरु और शुक्रके अस्तमें तथा बाल्य, वृद्ध, अधिकमास और मलमासमें प्रथम उपाकर्मको न करे, करे तो नाश होता है। उपाकर्मके प्रथम आरम्भमें नारायणी श्राद्ध करना। यह नारायणवृत्तिमें कहा है और यह अधिकमासमें न करना। कारण कि, ज्योतिःपराशरमें लिखा है कि, उपाकर्म, उत्सर्ग, जातकर्म, अष्टकाश्राद्ध ये सब मासवृद्धिमें परमासमें करने चाहिये और पितृश्राद्धको त्याग दे। कालकी वृद्धि हो तो उपाकर्म आदि कर्ममें उत्कर्ष (श्रेष्ठका ग्रहण) होता है. अभिषेक आदि वृद्धियोंमें और युगादि तिथियोंमें उत्कर्ष नहीं होता। यह कात्यायनने लिखा है। और जो यह ऋष्यशृंगने कहा है कि, उपाकर्म और उत्सर्गमें यह (श्राद्ध) वृष आदि संक्रान्तिसे ग्रहण है वह सामवेदियोंके निमित्त है। कारण कि, उनको सिंहके सूर्यमें ही लिखा है, यह अपराह्णमें करना। कारण कि, हेमाद्रिमें गोभिलका कथन है कि, अपराह्णमें उपाकर्म और प्रातःकाल उत्सर्ग होता है। वेदोंका उपाकर्म अपराह्णकालमें करे, उत्सर्ग पूर्वाह्णकालमें करे, यह वेदके ज्ञाता मानते हैं। सिद्धान्त तो यह है कि, उपाकर्म पूर्णिमाको पूर्वाह्णकालमें होता है, इस प्रचेताके कथनसे प्रथम वाक्य सामगोंके निमित्त है। कारण कि, उनको अपराह्णही लिखा है यह शीघ्रही कहेंगे। दीपिकामें भी लिखा है कि, इस उपाकर्म विधिका काल पूर्वाह्ण यजुर्वेदियोंको तो पूर्णिमामें करना चाहिये और आपस्तंब

तच्चापस्तम्बैरौदयिकं ग्राह्यमन्यैस्तु पूर्ववत् । "पर्वण्यौदयिके कुर्युः श्रावणे तैत्तिरीयकाः । बह्वृचाः श्रवणे कुर्युर्ग्रहसंक्रान्तिवर्जिते ॥" इति गार्ग्योक्तेः । "संप्राप्तवाञ्छ्रुतीर्ब्रह्मा पर्वण्यौदयिके पुनः । अतो भूतादिने तस्मिन्नोपाकरणमिष्यते ॥" इति कालिकापुराणाच्च । "अथ चेद्दोषसंयुक्ते पर्वणि स्यादुपाक्रिया । दुःखशोकामयग्रस्ता राष्ट्रे तस्मिन् द्विजातयः ॥" इति मदनरत्ने हेमाद्रौ गार्ग्येण दोषोक्तेः । अत्र शिंगाभट्टीये विशेषः । "श्रवणः श्रावणं पर्व संगवस्पृग्यदा भवेत् । तदैवौदयिकं कार्यं नान्यदौदयिकं भवेत् ॥" पराशरमाधवीयेऽपि गार्ग्यः—"श्रावणी पौर्णमासी तु संगवात् परतो यदि । तदैवौदयिकी ग्राह्या नान्यदौदयिकी भवेत्"॥ उपाकर्मकालनिर्णयः। कर्मकालमाह कालादर्शे निगमः—"श्रावण्यां प्रौष्ठपद्यां वा प्रतिपत् षण्मुहूर्तकैः । विद्धा स्याच्छन्दसां तत्रोपाकर्मोत्सर्जनं भवेत् ॥" अत्र पौर्णमासी श्रावणहस्तयोरुपलक्षणम् । तेन तावपि संगवस्पृशौ । "उदये संगवस्पर्शे श्रुतौ पर्वणि चार्कभे । कुर्युर्नभस्युपाकर्म ऋग्यजुःसामगाः क्रमात् ॥" इति पृथ्वीचन्द्रः । तेनोदयसंगवोभयव्यापिनी मुख्या । परेद्युः संगवाभावे पूर्वेद्युरुभयाभावे चैकैकसत्त्वे पूर्वेद्युश्चतुर्दशीवेधनिषेधात्सामान्यवाक्यादौदयिकी कर्मपर्याप्ता ग्राह्या, न पूर्वा । संगवनिमित्तपूर्वविद्धाप-

---

उदय समयको मानते हैं और दूसरे पूर्वको मानत हैं। कारण कि, गर्गका कथन है कि, तैत्तिरीयशाखावाले रविके दिन उदयके समयमें और बह्वृच श्रवणके दिन उपाकर्म ग्रहण और संक्रांतिको त्याग दे. कालिकापुराणमें लिखा है कि, पूर्णिमाको उदयके कालमें ब्रह्माजीको वेद प्राप्त हुए हैं, इससे चतुर्दशीके दिन उपाकर्म करना उचित नहीं। मदनरत्नमें गर्गने कहा है कि, उपाकर्म किसी दोषसे युक्त हो तो उस राज्यके द्विजाति दुःख, शोक और रोगसे युक्त होते हैं। शिङ्गाभट्टीय ग्रन्थमें विशेष लिखा है कि, श्रवण और श्रावणका पर्व इनमें संगवका स्पर्श हो तो उदयकाल लेना अन्यथा नहीं लेना। पराशरमाधवमें गर्गने लिखा है कि, श्रावणकी पूर्णिमा संगवसे परे हो तो उदयकालकी ग्रहण करनी अन्यथा न लेनी। कर्मका समय कालादर्शग्रन्थमें निगमने यह लिखा है कि, श्रावणकी वा भाद्रपदकी पूर्णिमा छः मुहूर्त भी प्रतिपदासे विद्ध हो तो उसमें वेदोंका उपाकर्म और उत्सर्ग होता है। यहां पूर्णिमासे श्रवण और हस्त भी ग्रहण करना। कारण कि, उनमें भी संगवका स्पर्श होता ही है। पृथ्वीचंद्रने यह लिखा है कि, यदि उदयके कालमें श्रवण और पर्वमें छः घड़ीका स्पर्श कर्कसंक्रांतिमें हो तो भाद्रपदमें ऋक्, यजु, सामवेदियोंको क्रमसे उपाकर्म करना चाहिये सो ठीक नहीं है। इससे उदय संगवमें उभयव्यापिनी मुख्य है। कारण कि, श्रवणनक्षत्रकी दो घडी इस पूर्वोक्त वाक्यका विरोध है। सामान्यवाक्यसे तो कर्मके योग्य उदयकालकी पूर्णिमा ग्रहण करनी, पहली न लेनी। संगवके

वादाभावात् । नान्यदौदयिकी इत्यस्य पूर्वविद्धापरत्वाभावात् । तेन भाद्रादौ कालान्तरे स्यान्न तु निषिद्धे । न हि व्रीह्यलाभे निषिद्धमाषग्रहणं युक्तम् । अत एव परेद्युः संगवव्याप्तौ पूर्वविद्धानिषेधः । तदभावे तु न इति मूर्खव्यवस्थाप्ययुक्ता विधिवैषम्यात् । माषनिषेधेऽपि तथापत्तेश्च । पूर्वविद्धावचनसत्त्वे हि सा युज्यते । एवं श्रवणेऽपि ज्ञेयम् ॥ 'विष्णवृक्षे घटिकाद्वयम्' इति पूर्वोक्तविरोधात् । तेन प्राशस्त्यमात्रपरमिदम् । तत्त्वं तु–'एतच्छुद्धाधिकपरम् ।' तेन यथाग्निहोत्रादौ सायंप्रातःकालबाधे सामान्ये जीवनावच्छिन्नकाले दर्शादौ वानुष्ठानम् । यथा वा व्रीह्यश्वशफाद्यभावे यागाक्षिप्तनिषिद्धवर्जद्रव्येण । तथात्र संगवाभावे निषिद्धवर्जकर्मपर्याप्तौदयिके कालान्तरे वानुष्ठानं न तु कदाचिन्निषिद्धे । अपवादाभावे उत्सर्गस्यैव प्राप्तेः । कात्यायनादीनां तु दिनद्वये पूर्वाह्णव्याप्तौ एकदेशस्पर्शे वा पूर्वेति हेमाद्रिः। यदपि–"श्रावणी दुर्गनवमी दूर्वा चैव हुताशनी । पूर्वविद्धा प्रकर्तव्या शिवरात्रिर्बलेर्दिनम्" इति ब्रह्मवैवर्तम् । 'तद्ब्रह्मपवित्रश्रवणकर्मादिदैवकर्मविषयम्' इति हेमाद्रिः ॥ अत एव वचनात् कुलधर्मव्रतादावपि पूर्वैव । मदनरत्नेऽप्येवम् । मदनपारिजातेऽपि पूर्वविद्धायां श्रावण्यां वाजसनेयिनामुपाकर्मेत्युक्तम् ॥ मदनरत्ने

निमित्त पूर्वविद्धाका निषेध नहीं पाया जा सकता । भाद्रपद आदि कालांतरमें हो तो उसका निषेध नहीं है। कुछ व्रीहिके न प्राप्त होनेपर निषिद्ध उरदोंका ग्रहण उचित नहीं, इससे यह मूर्खोंकी की हुई व्यवस्था खण्डित हुई कि, दूसरे दिन संगवव्यापिनी हो तो पूर्वका निषेध है, न हो तो निषेध नहीं और विधिके वैषम्यसे माषनिषेधमें भी इसी व्यवस्थाकी प्राप्ति होगी, पूर्वविद्धामें कोई वाक्य हो तो वह युक्त हो सकती है । इसी प्रकार श्रवणमें भी जानना चाहिये । यह वाक्य उस विषयमें है जहां शुद्धपूर्णिमा अधिक हो, इससे जैसे अग्निहोत्र आदिका सायंकाल और प्रातःकाल बाध हो जाय तो सामान्य वाक्यके बलसे और समयमें अमावास्याके यज्ञका करना और व्रीहि अश्वशफ (अश्वका खुर) आदिके अभावमें योग्य निषिद्धको त्याग श्रेष्ठ द्रव्यसे यज्ञ होता है । इसी प्रकार यहां भी संगवके अभावमें निषिद्ध भिन्न कर्मयोग उदय समयमें वा दूसरे समयमें उपाकर्म करे, जिस किसी निषिद्ध समयमें न करे। कारण कि, अपवादके अभावमें उत्सर्गकी ही प्राप्ति होती है, इससे प्रशंसाके निमित्त यह वाक्य है। कात्यायन आदिकोंको तो पूर्णिमा दोनों दिन पूर्वाह्णव्यापिनी हो वा एकदेशव्यापिनी हो तो पहली ग्रहण करनी, यह हेमाद्रिने कहा है । और जो यह ब्रह्मवैवर्तमें लिखा कि, श्रावणी, दुर्गानवमी, होली, दुर्गाष्टमी, शिवरात्रि, वामनद्वादशी यह पूर्वविद्धा ग्रहण करनी । यह वाक्य ब्रह्मपवित्रा, श्रवणकर्म, दैवकर्म विषयमें कहा है, यह हेमाद्रिमें कहा है । इसी वाक्यसे कुलधर्म व्रत आदिमें प्रथम ही ग्रहण करनी । मदनरत्नमें भी इसी प्रकार कहा है । मदनपारिजातमें भी कहा है कि, वाजसनेयियोंको पूर्वविद्धा श्रावणीमें उपाकर्म करना लिखा है । मदनरत्नमें

तु—'पर्वण्यौदयिके कुर्युः श्रावणं तैत्तिरीयकाः' इति बह्वृचपरिशिष्टात् बह्वृचान् प्रति कर्मविधानार्थप्रवृत्तेः । तत्र तैत्तिरीयककर्मविध्ययोगात् पूर्वोक्तकालिकापुराणादौ सामान्यत औदयिकपर्वप्राप्तेस्तन्निषेधेन बह्वृचानां श्रवणविधिना तैत्तिरीयकपदमनुवादत्वात् तस्य च प्राप्त्यधीनत्वात् प्राप्तेश्च यजुर्वेदिमात्रपरत्वात् सर्वयजुर्वेद्युपलक्षणार्थम् 'अवयुत्यानुवादो वा' न तु विधायकं येन विशेषविधिनोपसंहारः स्यात् । अनुवादत्वाल्लक्षणा न दोषः । अन्यथा त्वौदयिकपर्वविशिष्टोपाकर्मोद्देशेन कर्तृविधौ कर्तृविशिष्टे वा औदयिकपर्वविधौ वाक्यभेदापत्तेः । तस्मात्तैत्तिरीयकपदाविवक्षया सर्वयजुर्वेदिनामौदयिकमेव पर्वेत्युक्तम् । तन्न । न तावत् परिशिष्टे बह्वृचान् प्रत्येव विधिः । 'धनिष्ठाप्रतिपद्युक्तत्वाष्ट्रऋक्षसमन्वितम्' ॥ इत्यादितदुदाहृते एव परिशिष्टे वेदान्तरधर्मविधीनां दर्शनात् । नाप्यनुवादोऽयं कालिकापुराणात् बह्वृचादीनामपि तदापत्तेः । कुर्युरित्यस्य विधित्वेन तस्यैवार्थवादत्वेनैतत्प्राप्तानुवादित्वाच्च । न च तैत्तिरीयकाणां गृह्ये तद्विधिरस्ति । येनानुवादः स्यात् । न च वाक्यभेदः । तैत्तिरीयकमात्रस्य कर्ममात्रस्य वा उद्देशत्वायोगेन हविरार्तिवदष्टवर्षं ब्राह्मणमुपनयीतेतिवच्चागत्याविशिष्टस्योद्देशत्वात् । अन्यथोत्तरार्धे

तो लिखा है कि, तैत्तिरीयशाखावाले पूर्णिमाको उदयके समय उपाकर्म करें, बह्वृचपरिशिष्टग्रन्थमें बह्वृचोंकी कर्मविधिके निमित्त प्रवृत्ति होनेसे उसमें तैत्तिरीयशाखावालोंकी कर्मविधिका योग नहीं है, इससे पूर्वोक्त कालिकापुराण आदिके सामान्य वाक्योंसे उदयकालके पर्वकी ही प्राप्ति है । इससे निषेधसे बह्वृचोंके श्रवणका विधान है । इससे तैत्तिरीयपद अनुवाद होनेसे सम्पूर्ण यजुर्वेदियोंका बोधक है । कारण कि, अनुवाद प्राप्तिके अधीन हुआ करता है और प्राप्ति सम्पूर्ण यजुर्वेदियोंको आती है, अथवा मिलकर अनुवाद है, कुछ विधायक नहीं है, जिससे विशेष विधिसे उपसंहार हो चुके । अनुवाद होनेसे लक्षणाका भी दोष नहीं आता, नहीं तो उदयकालके पर्वविशिष्ट (युक्त) कर्मके उद्देशसे कर्ताका विधान करोगे वा कर्ता विशिष्टमें उदयकालके कर्मका विधान करोगे तो वाक्यके भेदकी प्राप्ति होगी । इससे तैत्तिरीयपदकी अविवक्षासे सब यजुर्वेदियोंके निमित्त पर्वके उदयकालका समय ही है, यह मदनरत्नका कथन सत्य नहीं । कारण कि, परिशिष्टकी प्रवृत्ति कुछ बह्वृचोंके निमित्त नहीं है । कारण कि, धनिष्ठा नक्षत्र, प्रतिपदा चित्रानक्षत्रसे युक्त समयमें भी इत्यादि उनके ही लिखे हुए परिशिष्टमें और वेदोंके धर्मोंकी विधियोंको देखते हैं और अनुवाद भी यह नहीं । कारण कि, कालिकापुराणसे बह्वृचोंको भी उसकी प्राप्ति आवेगी । कुर्युः (करें) इसको विधि न होनेसे उसका ही अर्थवाद होनेसे यह प्राप्तका ही अनुवाद जानना । यदि कोई कहे कि, तैत्तिरीयोंके गृह्यमें उसकी विधि है, जिससे अनुवाद हो जायगा, यदि कहो वाक्य भेद हो जायगा, सोभी नहीं ।

बह्वृचपदस्याप्यविवक्षापत्त्या श्रवणस्य सर्वसाधारण्यापत्तेः। तस्माद्धेमाद्रिमतमेव युक्तम्। इति दिक्। इदं च 'शिष्यानध्यापयतः आवसथ्येऽग्नौ। अनध्यापयतो नाधिकरः' इति कर्कः॥ श्रावण्यामपि ग्रहणादिदुष्टायां कात्यीयभिन्नैः प्रौष्ठपद्यां कार्यम्। तैस्तु श्रावणपंचम्याम्–"संक्रान्तिर्ग्रहणं वापि पौर्णमास्यां यदा भवेत्। उपाकृतिस्तु पंचम्यां कार्या वाजसनेयिभिः॥" इति स्मृतिमहार्णवे। वाजसनेयिग्रहणात् इति हेमाद्रिः। इदं च सूत्रोक्तकालपरत्वात् बह्वृचपरमपि सांख्यायनैस्तु हस्ते कार्यम्। आपस्तम्बैराथर्वणैश्च प्रौष्ठपद्याम्॥ यत्तु बौधायनः–'श्रावण्यां पौर्णमास्यामाषाढ्यां वोपाकृत्ये' त्यूचे तत् प्रौष्ठपद्यामपि दोषे आषाढ्यां कार्यमित्येवमर्थम्। तच्छाखीयविषयं वा। सामगास्तु श्रावणे हस्ते कुर्युः। 'बह्वृचाः श्रवणे चैव हस्तर्क्षे सामवेदिनः' इति निर्णयामृते गोभिलोक्तेः। सोऽप्युत्तरः–"धनिष्ठाप्रतिपद्युक्तं त्वाष्ट्रऋक्षसमन्वितम्। श्रावणं कर्म कुर्वीरन् ऋग्यजुःसामपाठकाः॥" इति मदनरत्ने परिशिष्टोक्तेः। गार्ग्योऽपि–"सिंहे रवौ तु पुष्यर्क्षे पूर्वाह्णेऽविवरे बहिः। छन्दोगा मिलिताः कुर्युरुत्सर्गं स्वस्वच्छन्दसाम्॥ शुक्लपक्षे तु हस्तेन उपाकर्मापराह्णिकम्॥" इति। अविवरे ग्रहादिदोषहीने। विवरेदिति पाठोऽज्ञानकृतः।

तैत्तिरीयपदको वा सब कर्मोंको उद्देश्य न होनेसे हविःप्रदानके तुल्य वा आठ वर्षमें ब्राह्मणका यज्ञोपवीत करे इसके तुल्य संयुक्तका ही उद्देश्य है, नहीं तो उत्तरार्द्ध (पिछले दो पद) में बहुवृचपदकी भी विवक्षा न होनेसे श्रावण ही सबके निनित्त साधारणरीतिसे हो जायगा। इससे हेमाद्रिका ही यह मत युक्त है, मदनरत्नका नहीं यह मार्ग है। इस उपाकर्मको वह घरकी अग्निमें करे जो शिष्योंको अध्ययन कराता हो. और जो न पढ़ाता हो उसको अधिकार ही नहीं, यह कर्कका कथन है। यदि श्रावणी ग्रहण आदिसे दूषित हो जाय तो कातीय ब्राह्मणोंके विना और सबको भाद्रपदकी पूर्णिमाको उपाकर्म करना चाहिये। और कातीय तो श्रावणकी पञ्चमीको करे, हेमाद्रिका तो यह कथन है कि, जब पूर्णिमाको संक्रान्ति वा ग्रहण हो तो वाजसनेयीजनोंको पञ्चमीको उपाकर्म करना चाहिये। यह स्मृतिमहार्णवमें वाजसनेयी पदका ग्रहण है, इसको अपने सूत्रमें लिखे कालका बोधक होनेसे बहुवृचोंके निमित्त भी जानना, संख्यायनको तो हस्तमें करना चाहिये। आपस्तंब और आथर्वण भाद्रपदकी पूर्णिमाको करें, जो बौधायनने लिखा है कि, श्रावण वा आषाढ़की पूर्णिमाको उपाकर्म करे, वह बौधायनका कहना इस कारण है कि, भाद्रपदकी पूर्णिमाको भी दोष हो तो आषाढकी पूर्णिमाको करना, अथवा उनकी शाखाके ही विषयमें वह वाक्य है, सामवेदी तो श्रवणमें, हस्तनक्षत्रमें करे। कारण कि, निर्णयामृतमें गोभिलने कहा है कि, श्रवणनक्षत्रमें बहुवृच और हस्तनक्षत्रमें सामवेदी करे, वह भी श्रेष्ठ है। कारण कि, मदनरत्नमें परिशिष्टका यह वाक्य है कि, धनिष्ठा, प्रतिपदा, चित्रा नक्षत्रसे युक्त समयमें ऋक्, यजुः सामवेदियोंको उपाकर्म करना उचित है, गार्ग्यका भी कथन है कि, सिंहका सूर्य, पुष्य नक्षत्र, ग्रहण आदिसे निर्दोष समयमें सम्पूर्ण वेदपाठीजनोंको मिलकर अपने २ वेदोंका उत्सर्ग ग्रामसे बाहिर तीर्थ आदिपर करना चाहिये। और शुक्लपक्षमें तो हस्तनक्षत्रमें

पुष्यर्क्षे पूर्वाह्णे उत्सर्गः । आपराह्णिकमुपाकर्मेत्यन्वयः । अन्यस्तु विशेषः पूर्वमेवोक्तः। प्रयोगपारिजाते गोभिलः–"उपाकर्मोत्सर्जनं च वनस्थानामपीष्यते । धारणाध्ययनांगत्वाद्गृहिणां ब्रह्मचारिणाम् ॥ उत्सर्जनं च वेदानामुपाकरणकर्म च । अकृत्वा वेदजप्येन फलं नाप्नोति मानवः ॥" सर्वथा लोपे तु कृच्छ्र उपवासश्च । 'वेदोदितानां नित्यानाम्' इति मनुना भोजनोक्तेः । एवमुत्सर्गेऽपि । उत्सर्जननिर्णयः । अथ प्रसंगादत्रैवोत्सर्जनमुच्यते । तच्च पौषमासे रोहिण्यां तत्कृष्णाष्टम्यां वा कार्यम् । "पौषमासस्य रोहिण्यामष्टकायामथापि वा । जलान्ते छन्दसां कुर्यादुत्सर्गं विधिवद्बहिः" इति याज्ञवल्क्योक्तेः । श्रावण्यां प्रौष्ठपद्यां चोपाकृतौ क्रमेण पौषशुक्लप्रतिपदि वा कार्यम् । 'अर्धपञ्चमान्मासानधीयत' इति तेनैवोक्तेः । अर्धः पञ्चमो येषु सार्धचतुर इत्यर्थः । यत्तु हारीतः–'अर्धपञ्चमान्मासानधीत्योर्ध्वमुत्सृजत् । पञ्चार्धषष्ठान्वा' इति । तदाषाढ्युपाकर्मविषयम् ॥ बौधायनास्तु–पौष्यां माघ्यां वा कुर्युः 'पौष्यां माघ्यां चोत्सृजेत्' इति तत्सूत्रात् ॥ तैत्तिरीयैस्तु–तैष्यां कार्यं 'तैष्यां पौर्णमास्यां रोहिण्यां वा विरमेत्' इति तत्सूत्रात् । बह्वृचैस्तु–माघ्यां कार्यम् 'अध्यायोत्सर्जनं माघ्यां पौर्णमास्यां विधीयते' इति कारिकोक्तेः । काती

अपराह्णमें करे, यहां अविवरे यह पाठ है, जो विवरेत् यह पाठ करे वह अज्ञानकृत है और विशेष तो प्रथम कह आये हैं । प्रयोगपारिजातमें गोभिलने कहा है कि, वानप्रस्थ, गृहस्थी, ब्रह्मचारियोंको भी उपाकर्म इससे करना चाहिये । कारण यह वेदोंकी धारणा और पढ़नेका अंग है, वेदोंके उत्सर्ग और उपाकर्मको न करनेसे मनुष्यको जपका फल प्राप्त नहीं होता । यदि इन दोनोंका सब प्रकार लोप होजाय तो कृच्छ्र और व्रत करे। कारण कि,वेदमें लिखे नित्यकर्मोंके त्यागमें मनुजीने भोजनका अभाव लिखा है, इसी प्रकार उत्सर्गमें भी जानना । यहां ही प्रसंगसे उत्सर्गको लिखते हैं–वह पौषमासके रोहिणीनक्षत्रमें वा पौषवदी अष्टमीमें करना चाहिये। कारण कि, याज्ञवल्क्यमें यह लिखा है कि, पौषमासकी रोहिणीनक्षत्र वा अष्टकाको जलके निकट ग्रामसे बाहर जाकर विधिसे वेदोंका उत्सर्ग करना चाहिये । श्रावणी वा भाद्रपदकी पूर्णिमाको उपाकर्म किया हो तो क्रमसे पौषशुक्ला वा माघशुक्ला प्रतिपदाको उत्सर्ग करे । कारण कि,उसने ही यह लिखा ह कि–साढ़ेचार मास अध्ययन करे।इस कथनमें अर्द्धपंचका अर्थ यह है कि, आधा है पांचवाँ जिनमें ऐसे साढ़ेचार । जो हारीतने यह लिखा है कि साढ़ेपांच महीने पढ़कर फिर उत्सर्ग करे अथवा पांच है आधे जिसमें ऐसे वा षष्ठान् पढकर उत्सर्ग करे, यह हारीतका कहना आषाढकी पूर्णिमाको उपाकर्मके विषय जानना चाहिये. बौधायन तो यह लिखते हैं कि, पौष वा माघकी पूर्णिमाको उत्सर्ग करे । कारण कि, यही उनका सूत्र ह । तैत्तिरीयोंको तो पौषमें करना चाहिये । कारण कि, पौषपूर्णिमा व रोहिणीनक्षत्रमें वेदाध्ययनका विराम कर दे यही उनका सूत्र है । बह्वृचोंको तो माघकी पौर्णिमाको करना चाहिये । कारण कि, कारिकामें यह लिखा है कि, वेदपाठका त्याग माघकी पूर्णिमाको करना चाहिये, कातीयोंको

यास्तु भाद्रपदे कुर्युः। 'उत्सर्गश्चेति नन्दादितिथ्यां प्रौष्ठपदेऽपि वा' इति कात्यायनोक्तेः। सामगास्तु सिंहार्के पुष्ये कुर्युः। तथा च-'सिंहे रवौ तु' इति गार्ग्यवचनं पूर्वमुक्तम्। सर्वैरुपाकर्मदिने वा कार्यम्। 'पुष्ये तूत्सर्जनं कुर्यादुपाकर्मदिनेऽथवा' इति हेमाद्रौ खादिरगृह्योक्तेः। यदा सिंहस्थे सूर्ये सति तन्मध्यहस्तनक्षत्रात् प्राक् पुष्यः कर्कटस्थो भवति तदा तस्मिन् पुष्ये उत्सर्गं कृत्वा तदुत्तरहस्ते उपाकर्म सामगाः कुर्युः। "मासे प्रौष्ठपदे हस्तात्पुष्यः पूर्वो भवेद्यदा। तदा च श्रावणे कुर्यादुत्सर्गं छन्दसां द्विजः" इति तत्रैव परिशिष्टोक्तेः। अत्र द्वावपि सौरौ मासौ ज्ञेयौ तेषां सौरस्यैवोक्तेः। अत्र विशेषमाह कार्ष्णाजिनिः-"उपाकर्मणि चोत्सर्गे यथाकालं समेत्य च। ऋषीन्दर्भमयान्कृत्वा पूजयेत्तर्पयेत्ततः॥" इति। उपाकर्मण्युत्सर्गे च त्रिरात्रम्। 'पक्षिणीमहोरात्रं वानध्यायः' इति मिताक्षरायामुक्तम्। अत्र नदीनां रजोदोषो नास्ति। 'उपाकर्मणि चोत्सर्गे रजोदोषो न विद्यते' इति गार्ग्योक्तेः। रक्षाबन्धनम्। अत्रैव रक्षाबन्धनमुक्तम्। हेमाद्रौ भविष्ये-"संप्राप्ते श्रावणस्यान्ते पौर्णमास्यां दिनोदये। स्नानं कुर्वीत मतिमाञ्श्रुतिस्मृतिविधानतः॥ उपाकर्मादिकं प्रोक्तमृषीणां चैव तर्पणम्। शूद्राणां मन्त्ररहितं स्नानं दानं च शस्यते॥ उपाकर्मणि कर्तव्यं ऋषीणां चैव पूजनम्। ततोऽपराह्णसमये रक्षापोटलिकां शुभाम्॥ कारयेद-

---

तो भाद्रपदमें करना चाहिये। कारण कि, कात्यायनने यह कहा है कि, पौषकी तिथि भाद्रपदकी पूर्णिमाको त्याग करे। सामवेदियोंको तो सिंहके सूर्य पुष्यनक्षत्रमें करना चाहिये। तैसे ही सिंह सूर्यमें करे यह गर्गका वाक्य प्रथम लिख आये हैं, अथवा सम्पूर्ण उपाकर्मके दिन ही करे, कारण कि, हेमाद्रिमें खादिर गृह्यका वाक्य है कि, पुष्पनक्षत्रमें अथवा उपाकर्मके दिन त्याग करे। जब सिंहके सूर्यके मध्यमें वर्तमान हस्त नक्षत्रसे प्रथम पुष्य कर्कके सूर्यमें हो तब उस पुष्यमे उत्सर्ग करके उससे अगले हस्तमें सामवेदी उपाकर्म करें। कारण कि, हेमाद्रिमें ही परिशिष्टका कथन है कि, यदि भाद्रपदमासमें हस्तसे पहले पुष्य हो तब ब्राह्मण श्रावणमें उत्सर्ग करे, इसमें दोनों सूर्यमास लेने कारण कि, सामवेदियोंको सौरमास ही लिखा है, इसमें कार्ष्णाजिनने विशेष लिखा है कि, उपाकर्म और उत्सर्गमें शास्त्रोंमें कहे समयमें एकत्र होकर कुशाओंके ऋषि निर्माण कर पूजे और अर्पण करे। उपाकर्म और उत्सर्गमें तीन दिन पाक्षिणी (दो रात एक दिन) वा अहोरात्र (१ दिन रातका) अनध्याय मिताक्षरामें लिखा है, इसमें नदियोंके रजका दोष नहीं है। यह गार्ग्यने लिखा है कि, उपाकर्ममें रजका दोष नहीं है। इसमें ही रक्षाबन्धन हेमाद्रिमें भविष्यपुराणके वाक्यसे लिखा है कि, श्रावणकी पूर्ति होनेपर पूर्णिमाको सूर्योदयके समय श्रुति और स्मृतिकी विधिसे स्नान करना चाहिये और उपाकर्म ऋषियोंका तर्पण और पूजन करे। शूद्रोंका स्नान दान मंत्ररहित है। फिर अपराह्णके समयमें शुभ रक्षाकी पोटली इस प्रकार

क्षतैः शस्तैः सिद्धार्थैर्हेमभूषितैः ॥ ३ ॥ " इति । अत्रोपाकर्मानन्तर्यस्य पूर्णातिथौ वार्षिकस्यानुवादो न तु विधिः गौरवात् प्रयोगविधिभेदे च क्रमायोगाच्छूद्रादौ तदयोगाच्च । तेन परेद्युरुपाकरणेऽपि पूर्वेद्युरपराह्णे तत्करणं सिद्धम् । इदं भद्रायां न कार्यम् । "भद्रायां द्वे न कर्तव्ये श्रावणी फाल्गुनी तथा । श्रावणी नृपतिं हन्ति ग्रामं दहति फाल्गुनी ॥" इति संग्रहोक्तेः । तत्सत्त्वे तु रात्रावपि तदन्ते कुर्यादिति निर्णयामृते । इदं प्रतिपद्युतायां न कार्यम् । " नन्दायां दर्शने रक्षा बलिदानं दशासु च । भद्रायां गोकुलक्रीडा देशनाशाय जायते ॥" इति मदनरत्ने ब्रह्मवैवर्तात् । भाविष्ये-"उपालिप्ते गृहमध्ये दत्तचतुष्के न्यसेत्कुम्भम् । पीठे तत्रोपविशेद्राजामात्यैश्च सुमुहूर्ते ॥ तदनु पुरोधा नृपते रक्षां बध्नीत मन्त्रेण ॥ " इदं रक्षाबन्धनं नियतकालत्वात् भद्रावर्ज्यग्रहणादिनेऽपि कार्यं होलिकावत् । ग्रहसंक्रान्त्यादौ रक्षानिषेधाभावात् । 'सर्वेषामेव वर्णानां सूतकं राहुदर्शने' इति तत्कालमात्रनिषेधाच्च । " त्रयोदश्यादितो वर्ज्यं दिनानां नवकं ध्रुवम् । माङ्गल्येषु समस्तेषु ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ॥" इति यो निषेधः सोऽप्यनियतकालीनकर्मपर एव । नत्वन्यत्र । अन्यथा होलिकायां का गतिः । अत एव-" नित्ये नैमित्तिके जप्ये होमयज्ञक्रियासु च । उपाकर्मणि चोत्सर्गे ग्रहवेधो न विद्यते ॥" इति । नियतकालीने तदभाव इति दिक् । उपाकर्मणि तद्दिनभिन्न-

---

बाँधे जो सुवर्णसे शोभित चावल और सरसोंसे युक्त हो । यहां अर्थात् सिद्ध उपाकर्मके उपरान्तका अनुवाद है विधान नहीं । कारण कि, विधि माननेमें गौरव आता है । प्रयोगविधिसे भेदसे क्रमका अयोग होनेसे और शूद्र आदिमें उपाकर्मका योग न होनेसे विधि नहीं, इससे दूसरे दिनमें उपाक्रम होनेपर भी पहले दिनमें अपराह्णके समय रक्षाबन्धन करना सिद्ध है । यह रक्षाबन्धन भद्रामें नहीं करना चाहिये । इसका कारण संग्रहमें लिखा है कि, श्रावणी और होली ये दोनों भद्रामें न करनी चाहिये, करे तो श्रावणी राजाको और होली ग्रामको दग्ध करती है, भद्रा हो तो भद्राके उपरान्त रात्रिमें भी रक्षाबन्धन कर ले, यह निर्णयामृतमें कहा है । यह प्रतिपदामें न करनी नन्दामें दर्शन रक्षा बलिदान दशाओंमें और भद्रामें गोकुलक्रीडा देशनाशके निमित्त होती है, ऐसा मदनरत्नमें ब्रह्मवैवर्तसे लिखा है । भविष्यमें है कि, घर लीपकर चौक पूर उसपर घट रक्खे, चौकी बिछाकर राजा और अमात्य शुभमुहूर्तमें बैठें फिर पुरोहित राजाके हाथमें रक्षाबन्धन करे । यह रक्षाबन्धन नियत कालमें होनेसे भद्राको छोडकर ग्रहणके दिन भी होलीके समान करना, ग्रहणसंक्रांति आदिमें रक्षाका निषेध न होनेसे सब वर्णोंको राहुदर्शनमें सूतक होता है, इससे कालमात्रका निषेध करनेसे त्रयोदशीसे नौ दिनपर्यन्त चन्द्र सूर्यके ग्रहणमें नौ दिन सब मंगलकार्योंमें त्याग देने यह निषेध अनियत कालकर्मपर है । और जगह नहीं तो होलीकी क्या गति होगी ? इससे नित्य नैमित्तिक जप, होम, यज्ञक्रिया, उपाकर्म और उत्सर्गमें ग्रहवेध नहीं लगता है । इस प्रकार नियत कालमें उसका अभाव है, यह संक्षेपसे कहा । उपाकर्ममें उस दिनसे भिन्न

परं तत्र तन्निषेधादित्युक्तं प्राक्। मन्त्रस्तु–" येन बद्धो बली राजा दानवेन्द्रो महाबलः। तेन त्वामपि बध्नामि रक्षे मा चल मा चल ॥ ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्वैश्यैः शूद्रैरन्यैश्च मानवैः। कर्तव्यो रक्षिताचारो द्विजान् संपूज्य शक्तितः ॥" इति। हयग्रीवोत्पत्तिः। अत्रैव हयग्रीवोत्पत्तिः। तदुक्तं कल्पतरौ–"श्रावण्यां श्रवणे जातः पूर्वं हयशिरा हरिः। जगाद सामवेदं तु सर्वकल्मषनाशनम् ॥ स्नात्वा संपूजयेत्तं तु शंखचक्रगदाधरम् ॥" श्रवणाकर्मनिर्णयः। अत्राश्वलायनेन श्रवणाकर्मोक्तम्। 'श्रावण्यां पौर्णमास्यां श्रवणाकर्म' इति तत्रास्तमययोगिनी ग्राह्या। 'अस्तमिते स्थालीपाकं श्रापयित्वा' इति सूत्रात्। अत एवाष्टौ निशीष्टौ दर्शप्रयोगान्तः पातनियमात्तदङ्गैः प्रसङ्गसिद्धिरुक्ता द्वादशे। अन्यथा परेद्युः प्राप्तौ कः प्रसंगः प्रसंगस्य। याज्ञिकास्तु पूर्णिमादर्शशब्दयोः पर्वान्त्यक्षणवदहोरात्रवाचित्वात्तत्रैव कर्मकालव्याप्तिर्ग्राह्येति विकृतित्वाच्छेषपर्वेच्छन्ति ॥ श्रावणकृष्णद्वितीयायामशून्यव्रतनिर्णयः। श्रावणादिमासचतुष्टयकृष्णपक्षद्वितीयासु अशून्यव्रतम्। तत्र चन्द्रोदयव्यापिनी। दिनद्वये सत्त्वे परेति निर्णयामृते। इति कमलाकरभट्टकृते निर्णयसिन्धौ श्रावणमासः समाप्तः। भाद्रपदमासः। सिंहसंक्रांतिनिर्णयः। सिंहे पराः षोडश घटिकाः पुण्यकालः। अन्यत् पूर्ववत् ॥ गोप्रसवे शान्तिः। अत्र गोप्रसवेऽद्भुतसागरे नारदः–"भानौ सिंहगते चैव यस्य गौः सम्प्र-

पर है, वहां उसके निषेध होनेसे पहले कह दिया है। रक्षाका मन्त्र तो यह है कि, जिससे दानवोंका राजा महाबली बलिराजा बांधा गया है 'रक्षे' इस कारणसे तुझे बांधता हूं, तू चलायमान न होना, अचल रहना। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और दूसरे मनुष्य यथाशक्ति ब्राह्मणोंको पूजकर रक्षाबंधनका आचार करें, इसी दिन ही हयग्रीव अवतार हुआ है। यही कल्पतरुमें लिखा है कि, श्रावणीको श्रवणनक्षत्रमें प्रथम समयमें हयग्रीव भगवान् प्रकट हुए, जिन्होंने सब पापोंका नाशक सामवेद उच्चारण किया। इसमें स्नान करके उस शंख, चक्र, गदाधारीका पूजन करे। आश्वलायनने श्रवण कर्म लिखा है, श्रावणकी पूर्णिमाको श्रवणकर्म करे, उसमें वह पूर्णिमा ग्रहण करनी जो अस्तकालमें हो। कारण कि, सूत्रमें यह लिखा है कि, अस्तके कालमें स्थालीपाकको पकाकर, इसीसे रात्रिके यज्ञमें दर्श (अमावस) प्रयोगके मध्यमें प्राप्त हुओंके नियमसे अंगोंमें प्रसंगसिद्धि बाहरमें कही है, नहीं तो परदिनमें प्राप्तिका कौन प्रसंग था? याज्ञिकोंका तो यह कथन है कि, पूर्णिमा और दर्शशब्दोंमें जो शब्द हैं वे पर्वके अन्तक्षणवाले अहोरात्रके वाचक होनेसे उस दिन रातमें कर्मकालकी व्याप्ति (करना) जाननी इससे विकृति होनेसे शेष पर्वकी इच्छा करते हैं। श्रावण आदि चार महीनोंके कृष्णपक्षकी द्वितीयाओंमें अशून्य शयनव्रत लिखा है। यह चन्द्रोदयव्यापिनी ग्रहण करनी। दोनों दिन चन्द्रोदयव्यापिनी हो तो परली ही लेनी, यह निर्णयामृतमें लिखा है। इति श्रीमीमांसकरामकृष्णभट्टात्मजकमलाकरभट्टकृते निर्णयसिन्धौ पं० ज्वालाप्रसादमिश्रकृतभाषाटीकायां श्रावणमासः समाप्तः। सिंहसंक्रान्तिमें अगली सोलह घड़ी पुण्यकाल है और सब पूर्ववत् समझनी। सिंहमें गौका

सूयते। मरणं तस्य निर्दिष्टं षड्भिर्मासैर्न संशयः ॥ तत्र शांतिं प्रवक्ष्यामि येन संपद्यते शुभम्। प्रसूतां तत्क्षणादेव तां गां विप्राय दापयेत् ॥ ततो होमं प्रकुर्वीत घृताक्तै राजसर्षपैः। आहुतीनां घृताक्तानामयुतं जुहुयात्ततः ॥ ३ ॥" व्याहृतिभिश्चायं होमः। 'सोपवासः प्रयत्नेन दद्याद्विप्राय दक्षिणाम्।' इति। "सिंहराशौ गते सूर्ये गोप्रसूतिर्यदा भवेत्। पौषे च माहिषी सूते दिवैवाश्वतरी तथा ॥ तदानिष्टं भवेत्किंचित्तच्छान्त्यै शांतिकं चरेत्। अस्य वामेति सूक्तेन तद्विष्णोरिति मन्त्रतः ॥ जुहुयाच्च तिलाज्येन शतमष्टोत्तराधिकम्। मृत्युञ्जयविधानेन जुहुयाच्च तथायुतम् ॥ श्रीसूक्तेन ततः स्नायाच्छान्तिसूक्तेन वा पुनः। मध्यरात्रे निशीथे वा यदा गौः क्रन्दते सदा ॥ ग्रामे वा स्वगृहे वापि शान्तिकं पूर्ववद्दिशेत् ॥ ४ ॥" एवं श्रावणे वडवाप्रसवो दिने निषिद्धः। तदुक्तमथर्ववेदिनां गार्ग्यपरिशिष्टे- "माघे बुधे च महिषी श्रावणे वडवा दिवा। सिंहे गावः प्रसूयन्ते स्वामिनो मृत्युदायिकाः ॥" इति। अत्र तदुक्ताऽमृताख्या शान्तिः कार्या। भाद्रपदकृष्णतृतीया कज्जलीसंज्ञानिर्णयः। भाद्रकृष्णतृतीया कज्जलीसंज्ञा सा परा ग्राह्येति दिवोदासीये उक्तम्। वचनं हरितालिकाप्रकरणे वक्ष्यामः। भाद्रपदकृष्णचतुर्थीबहुलानिर्णयः। भाद्रकृष्णचतुर्थी बहुलाख्या मध्यदेशे प्रसिद्धा। सा सायाह्नव्यापिनी ग्राह्या। दिनद्वये सत्त्वे पूर्वा ग्राह्या-"गौर्याश्चतुर्थी वटधेनुपूजा

प्रसव हो तो उसका ६ महीनेमें मरण लिखा है इसमें सन्देह नहीं। जिससे शुभ हो उसको शान्ति लिखते हैं-प्रसूता गौको उसी समय ब्राह्मणको दे देना और श्वेत सरसोंमें घी मिलाकर फिर होम करे और उन घृताक्त आहुतियोंको १०००० दशसहस्र व्याहृतियोंसे दे, फिर प्रयत्नसे व्रत करके ब्राह्मणको दक्षिणा दे। इसी प्रकार सिंहके सूर्यमें जब गौ प्रसूता हो और पौषमें महिषी और दिनमें घोड़ी प्रसूता हो तब उसको अनिष्ट होता है, उसकी शांतिके निमित्त शांति करे (अस्य वाम) इस सूत्रसे अथवा (तद्विष्णोः) इस मन्त्रसे तिल और आज्यकी १०८ आहुति दे और मृत्युञ्जयकी विधिसे दश सहस्र आहुति दे फिर श्रीसूक्त अथवा शांतिसूक्तसे स्नान करे। रात्रिमें अथवा अपने घरमें जो गौ रम्भावे तो उसकी शांति पूर्ववत् करनी। इसी प्रकार श्रावणके दिनमें घोड़ीका प्रसव निषिद्ध कहा है सोई अथर्ववेदियोंके मार्गपरिशिष्टमें लिखा है कि, माघ और बुधवारको भैंस, श्रावणको दिनमें घोड़ी, सिंहमें गौका व्याना हो तो ये स्वामीकी मृत्यु करते हैं इसमें परिशिष्टमें लिखी हुई अमृतशांति करनी। भादों वदी ३ को कजली कथन करते हैं वह परली लेनी। यह वचन हरितालिका प्रकरणमें कहेंगे। दिवोदासीय ग्रन्थमें लिखा है कि, भादों वदी ४ बहुलानामसे मध्यदेशमें प्रचलित है वह अपराह्णव्यापिनी लेनी चाहिये। दोनों दिन अपराह्णव्यापिनी हो तो पहली लेनी, कारण कि, दिवोदासीयमें यह लिखा है कि, गौरी चतुर्थी, वटधेनु पूजा, दुर्गाका अर्चन, दुर्भरहोली, वत्सपूजा, शिवरात्रि

---

१ 'अस्य वामस्य पलितस्य होतुस्तस्य भ्राता मध्यमो अस्त्यश्नः। तृतीयो भ्राता घृतपृष्ठो अस्यात्रापश्यं विश्पतिं सप्तपुत्रम्'। ऋ० २। ३। १४ ॥ २ 'तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः। दिवीव चक्षुराततम्'। य० अ० ६ मं० ५ ॥

दुर्गार्चनं दुर्भरहोलिके च। वत्सस्य पूजा शिवरात्रिरेताः परान्विता घ्नन्ति नृपं सराष्ट्रम्" इति दिवोदासीयवचनात्॥ अत्र वत्सपूजायाः पृथगुपादानाद्धेनुपूजा-शब्देन बहुलाख्या गृह्यते इति स एव व्याचख्यौ॥ मदनरत्नेऽप्येवम्। अत्र गोपूजा यवान्नाशनं च तत्रैवोक्तम्॥ भाद्रपदकृष्णहलषष्ठीनिर्णयः। भाद्रकृष्णषष्ठी हलषष्ठी सा सप्तमीयुतेति दिवोदासः॥ भाद्रपदकृष्ण (शीतला) सप्तमी। भाद्रपदकृष्ण-सप्तम्यां शीतलाव्रतम्। तत्र पूर्वा ग्राह्येति हेमाद्रौ॥ जन्माष्टमीनिर्णयः॥ अथ जन्माष्टमी। सा च कृष्णादिमासेन भाद्रपदकृष्णाष्टमी। "तथा भाद्रपदे मासि कृष्णाष्टम्यां कलौ युगे। अष्टाविंशतिमे जातः कृष्णोऽसौ देवकीसुतः" इति कल्पतरौ-ब्राह्मोक्तेः। अत्रेदं माधवमतम्। अष्टमी द्वेधा–जन्माष्टमी जयन्ती चेति। तत्राद्या केवलाष्टमी। "येन कुर्वन्ति जानन्तः कृष्णजन्माष्टमीव्रतम्। ते भवन्ति नराःप्राज्ञ व्याला व्याघ्राश्च कानने" इति स्कान्दात्। "दिवा वा यदि वा रात्रौ नास्ति चेद्रो-हिणी कला। रात्रियुक्तां प्रकुर्वीत विशेषेणेन्दुसंयुताम्" इति पुराणान्तरात्। "श्रावणे बहुले पक्षे कृष्णजन्माष्टमीव्रतम्। न करोति नरो यस्तु भवति क्रूररा-क्षसः" इति भविष्योक्तेश्च। केवलाष्टम्यामेवोपोष्यत्वावगतेः सैव रोहिणीयुक्ता जयन्ती। "कृष्णाष्टम्यां भवेद्यत्र कलैका रोहिणी यदि। जयन्ती नाम सा प्रोक्ता उपोष्या सा प्रयत्नतः॥" इति वह्निपुराणात्। "अष्टमी कृष्णपक्षस्य रोहिणीऋक्ष-संयुता। भवेत्प्रोष्ठपदे मासि जयन्ती नाम सा स्मृता।" इति विष्णुरहस्यादिवच-

परतिथिसे युक्त ये सब देश और राजाको नष्ट करती हैं, यहां वत्सपूजाके भिन्न कहनेसे धेनुपूजा शब्दसे बहुलापूजा लेनी, यह अर्थ भी दिवोदासीयने ही कहा है, मदनरत्नमें भी यही लिखा है इसमें गोपूजा और जाका भोजन भी दिवोदासीयमें कहा है। भाद्रपदवदी षष्ठी हलषष्ठी कथन की है वह सप्तमीसे संयुक्त लेनी चाहिये, यह दिवोदास लिखते है। भादोंवदी ७ को शीतलाव्रत होता है वह पहली लेनी चाहिये. यह हेमाद्रिका कथन है। वह कृष्णपक्ष आदि माससे भाद्रपदकी अष्टमी होती है. कारण कि, कल्पतरुग्रन्थमें ब्रह्मपुराणका वाक्य है कि, भादोंवदी कृष्णाष्टमीको देवकीजीके पुत्र यह कृष्ण २८ वें कलियुगमें उत्पन्न हुए, इसमें माधवका मत यह है कि, अष्टमी दो प्रकारकी है, जन्माष्टमी और जयंती; उन दोनोंमें पहली केवल अष्टमी है, कारण कि, स्कंदपुराणका यह वाक्य है कि, जो जानकर कृष्णाष्टमीका व्रत नहीं करते वे वनमें सर्प और व्याघ्र होते हैं। और किसी और पुराणका भी वाक्य है कि, दिन वा रात्रिमें घडीभर भी रोहिणी न हो तो चन्द्रोदयके समय वर्तमान रात्रिकी अष्टमीको करे। भविष्यपुराणका भी वाक्य है कि, श्रावणके शुक्लपक्षमें जो मनुष्य कृष्णाष्टमी नहीं करता वह क्रूर राक्षस होता है, केवल अष्टमीको ही व्रत करना लिखा है यदि वह रोहिणीयुक्त हो तो वह जयन्ती कही है उसका यत्नसे व्रत करे, ऐसा अग्निपुराणका वाक्य है और विष्णुरहस्य आदिका वाक्य भी है कि, यदि कृष्ण पक्षकी अष्टमी रोहिणीसे युक्त भाद्रपदमें हो तो वह जयन्ती नामकी

मात्र ॥ ज्योतिरादिवत्संज्ञया कर्मभेदः ॥ रोहिणी योगश्चाहोरात्रं मुख्यः । निशीथमात्रे मध्यमः । दिवसादावधमः "अहोरात्रं तयोर्योगो ह्यसंपूर्णो भवेद्यदि । मुहूर्तमप्यहोरात्रे योगश्चेत्तामुपोषयेत्" इति वसिष्ठसंहितोक्तेः । "अर्धरात्रे तु योगोऽयं तारापत्युदये सति । नियतात्मा शुचिः स्नातः पूजां तत्र प्रवर्तयेत्" इति विष्णुधर्मोक्तेः । "वासरे वा निशायां वा यत्र स्वल्पापि रोहिणी । विशेषेण नभोमासे सैवोपोष्या मनीषिभिः" इति पुराणान्तराच्च । विशेषेणेति श्रुतेर्भाद्रपदेऽपीदम् । 'श्रावणे वा नभस्ये भवेद्ध्रुवम्' इति वक्ष्यमाणात् ॥ गौडास्तु-निशीथ एव रोहिणीयोगे जयन्ती नान्यथेत्याहुः ॥ तन्न । 'वासरे निशायाम्' इति विरोधात् ॥ योगविशेषाद्गुणात् फलमित्यन्ये । तेऽप्यकरणे दोषश्रुतेरुपेक्ष्याः ॥ तत्र व्रतनिर्णयः । तत्र जन्माष्टमीव्रतं नित्यं पूर्वोक्तवचनेषु अकरणे निन्दाश्रुतेः । "वर्षेवर्षे तु या नारी कृष्णजन्माष्टमीव्रतम् । न करोति महाप्राज्ञ व्याली भवति कानने" इति स्कान्दे वीप्साश्रुतेश्च । 'न करोति नरो यस्तु' इति पूर्वमुक्तेरत्र स्त्रीलिंगमतन्त्रम् । मदनरत्ने स्कान्दे त्वत्र फलमप्युक्तम् । "जन्माष्टमीव्रतं ये वै प्रकुर्वन्ति नरोत्तमाः । कारयन्त्यथवा लोकाँल्लक्ष्मीस्तेषां सदा स्थिरा ॥ सिध्यन्ति

लिखी है, इसमें ज्योतिआदिके तुल्य संज्ञासे कर्मका भेद है, रोहिणीका योग रातदिनमें मुख्य, अर्द्धरात्रिमें मध्यम और केवल दिनमें अधम होता है, कारण कि, वसिष्ठसंहिताका वाक्य है कि, यदि इस अष्टमी और रोहिणीका योग अहोरात्रमें पूर्ण न हो तो मुहूर्तमात्र भी अहोरात्रके योगमें उसका व्रत करे । विष्णुधर्मका यह वाक्य है कि, चन्द्रोदयके समय अर्द्धरात्रमें रोहिणीके योगमें सावधान और शुद्धिसे स्नान करके पूजामें प्रवृत्त हो (लगे) पुराणांतरका भी वाक्य है कि, दिनमें वा रात्रिमें अल्प भी रोहिणी हो तो बुद्धिमान् मनुष्य श्रावणमासमें उसीका व्रत करे इस वाक्यमें 'विशेषण' इस पदसे भाद्रपदमें भी यह होती है कारण कि, आगे श्रावण वा भाद्रपद दोनोंमें लिखेंगे, गौड तो यह लिखते हैं कि, अर्धरात्रिके समय ही रोहिणीके योगमें जयन्ती होती है और तरह नहीं यह कथन करते हैं सो उचित नहीं, कारण कि, दिनमें हो वा रात्रिमें हो इस वाक्यका उसमें विरोध है योगविशेषके गुणसे फल होता है यह और कोई कहते हैं, न करनेमें दोष सुना है इससे वे भी वर्जने योग्य हैं । इसमें जन्माष्टमी व्रत नित्य है कारण कि, पूर्वोक्त कथनोंसे न करनेमें निन्दा सुनी जाती है और स्कन्दपुराणके इस वाक्यमें वीप्सा (दो बार पढ़ना) सुननेसे भी यह व्रत नित्य है कि, जो नारी साल सालमें इस जन्माष्टमीको नहीं करती वह हे महाप्राज्ञ ! वनकी सर्पिणी होती है इस वाक्यमें नारी यह स्त्रीलिंग अविवक्षित है, कारण कि, पहले जो नर नहीं करता इस वाक्यमें पुरुषको भी नित्य लिखा है, मदनरत्नमें स्कन्दपुराणके वाक्यसे इसका फल भी लिखा है कि, जो मनुष्योंमें श्रेष्ठ जन्माष्टमी व्रतको करते वा कराते हैं, उनके यहां निरन्तर लक्ष्मी स्थिर रहती है और इस व्रतके करनेसे सब ही कार्य सिद्ध होते हैं ।

सर्वकार्याणि कृते जन्माष्टमीव्रते " इति ॥ जयन्तीव्रतं तु नित्यं काम्यं च । "महाजयार्थं कुरुतां जयन्तीं मुक्तयेऽनघ ।धर्ममर्थं च कामं च मोक्षं च मुनिपुङ्गव ॥ ददाति वाञ्छितानर्थान् ये चान्येऽप्यतिदुर्लभाः " इति स्कान्दादौ फलश्रुतेः ॥ "शूद्रान्नेन तु यत्पापं शवहस्तस्य भोजने । तत्पापं लभते कुन्ति जयन्तीविमुखो नरः ॥ न करोति यदा विष्णोर्जयन्तीसंभवं व्रतम् । यमस्य वशमापन्नः सहते नारकीं व्यथाम् ॥ २ ॥ " इत्यकरणे निन्दाश्रुतेश्च । यदा च पूर्वेद्युः परेद्युर्वा रोहिणीयोगस्तदा जन्माष्टमी जयन्त्यामन्तर्भूता ज्ञेया । न तु जन्माष्टमीव्रतं पृथक्कार्यम् । विष्णुशृंखलवत् । तदुक्तं माधवेनैव–"यस्मिन्वर्षे जयन्त्याख्यो योगो जन्माष्टमी तदा । अन्तर्भूता जयन्त्यां स्यादृक्षयोगप्रशस्तितः" इति ॥ मदनरत्ननिर्णयामृतगौडमैथिलमतेऽप्येवम् । हेमाद्रिस्तु–"रोहिणीसंयुतोपोष्या सर्वाघौघविनाशनी । अर्धरात्रादधश्चोर्ध्वं कलया वा यदा भवेत् ॥ जयन्ती नाम सा प्रोक्ता सर्वपापप्रणाशिनी " इत्यग्निपुराणादर्धरात्र एव रोहिणीयोगस्य प्राशस्त्यात् मुहूर्तमपि लभ्येतेत्यादीनां चार्धरात्रयोगेऽप्युपपत्तेर्न जयन्तीव्रतं भिन्नम् । तत्त्वं तु हेमाद्रिमतेऽपि जयन्तीव्रतं भिन्नमेव । 'उदये चाष्टमी' इत्यस्य तेन जयन्तीपरत्वोक्तेः ॥ किं च " रोहिण्यामर्धरात्रे च यदा कृष्णाष्टमी भवेत् । तस्यामभ्यर्चनं शौरेर्हन्ति पापं

जयंतीका व्रत तो नित्य है और काम्य है कारण कि, स्कंदपुराण आदिमें इसका यह फल श्रवण किया है कि, महाजय, मुक्ति, धर्म, काम, मोक्षके निमित्त जयन्ती व्रतको जो करते हैं उनके अत्यन्त दुर्लभ भी वांछित अर्थ इस व्रतके करनेसे सफल होते हैं और न करनेमें यह निन्दा भी श्रवण की है कि, जो मनुष्य जयंतीसे विमुख हुआ, विष्णुके जयंतीव्रतको नहीं करता हे कुंती ! उसको वह पाप लगता है जो शूद्रान्नके और मुर्देके हाथके भोजनसे होता है और यमराजके वश होकर वह नरकके दुःखोंको प्राप्त होता है । अब प्रथम वा अगले दिन रोहिणीका योग होजाय तब जन्माष्टमी भी जयन्तीके मध्यमें आजाती है तब जन्माष्टमीका व्रत पृथक् विष्णुशृंखलाके तुल्य नहीं करना सोई माधवने लिखा है कि, जिस वर्ष जयन्तीका योग जन्माष्टमीमें हो तब जन्माष्टमी जयन्तीमें अन्तर्भूत नक्षत्रके योगकी प्रशंसामें जाननी चाहिये । मदनरत्न निर्णयामृत ग्रन्थोंमें गौड मैथिलोंके मतमें भी इसी प्रकार लिखा है, हेमाद्रि तो रोहिणीसे युक्त सब पापसमूहके नाश करनेवाली जन्माष्टमी व्रतके योग्य कहते हैं, चाहे आधीरातसे प्रथम वा पीछे एक घड़ी हो वह जयन्ती सब पाप नाश करनेवाली कही है, इस अग्निपुराणके कथनसे आधीरात्रिके समय ही रोहिणीयोगकी प्रशंसासे पूर्वोक्त मुहूर्त मात्र भी रोहिणी मिले तो इत्यादि वाक्योंको अर्द्धरात्रके योगमें भी चरितार्थ होनेसे जयन्तीव्रत पृथक् नहीं है। सिद्धान्त तो यह है कि, हेमाद्रिके मतमें जयन्तीव्रत पृथक् है। कारण कि, हेमाद्रिने उदयमें अष्टमी हो इस पूर्वोक्त वाक्यको जयन्तीव्रतके विषयमें वर्णन किया है और विष्णुधर्ममें यह लिखा है कि, आधीरातके समय रोहिणीमें यदि अष्टमी होजाय तो उसमें कृष्णका

त्रिजन्मजम् " इति विष्णुधर्मोक्तेः । "समायोगे तु रोहिण्यां निशीथे राजसत्तम । समजायत गोविन्दो बालरूपी चतुर्भुजः ॥ तस्मात्तं पूजयेत्तत्र यथावित्तानुरूपतः " इति वह्निपुराणाच्चार्द्धरात्रस्य कर्मकालत्वमवसीयते ॥ अतः ' कर्मणो यस्य यः कालः ' इत्यादिवचनात् पूर्वत्रैव प्राप्तेः परदिने सतोऽपि रोहिणीयोगस्य न प्रयोजकत्वम् । अन्यथा बुधवारादेरपि तत्त्वापत्तेः । किं च । 'जयन्तीशब्दो रात्रिविशेषवचनः । " अभिजिन्नाम नक्षत्रं जयन्ती नाम शर्वरी । मुहूर्तो विजयो नाम यत्र जातो जनार्दनः" इति ब्रह्माण्डपुराणात् । तेन तद्योगिरोहिण्यां गौणत्वान्न व्रतभेदः । यत्तु-'वासरे वा निशायां वा' इति तत्कैमुतिकन्यायेन निशीथयोगस्यैव स्तुत्यर्थं पूर्वदिनेऽर्धरात्रयोगाभावे प्राशस्त्यार्थम् । यद्यपि-" दिवा वा यदि वा रात्रौ नास्ति चेद्रोहिणीकला । रात्रियुक्तां प्रकुर्वीत विशेषेणेन्दुसंयुताम् " इत्यनेन रोहिणीयोगाभावेऽर्धरात्रव्याप्तेर्ग्राह्यतोक्ता तथापि यस्मिन् वर्षे जयन्तीयोगो नास्ति । तत्र जयन्तीव्रतलोपे प्राप्ते अष्टमीमात्रेऽपि जयन्तीव्रतं कार्यम् । इत्येवंपरमिति तदाशयः । अत्र हि-" सत्रायापूर्य विश्वजिता यजेत । एषामसंभवे कुर्यादिष्टिं वैश्वानरीं द्विजः" इतिवद्रोहिणीयोगाभावे विधानात्तत्कार्यापत्तिः स्यात् ॥ अत एवोक्तम् । ' जयन्ती नाम शर्वरी' इति । यच्च स्कांदे-" उदये चाष्टमी किंचिन्नवमी

पूजन करनेसे तीन जन्मके पाप दूर होते हैं । अग्निपुराणमें लिखा है कि, हे राजाओंमें श्रेष्ठ ! आधीरातमें रोहिणीके योगमें बालरूपी चतुर्भुजी गोविन्द उत्पन्न हुए इससे उस समय अपने धनके अनुसार गोविन्दका पूजन करे इस वाक्यसे भी आधीरातमें कर्मका काल प्रतीत होता है ॥ इससे जो जिस कर्मका काल उसमें ही उनको करना इत्यादि वाक्यसे प्रथम दिन प्राप्त हो तो रोहिणीमें परदिनमें रोहिणीका योग कुछ प्रयोजक नहीं है, अन्यथा बुधवार आदि भी प्रयोजक हो जायँगे और जयंतीशब्द रात्रिके शेषका कहनेवाला है. कारण कि, हेमाद्रिमें ब्रह्माण्डपुराणका कथन है कि, अभिजित् नाम नक्षत्र और जयन्ती नाम रात्रि, विजय नाम मुहूर्त है, इसमें कृष्णचन्द्र प्रगट हुए, इससे अष्टमीके योगवाली रोहिणीमें गौण होनेसे व्रतका भेद नहीं है और दिनमें वा रात्रिमें रोहिणी हो यह पूर्वोक्त वाक्य कैमुतिकन्यायसे आधीरातमें योगकी प्रशंसाके निमित्त है अथवा पहले दिन अर्द्धरात्रमें योग न हो तो अगले दिन उसकी स्तुतिके निमित्त है. और तो यह कहते हैं कि, यद्यपि दिनमें वा रात्रिमें रोहिणीकी कला न हो तो चन्द्रोदयसे युक्त और रात्रिमें जन्माष्टमीयुक्त व्रतको विशेषकर करना चाहिये, इस वाक्यसे रोहिणीयोग न हो तो अर्द्धरात्रव्यापिनी अष्टमी ग्रहण करनी लिखी है, तथापि जिस वर्षमें जयन्ती योग नहीं उसम जयन्ती व्रतका लोप न होजाय इससे अष्टमीमात्रमें भी जयन्तीव्रत करना यही उसका आशय है । यह परपक्षकी निन्दा करके विश्वजित् यज्ञ करे, वह न होसके तो द्विज वैश्वानरी यज्ञ करे इसके समान रोहिणीयोगके अभावमें उसकी विधिसे उसका करना ही स्पष्ट है, इसी कारण प्रथम जन्माष्टमीको जयन्तीनाम रात्रि लिखी है और जो स्कन्दपुराणमें कहा है कि, उदयमें कुछ भी अष्टमी हो और सम्पूर्ण दिन नवमी हो बुधवार और रोहिणी

सकला यदि । भवते बुधसंयुक्ता प्राजापत्यर्क्षसंयुता ॥ अपि वर्षशतेनापि लभ्यते वाथवा न वा" इति ॥ यत्र पाद्मे-" प्रेतयोनिगतानां तु प्रेतत्वं नाशितं तु तैः । यैः कृता श्रावणे मासि अष्टमी रोहिणीयुता । किं पुनर्बुधवारेण· सोमेनापि विशेषतः । किं पुनर्नवमीयुक्ता कुलकोटयास्तु मुक्तिदा" ॥२ ॥ इति । तद्दानादिविषयम् उपवासाश्रवणादित्यनन्तभट्टः । जयन्तीपरमिति हेमाद्रिः । उदये चन्द्रोदय इति केचित् । तन्न । चंद्रोदयसत्त्वसंदेहात् ' नवमी सकला' इत्ययोगान्मानाभावाच्च । तेन पूर्वेद्युः सप्तमीवेधे परदिने सूर्योदये घटिकापि ग्राह्या । 'पूर्वविद्धाष्टमी' इति पाद्मोक्तेः इति युक्तम् । अतो न व्रतभेदो नाप्यन्तर्भाव इत्यूचिवान् । गौडास्तु-नवमीक्षयपरमिदं वचनम् 'नवमी सकला यदि' इति विशिष्योक्तेः । एतत्पूर्वदिने जयन्त्यभावपरमित्याहुः । जयन्त्यादिसर्वापवादोऽयमिति चूडामण्यादयः । वयं तु सत्यं व्रतभेदः । लोकास्तु जन्माष्टमीमेवानुतिष्ठन्ति ॥ जयन्तीनिर्णयः । नहि-"श्रावणे वा नभस्ये वा रोहिणीसहिताष्टमी । यदा कृष्णा नरैर्लब्धा सा जयन्तीति कीर्तिता ॥ श्रावणे न भवेद्योगो नभस्ये तु भवेद्ध्रुवम् " इति माधवीये वासिष्ठसंहितोक्तावपि भाद्रे जयन्ती केनापि क्रियते ॥ अतः पूर्वेद्युरेवोपवासः ।

नक्षत्रका योग हो ऐसी जन्माष्टमी सौ १०० वर्षमें मिले वा न मिले अर्थात् महा उत्तम है और जो पद्मपुराणमें कहा है कि, जिन्होंने श्रावणमें रोहिणी बुधवार और सोमवारयुक्त अथवा कोटिकुलोंकी मुक्ति देनेवाली नवमीयुक्त जन्माष्टमीका व्रत किया है वे प्रेतयोनिको प्राप्त हुए अपने पितरोंको भी प्रेतयोनिसे मुक्त करते हैं । यह पद्मपुराणके वाक्य दान आदिके विषयमें जानना कारण कि, इनमें व्रतपद नहीं लिखा है, यह अनन्तभट्टका कथन है । और हेमाद्रिका तो यह कथन है कि, यह वचन जयन्तीके विषयमें ह, किन्हींका यह कथन है कि, उदयके समय चन्द्रोदय हो सो ठीक नहीं चन्द्रोदयके होनेपर असन्देहसे सम्पूर्ण नवमीका दिनमें होना अयुक्त है और इसमें प्रमाण नहीं है, इस कारण प्रथम दिन सप्तमीका वेध होनेपर परदिनमें सूर्योदयमें घडी भर भी ग्रहण करनेयोग्य है, और पद्मपुराणमें सप्तमीविद्धा अष्टमी लिखी है, इससे न व्रतका भेद है और न जन्माष्टमीमें जयन्तीका अन्तर्भाव है । गौडोंका तो यह कथन है कि, नवमीके क्षय हो जानेपर ऐसा लिखा है कारण कि, जो संपूर्ण नवमी हो यह विशेष लिखा है, इससे प्रथम दिन जयन्तीके अभावमें ही पूर्वोक्त वाक्य है और आचार्यचूडामणि आदिका यह कथन है कि, जयन्ती आदि सम्पूर्ण व्रतोंका निषेधक यह वाक्य है । हमारा तो यह कथन है कि, यह बात सत्य है, कि व्रतभेद है, परन्तु मनुष्य तो जन्माष्टमी व्रतको करते हैं । और श्रावण वा भाद्रपदमें रोहिणीयुक्त कृष्णपक्षकी अष्टमी मिले तो उसका नाम जयन्ती लिखा है, श्रावणमें योग न हो तो भाद्रपदमें निश्चय होगा इस माधवग्रन्थमें वसिष्ठसंहिताकी लिखी हुई भाद्रपदकी

यद्वा गुणात्फलम् ॥ 'सप्तमे ब्रह्मवर्चसकाममुपनयेत्' इतिवादित्यन्ये ॥ तन्न । नित्यत्वानुपपत्तेः । अत्र गौणमुख्यचान्द्राभ्यामेक एव मास इत्यन्ये ॥ तन्न । एकवाक्ये उभयनिर्देशे वा शब्दद्वयायोगात्॥अतो जयन्तीव्रतस्यापि नित्यत्वादुपवास-द्वयं कार्यमिति ब्रूमः ॥ अत एव हेमाद्रिमदनरत्नादौ जन्माष्टमीव्रतं जयन्तीव्रतं च भिन्नमुक्तम् ॥ भिन्नकालत्वात्सर्वथा तावदन्तर्भावो नेति सिद्धम् ॥ यदपि पूर्वा परा वाल्पापि रोहिणीयुतैव कार्येति ग्रन्थानां तत्त्वं प्रतीयते तदपि जयन्तीपरमेव । इदं च काम्यमेवेत्यनन्तभट्टः तद्दूषणं हेमाद्रौ ज्ञेयम् । नित्यं काम्यमिति तु बहवः । ननु यथा विष्णुश्रृंखलयोगेन श्रवणद्वादशीवामनजयंन्त्यादिसर्वसिद्धिः । तथा वैकादशी स्वल्पापि परा । तथा-"कलाकाष्ठामुहूर्तापि यदा कृष्णाष्टमी तिथिः । नवम्यां सैव ग्राह्या स्यात्सप्तमीसंयुता नहि ॥ " इत्यादिवचनादर्धोदयादिवद्योगाधिक्ये फलाधिक्यात् परैव जन्माष्टमी युक्तेति चेत् वार्तामात्थ नहि तत्र व्रतभेदो द्वयोर्नित्यत्वं द्वयोरकरणे दोषो वा श्रुतः । इह त्वेतैस्त्रिभिर्हेतुभिः संज्ञाभेदाद्धर्मभेदात्कालभेदाच्चोपवासभेदः स्पष्ट एव ॥ एकदैवत्वाच्छ्रवणद्वादशीवन्न

जयन्तीको कोई नहीं करता और इससे पूर्वदिनमें ही उपवास करे अथवा ब्रह्मतेजकी कामनावाला सातवें वर्षमें बालकका यज्ञोपवीत करे अथवा ब्रह्मतेजकी कामना वा सातवें वर्षमें बालकका यज्ञोपवीत करे, इसके तुल्यगुणसे फल प्राप्त होता है इसी प्रकार यह वाक्य समझना यह दूसरे कहते हैं सो योग्य नहीं, कारण कि, यह व्रत नित्य न होगा यहां गौण और मुख्य चांद्रमासोंसे एक ही मास दो महीनेका है, यह दूसरोंका कथन है, सो ठीक नहीं. एक वाक्यतासे दोका बोध होना तो दोवार शब्दोंका पढ़ना अयुक्त था, इससें जयन्तीव्रतको भी नित्य होनेसे दो व्रत करने चाहिये । यह हमारा निश्चय है इसीसे हेमाद्रि और मदनरत्न आदिमें जयन्ती और जन्माष्टमीका व्रत पृथक् २ लिखा है और पृथक् समय होनेसे उसका सर्वथा अन्तर्भाव नहीं होसकता, यह बात सिद्ध हुई । यद्यपि पहली वा पिछली अष्टमी रोहिणीयुक्त ही करनी यही ग्रन्थोंका आशय विदित होता है वह भी जयन्तीके विषयमें जानना चाहिये और अनन्तभट्टने तो इस व्रतको काम्य ही लिखा है उसके दूषण हेमाद्रिमें लिखे हैं और इस व्रतको नित्य और काम्य तो बहुत कहते हैं. कोई शंका करते हैं कि, जैसे विष्णुश्रृंखल योगसे श्रावणद्वादशी वामनजयन्ती आदि सबकी सिद्धि होती है और थोड़ी भी एकादशी पर मानी जाती है. इसी प्रकार घड़ी, क्षण, मुहूर्त भी कृष्णाष्टमी तिथि नवमीयुक्त हो तो वही ग्रहण करनी चाहिये । सप्तमी युक्त नहीं इत्यादि वाक्यमें अर्द्धोदय योगके समान फल अधिक होता है, इससे प्रथम ही जन्माष्टमी युक्त है यह उनका कहना ठीक है, परन्तु यहां व्रतका भेद दोनोंको नित्य वा न करनेमें दोष यह श्रवण नहीं किये है, यहां तो संज्ञाभेद, धर्मभेद, फलभेद इन तीनों कारणोंसे व्रतका भेद स्पष्ट ही

पारणालोपदोषोऽपि। तेन व्रतद्वयमेव युक्तम्। द्वयोरपि नित्यत्वात्॥ केचित्तु "त्रेतायां द्वापरे चैव राजन् कृतयुगे तथा। रोहिणीसहिता चेयं विद्वद्भिः समुपोषिता॥ अतः परं महीपाल संप्राप्ते तामसे कलौ। जन्मना वासुदेवस्य भविता व्रतमुत्तमम्॥ २॥" इति हेमाद्रौ वह्निपुराणात् कलौ जन्माष्टमीव्रतमेव, न जयन्तीव्रतमित्याहुः। तन्न॥ 'तामसे कलौ' इत्युक्तेः परमश्रेयोहेतोरस्य कलौ पापिनां दुर्लभत्वमुच्यते॥ तेन कलौ तामसा न करिष्यन्ति। किं तु धन्या एवेत्यर्थः। अन्यथा–'शूद्राश्च ब्राह्मणाचारा भाविष्यंति कलौ युगे' इत्यादौ विधिकल्पनापत्तेः। अत्र निशीथवेध एव ग्राह्यः। पूर्वोक्तवचनेषु तस्यैव मुख्यकालत्वोक्तेः॥ "अष्टमी शिवरात्रिश्च ह्यर्धरात्रादधो यदि। दृश्यते घटिका या सा पूर्वविद्धा प्रकीर्तिता" इति माधवीये पुराणान्तरात्। "अर्धरात्रे तु रोहिण्यां यदा कृष्णाष्टमी भवेत्। तस्यामभ्यर्चनं शौरेर्हन्ति पापं त्रिजन्मजम्॥" इति भविष्योक्तेः। "अष्टमी रोहिणीयुक्ता निश्यर्धे दृश्यते यदि। मुख्यकाल इति ख्यातस्तत्र जातो हरिः स्वयम्॥" इति वसिष्ठसंहितोक्तेश्च। तन्न। तत्राष्टमी द्वेधा रोहिणीरहिता तद्युता च। आद्यापि चतुर्धा, पूर्वेद्युरेव निशीथयोगिनी परेद्युरेवोभयद्युरनुभयेद्युश्चेति। तत्राद्य-

---

है और दोनों व्रतोंके एक देवता होनेसे श्रवणद्वादशीके तुल्य पारणाके लोपका दोष भी नहीं इससे दोही व्रत युक्त हैं और दोनोंकी ही नित्य प्राप्ति है. कोई यह कहते हैं कि, इस हेमाद्रिमें वह्निपुराणके इस वाक्यसे कि,हे राजन्! त्रेता, द्वापर, सतयुगमें रोहिणीसहित अष्टमीमें ही विद्वानोंने व्रत किया, हे महीपति! इसके आगे तामस कलियुगके आनेपर भी वासुदेवके जन्मका उत्तम व्रत होगा, इससे कलियुगमें जन्माष्टमीव्रत है जयंतीव्रत नहीं है, सो कहना किसी प्रकार ठीक नहीं हैं. 'तामसे कलौ' यह कहनेसे कलियुगमें परमकल्याणका हेतु यह व्रत पापियोंको महाकठिन है, यह बात इससे कही, इससे कलियुगमें तमोगुणी न करेंगे और महात्मा मनुष्य करेंगे यह इसका अर्थ है। अन्यथा शूद्र भी कलियुगमें ब्राह्मणोंके समान आचरण करनेवाले हो जायँगे इत्यादिमें भी विधिकी कल्पना करनी पड़ेगी, इस व्रतमें आधीरातका वेधही ग्रहण करना चाहिये। कारण कि, पूर्वोक्त वाक्योंमें वही मुख्य समय कहा है। माधवीयमें किसी पुराणका यह वाक्य भी लिखा है कि, अष्टमी वा शिवरात्रि आधीरात्रिसे प्रथम घड़ीभर ही दीखे तो पूर्वविद्धा कही है. भविष्यपुराणमें लिखा है कि, यदि कृष्णपक्षकी अष्टमीको आधीरातके समय रोहिणी हो तो उसमें कृष्णका पूजन करनेसे तीन जन्मके पाप दूर होते हैं. और वसिष्ठसंहितामें लिखा है कि, यदि रोहिणीयुक्त अष्टमी आधीरातको हो तो वही मुख्यकाल कहा है कारण कि, हरि उसमें स्वयं प्रगट हुए हैं। उसमें अष्टमी दो प्रकारकी है, रोहिणीयुक्त और रोहिणीसे रहित, पहली चार प्रकारकी है, १ पहले दिन जो आधीरातमें हो, २ अगले दिन हो. ३

योरसन्देह एव कर्मकालव्याप्तेः । "जन्माष्टमी रोहिणी च शिवरात्रिस्तथैव च । पूर्वविद्धैव कर्त्तव्या तिथिभान्ते च पारणम्" इति भृगूक्तेश्च ॥ अस्मात्केवलरोहिण्युपवासोऽपि सिद्धः । अन्त्ययोः परैव । प्रातः संकल्पकालव्याप्तेराधिक्यात् । 'वर्जनीया प्रयत्नेन सप्तमीसंयुताष्टमी' इति ब्रह्मवैवर्त्ताच्च । एवमंशतः समव्याप्तावपि ॥ विषमव्याप्तौ त्वाधिक्येन निर्णयः । रोहिणीयुतापि चतुर्धा—पूर्वेद्युरेव निशीथे रोहिणीयुता परेद्युरेवोभयेद्युरनुभयेद्युश्च । अत्राप्याद्ययोरसंदेहः 'कार्या विद्धापि सप्तम्या रोहिणीसहिताष्टमी' इति पाद्मोक्तेः ॥ 'जयन्त्यां पूर्वविद्धायामुपवासं समाचरेत्' इति गारुडाच्च । "सप्तमीसहिताष्टम्यां निशीथे रोहिणी यदि । भविता साष्टमी पुण्या यावच्चन्द्रदिवाकरौ" इति वह्निपुराणाश्च ॥ द्वितीये त्वसन्देह एव । तृतीयपक्षे परैव । "वर्जनीया प्रयत्नेन सप्तमीसंयुताष्टमी । सऋक्षापि न कर्तव्या सप्तमीसंयुताष्टमी" इति ब्रह्मवैवर्तात् । चतुर्थ्यपि त्रेधा—'पूर्वेद्युर्निशीथेऽष्टमी परेऽह्नि रोहिणी परेऽह्न्यष्टमी पूर्वेऽह्नि रोहिणी ॥ उभयेद्युरुभयस्य निशीथसम्बन्धो वा इति ॥ आद्ये परेद्युर्जयन्तीयोगस्य सत्त्वात् परैवेति माधवः ॥ तदुक्तं तत्रैव—"यस्मिन्वर्षे जयन्त्याख्ययोगो जन्माष्टमी तदा । अन्तर्भूता जयन्त्यां स्या-

---

दोनों दिन आधीरातमें हो, ४ दोनों दिन अर्धरात्रमें न हो, इन चारोंमें प्रथम दोनोंमें कर्मकालव्यापिनी होनेसे सन्देह नहीं कारण कि, भृगुने लिखा है कि, जन्माष्टमी, रोहिणी, शिवरात्रि यह पूर्वतिथिसे विद्धा ही करनी चाहिये, तिथि और नक्षत्रके अन्तमें पारणा करनी इस वाक्यसे रोहिणीका व्रत ही विद्ध है । पिछली दोनोंमें पहली ही ग्रहण करनी चाहिये, कारण कि, उसमें प्रातःकाल संकल्पकालव्यापिनी है । ब्रह्मवैवर्तपुराणमें लिखा है कि, सप्तमीसंयुक्त अष्टमी प्रयत्नसे त्याग देनी इस प्रकार अंशसे समानव्यापिनी हो तो कुछ डर नहीं. न्यूनाधिक व्यापिनी हो तो अधिक व्याप्तिसे निर्णय करना चाहिये । रोहिणीसे युक्त भी चार प्रकारकी है. १ पहले दिन अर्ध रात्रिमें रोहिणीसे युक्त, २ अगले दिन, ३ वा दोनों दिन आधीरातमें रोहिणीसे युक्त, ४ वा दोनों दिन रोहिणीसे संयुक्त, इनमें भी पहली दोमें संदेह नहीं कारण कि, पद्मपुराणमें लिखा है कि, सप्तमी विद्धा भी अष्टमी रोहिणीयुक्त करनी चाहिये, गरुड़पुराणमें लिखा है कि, पूर्वविद्धा जन्माष्टमीमें व्रत करे । वह्निपुराणमें लिखा है कि, सप्तमीयुक्त अष्टमीको आधीरातमें रोहिणी हो तो वह अष्टमी तबतक पवित्र है जबतक सूर्य चन्द्रमा हैं, दूसरे व्रतमें कुछ संदेह नहीं । तीसरे पक्षमें अगली लेनी कारण कि, परदिनमें यत्नसे सप्तमीयुक्त अष्टमीको त्याग दे. ब्रह्मवैवर्तमें लिखा है कि, रोहिणीयुक्त भी सप्तमीसे युक्त अष्टमीको न करना चाहिये, चौथे भी तीन प्रकारकी है १ पहले दिनसे आधीरातमें अष्टमी परदिनमें रोहिणी, २ अष्टमी परदिनमें पूर्वदिन रोहिणी, ३ दोनों दिन अष्टमी और रोहिणी दोनों आधी रातमें न हो, पहिलीमें परदिनमें जयंतीयोग होनेसे अगली होती है यह माधवका कथन है. माधवने कहा है कि, जिस वर्षमें

क्षयोगप्रशस्तितः" इति ॥ "पूर्वविद्धाष्टमी या तु उदये नवमीदिने। मुहूर्तमपि संयुक्ता सम्पूर्णा साष्टमी भवेत् ॥ कलाकाष्ठामुहूर्तापि यदा कृष्णाष्टमीतिथिः। नवम्यां सैव ग्राह्या स्यात्सप्तमीसंयुता नहि" ॥ २ ॥ इति पाद्मोक्तेश्च ॥ हेमाद्रिस्त्वाह–अष्टम्याः प्राधान्यात्तस्याश्च पूर्वेद्युः कर्मकालव्यापित्वात् पूर्वैव। पाद्मं तु पूर्वेऽह्नि निशीथेऽष्टम्यभावे ज्ञेयम्। अन्तर्भावोक्तिस्तु मूर्खवन्दभ्रणामात्रमिति ॥ अन्ये तु पूर्वविद्धाष्टमीवाक्येन जन्माष्टम्यां सूर्योदये सप्तमीवेधनिषेधात्। कलाघटीमात्राप्यौदयिकी ग्राह्या। 'कार्या विद्धापि सप्तम्या' इति जयन्तीपरम्। 'जयन्त्यां पूर्वविद्धायामुपवासं समाचरेत्' इत्येकवाक्यत्वात्। तत्रापि द्वयोर्नित्यत्वात्कालभेदाच्चोपवासद्वयं भवत्येव। यदा तु केवलाष्टमी शुद्धाधिका तदा त्यागहेतोः सप्तमीवेधस्याभावात् पूर्वैव। यदि वा विद्धन्यूना तदा परदिने ग्राह्यतिथेरभावात् पूर्वैव। एवं सर्वाण्यौदयिकवाक्यानि सप्तमीवेधपराणि। "जन्माष्टमी पूर्वविद्धां सऋक्षां सकलामपि। विहाय नवमीं शुद्धामुपोष्या व्रतमाचरेत्" इति व्यासोक्तेर्विद्धायाः क्षये शुद्धनवम्यामुपवासः। दशमीवेधे द्वादश्युपवासवदित्याहुः ॥ ते निर्मूलत्वादुपेक्ष्याः। 'मुहूर्तमपि संयुता' इति रोहिणीयोगे त्याज्यत्वोक्तेः। तिथ्यन्त-

---

जयन्तीयोग हो तब जन्माष्टमी जयन्तीमें अन्तर्भूत नक्षत्रके योगकी स्तुतिसे जाननी चाहिये। पद्मपुराणमें लिखा है कि, यदि पूर्वविद्धा अष्टमी नवमीके उदयकालमें मुहूर्तमात्र भी हो तो वह सम्पूर्ण अष्टमी होती है। घड़ी, कला मुहूर्त्त मात्र भी कृष्णाष्टमी नवमीसे युक्त स्वीकार करनी, सप्तमीयुक्त न लेनी। कोई तो यह कहते है कि, ऐसा पद्मपुराणमें लिखा है। हेमाद्रिमें अष्टमीकी प्रधानतासे और उसके पहले दिन कर्मकालव्यापिनी होनेसे पहली ही ग्रहण करनी। पद्मपुराणका कथन तो उस काल मानना जो प्रथम दिन आधीरातमें अष्टमी न हो, अन्तर्भावका कहना तो मूर्खोंका काम ही है। और तो यह कहते हैं कि, पूर्वविद्ध अष्टमी इस वाक्यमें जन्माष्टमीको सूर्योदयके समय सप्तमीवेधका निषेध कहा है, कला घड़ी मात्र भी उदयकालकी अष्टमी लेनी और सप्तमीविद्धा भी जन्माष्टमी करनी यह वाक्य जयन्तीके विषयमें जानने। कारण कि, इस वाक्यके साथ इसकी एकवाक्यता है कि, पूर्वविद्धा जयन्तीमें व्रत करे। इससे दोनोंके नित्य होनेसे और कालभेद होनेसे दो ही व्रत होंगे और जब केवल अष्टमी शुद्ध हो वा अधिक हो तो सब त्यागके कारण वेधके अभावसे प्रथम ही करनी और विद्धासे न्यून हो तो अगली ही करनी और अष्टमी तिथि न हो तो अगली ही करनी. इसी प्रकार सम्पूर्ण उदयकालके वाक्य सप्तमीवेधके विषयमें जानने और जो यह कहते हैं कि, सप्तमीसे विद्धा और रोहिणीसे युक्त और सम्पूर्ण अष्टमीको त्यागकर शुद्ध नवमीको व्रत करे, इस व्यासके वाक्यसे विद्धा अष्टमीके क्षयमें दशमीसे विद्धा एकादशीके समान शुद्ध नवमीको व्रतका कथन है। उनका यह कथन अमूलक होनेसे त्यागने योग्य है कारण कि, मुहूर्तमात्र भी संयुक्त हो इस वाक्यसे रोहिणी योगमें ही त्याग लिखा है

पारणवाक्यानां निर्विषयत्वापत्तेः। न च जयन्तीपराणि शुद्धाधिकापराणि वा तानि। भृग्वाद्यैः पूर्वविद्धाष्टम्यामपि तिथ्यन्ते पारणोक्तेः। तेन 'कलाकाष्ठा' इति वाक्यान्तरवशाज्जयन्तीपरमेतत्। तत्त्वं तु अष्टम्याः कर्मकालव्याप्तेः। "दिवा वा यदि वा रात्रौ नास्ति चेद्रोहिणीकला। रात्रियुक्तां प्रकुर्वीत विशेषेणेन्दुसंयुताम्" इति पूर्वोक्तवाक्ये रोहिणीयोगाभावे ग्राह्यत्वोक्तेर्वचनात् कर्मकालव्यापिनीं त्यक्त्वा पूर्वापरा वाल्पापि रोहिणीयुता ग्राह्या। माधवमदनरत्नानिर्णयामृतानन्तभट्टगौड-मैथिलग्रन्थादिष्वप्येवमिति॥ युक्तं तु उपवासद्वयं कार्यम्। द्वयोर्नित्यत्वादिति तु वयम्॥ अन्त्ययोः परैव। "सप्तमीसंयुताष्टम्यां भूत्वा ऋक्षं द्विजोत्तम। प्राजापत्यं द्वितीयेऽह्नि मुहूर्तार्द्धं भवेद्यदि॥ तदाष्टयामिकं पुण्यं प्रोक्तं व्यासादिभिः पुरा" इति स्कान्दात्। "मुहूर्तेनापि संयुक्ता संपूर्णा साष्टमी भवेत्। किं पुनर्नवमीयुक्ता कुलकोट्यास्तु मुक्तिदा" इति पाद्माच्चेति दिक्॥ निम्बादित्योपासकास्तु जन्माष्टमीरामनवमीशिवरात्र्यादौ पूर्वेऽह्नि कर्मकालीनां तिथिं त्यक्त्वा त्रिद्विमुहूर्ता परैव तिथिर्ग्राह्या। "उदयव्यापिनी ग्राह्या कुले तिथिरुपोषणे। निम्बार्को भगवान्येषां वांछितार्थफलप्रदः" इति॥ हेमाद्रौ मात्स्योक्तमुक्तिसप्तमीव्रते भविष्योक्तेरित्याहुः तन्न। "यदि द्वितीये दिवसे ऋक्षतिथ्योर्युतिः स्यान्न तदोपवासः। पूर्वे प्रकुर्या-

---

और तिथिके अन्तमें जो पारणाके वाक्य हैं वे भी चरितार्थ न होसकें। यदि कोई कहे कि, वे वाक्य जयन्तीके विषयमें हैं वा अधिक अष्टमीके विषयमें हैं, सो ठीक नहीं. कारण कि, भृगु आदिने पूर्वविद्धा अष्टमीमें भी तिथिके अन्तमें पारणा लिखा है इससे कला काष्ठा इस वाक्यान्तरके वशसे जयन्तीके विषयमें ही यह वाक्य जानने। तत्त्व तो यह है कि, अष्टमीको कर्मकाल व्यापिनी होनेसे दिन वा रात्रिमें जो रोहिणीके कलामात्र भी न होनेसे रातमें स्थित अष्टमीको करे, इस पिछले वाक्यमें रोहिणीयोगके अभावमें भी जन्माष्टमीको ग्रहण करना चाहिये, इस वाक्यसे कर्मकालव्यापिनीको छोड़कर पहली वा पिछली अष्टमी रोहिणी युक्त ही जयन्तीमें ग्रहण करनी चाहिये। माधव, मदनरत्न, निर्णयामृत, अनन्तभट्ट, गौड, मैथिलग्रन्थोंमें भी इसी प्रकारसे लिखा है, यथार्थ तो यह है कि, दोनोंको नित्य होनेसे दोनोंही व्रत करने। यह हमारा कथन है, अन्त्य दोनोंमें परली ही करनी चाहिये, स्कन्द और पद्मपुराणके ये वाक्य हैं कि, सप्तमी संयुक्त अष्टमीको रोहिणी नक्षत्र होकर यदि दूसरे दिन आधी मुहूर्त्त भी हो तो अष्टप्रहर तक पुण्यकाल व्यास आदिकोंने लिखा है–मुहूर्त्तमात्रसे युक्त भी अष्टमी सम्पूर्ण होती है और अनेक कुलको मुक्ति देनेवाली नवमी युक्त हो तो क्या कहना है? ऐसा पद्मपुराणमें लिखा है। निम्बादित्योपासकोंका तो यह कथन है कि, जन्माष्टमी रामनवमी शिवरात्रि आदिमें पहले दिन कर्मकालमें विद्यमान तिथिको छोड़कर दो वा तीन मुहूर्त्ततक पहले दिनकी ही लेनी। कारण

दिवसे द्वितीये दिनेशभक्तोऽथ तदा व्रताद्यम् " इति मात्स्यवाक्येन तत्रैव उपसंहारात्सर्वार्थत्वेन मानाभावात् । ऋक्षतिथ्योर्हस्तसप्तम्योः । अन्यथा ऋषिपञ्चम्यादौ तदापत्तिः । शिष्टाचारान्नेति चेत् न । तस्य न्यायवचोविरोधेन हेयत्वात् । इदानीं क्वापि निम्बार्कोपासनाभावाच्चेति संक्षेपः ॥ जन्माष्टमीपारणम् । पारणं तु-" तिथिरष्टगुणं हन्ति नक्षत्रं च चतुर्गुणम् । तस्मात्प्रयत्नतः कुर्यात्तिथिभान्ते च पारणम् " इति ब्रह्मवैवर्तात् । " तिथ्यर्क्षयोर्यदा छेदो नक्षत्रान्तमथापि वा । अर्धरात्रेऽथवा कुर्यात्पारणं त्वपरेऽहनि " इति हेमाद्रौ वचनाच्चार्धरात्रेऽप्युभयान्तेऽन्यतरान्ते वेति मुख्यः पक्षः ।'"सर्वेष्वेवोपवासेषु दिवा पारणमिष्यते । ' इति ब्रह्मवैवर्तं त्वन्यविषयम् । दिने मुख्यकाललाभेऽन्यतरान्ते वा ज्ञेयम् । गौडास्तु-" न रात्रौ पारणं कुर्यादृते वै रोहिणीव्रतात् । तत्र निश्यपि तत्कुर्याद्वर्जयित्वा महानिशाम् " इति ब्रह्माण्डपुराणाद्रात्रौ सार्धप्रहरमध्ये कार्यमित्याहुः॥ ' महानिशा तु विज्ञेया मध्यमं मध्ययामयोः । ' यथा-'मध्यमप्रहरे मात्रे विज्ञेया तु महा-

---

कि, हेमाद्रिमें कहे हुए मत्स्यपुराणोक्त सप्तमीव्रतमें भविष्यपुराणका यह कथन है कि, निम्बार्क भगवान् जिनके मनोरथ देनेवाले हैं उनके कुलमें व्रतमें उदयव्यापिनी तिथि लेनी चाहिये । यह निम्बार्कोंका कथन उचित नहीं । कारण कि, हेमाद्रिग्रन्थमें ही मत्स्यपुराणके इस कथनसे ही यह उपसंहार किया है कि, यदि दूसरे दिन नक्षत्र तिथिका योग हो तो उस व्रतको न करे, किन्तु निम्बार्कका भक्त प्रथम उत्तम दिनमें व्रत आदि करे । सर्वार्थ होनेमें कोई प्रमाण नहीं । नक्षत्र और तिथि हस्त और सप्तमी लेनी, अन्यथा ऋषिपंचमी आदिमें भी यही माना जायगा । यदि कोई कहे कि, शिष्टाचारसे नहीं माना जायगा सो उचित नहीं । कारण कि, न्याय और वाक्यके विरोधमें शिष्टाचार त्यागने योग्य है और आजकल कहीं भी निम्बार्ककी उपासना नहीं होती है । यह संक्षेपसे कहा है । पारणा तो इस ब्रह्मवैवर्तके कथनसे आठगुने पुण्यको तिथि और चौगुने पुण्यको नक्षत्र नष्ट करता है इससे तिथि और नक्षत्र दोनोंके अन्तमें प्रयत्नसे पारणा करनी चाहिये और हेमाद्रिमें भी लिखा है कि, तिथि और नक्षत्रकी जब हानि हो वा नक्षत्रका अन्त हो तो पहले दिन आधी रातमें पारणा करे, इससे आधी रातके समय दोनोंके अन्तमें वा एकके अन्तमें पारणा करे यही मुख्य पक्ष है । सब व्रतोंमें दिनमें ही पारणा श्रेष्ठ है । यह ब्रह्मवैवर्तका कथन तो जन्माष्टमी छोडकर अन्य व्रतोंके विषयमें है । अथवा दिनमें मुख्य काल न मिले तो नक्षत्र वा तिथि इनमें एकके अन्तमें पारणा करनी । गौडोंका तो यह कथन है कि,रोहिणीव्रतको छोड़कर रात्रिमें पारणा न करे। रोहिणीव्रतमें तो महानिशाको त्यागकर रात्रिमें भी पारणा करे,इस ब्रह्माण्डपुराणसे डेढ प्रहरके मध्यमें रात्रिमें करो।मध्यके दो प्रहरोंके मध्यको महानिशा वर्णन करते हैं किसी और स्मृतिमें यह लिखा है कि,

निशा ' इति स्मृत्यन्तरात् ॥ कल्पतरौ मदनरत्ने चैवम् ॥ कामधेनौ गर्गस्तु-'महानिशा तु विज्ञेया मध्यमं प्रहरद्वयम् ।' इत्याह । वृद्धशातातपस्तु-'महानिशा द्वे घटिके रात्रौ मध्यमर्यामयोः ।' इत्याह । वेदपाठपरमेतदित्यन्ये । 'महानिशाया-मन्यतरान्ते तृतीयदिने पारणम् । ' अपरेऽहनि ' इति पारणोत्तरदिनपरत्वात् । उभयान्तापेक्षणादित्याहुः । तत्त्वं तु महानिशातोऽर्वागन्यतरान्तलाभे महानिशा-निषेधः । महानिशायामेव लाभे तत्रैव पारणमिति । ' दिवोदासस्तु-"रजनीप्रहरं यावत्प्रवृत्तिः कर्मणो मता । पारणं तावदेवेष्टं प्रमादान्न भवेद्यदि ॥" इति स्कान्दा-दूर्ध्वं निषेधमाह ॥ तन्निर्मूलम् । अशक्तौ तु वह्निपुराणे-'भान्ते कुर्यात्तिथेर्वापि शस्तं भारत पारणम् ।' इति । गारुडे विष्णुधर्मे च-"जयन्त्यां पूर्वविद्धायामुपवासं समाचरेत् । तिथ्यन्ते वोत्सवान्ते वा व्रती कुर्वीत पारणम् ॥" अशक्तौ तु-"तिथ्यन्ते तिथिभान्ते वा पारणं यत्र चोदितम् । यामत्रयोर्ध्वगामिन्यां प्रातरेव हि पारणा ॥" स एवोत्सवान्त इति कालादर्शोक्तेश्चेति संक्षेपः । तत्र विशेषः । अष्टम्यां विशेषो हेमाद्रौ भविष्ये-"ततोऽष्टम्यां तिलैः स्नातो नद्यादौ विमले जले । सुदेशे शोभनं कुर्याद्देवक्याः सूतिकागृहम् ॥ तन्मध्ये प्रतिमा स्थाप्या सा चाप्य-

---

बीचका एक प्रहर महानिशा जानना । कल्पतरु और मदनरत्नमें भी इसी प्रकार लिखा है । कामधेनु ग्रन्थमें गर्गका यह कथन है कि, मध्यके दो प्रहर महानिशा कहते हैं । वृद्धशातातपका तो यह कथन है कि, रात्रिके मध्य दो प्रहरोंकी पिछली और आदिकी दो घडी महानिशा कहाती हैं। कोई इसे वेदपाठके विषयमें लिखते हैं, महानिशामें नक्षत्र और तिथि इनमें एकके उपरान्तमें तीसरे दिन पारणा करे।कारण कि, अपरेऽहनि इसमें अपरशब्द उत्तर-दिनका बोधक है और जयन्तीमें दोनोंकी अपेक्षा प्राप्त है। तत्त्व तो यह है कि, यदि महानि-शासे प्रथम दोनोंसे एकका अन्त न मिले तब महानिशाका निषेध जानना और महानिशामें अन्त मिल जाय तो उसीमें पारणा कर लेनी,यह सब जयन्तीव्रतमें है।कारण कि,उसमें नक्षत्र और तिथि इन दोनोंके योगमें व्रत होता है। जन्माष्टमी व्रतमें तो तिथिके उपरान्तमें पारणा करे। दिवोदास तो कहते हैं रात जितने प्रहर हो तबतक कर्मकी प्रवृत्ति होती है। जो प्रमाद न हो तबतक पारणा कर लेनी यह स्कन्दसे ऊर्ध्व निषेध कहा है सो निर्मूल है । अशक्तिमें वह्निपुराणमें यह कहा है कि, हे भारत ! नक्षत्र वा तिथिके अन्तमें पारणा श्रेष्ठ है, गरुड और विष्णुधर्ममें यह लिखा है कि, पूर्वाविद्धा जयन्तीमें व्रत करे । और व्रतवालोंको तिथि वा उत्सवके अन्तमें पारणा करनी चाहिये । असमर्थ हो तो तिथि वा नक्षत्रके अन्तमें पारणा जहां लिखी है वहां साढ़े तीन प्रहरतक तिथि हो तो पारणा कर ले । कारण कि, प्रातः-कालही उत्सवका अन्त है।कालादर्शमें भी यही लिखा है कि, व्रती तिथि वा उत्सवके अन्तमें पारणा करे इति संक्षेपः। अष्टमीमें यह विशेष हेमाद्रिमें भविष्यपुराणके वाक्यसे लिखा है कि,फिर अष्टमीको नदी आदिके निर्मल जलमें स्नान करके श्रेष्ठ स्थानमें देवकीका सूतिकागृह

ष्टविधा स्मृता।काञ्चनी राजती ताम्री पैत्तली मृन्मयी तथा ॥ वार्क्षी मणिमयी चैव वर्णकैर्लिखिताथ वा । सर्वलक्षणसंपूर्णा पर्यंके च पटावृते ॥ देवकीं तत्र चैकस्मिन्प्रदेशे सूतिकागृहे । प्रसुप्तां च प्रसूतां च स्थापयेन्मञ्चकोपरि ॥ मां तत्र बालकं सुप्तं पर्यंके स्तनपायिनम् । यशोदां तत्र चैकस्मिन् प्रदेशे सूतिकागृहे ॥ तद्वच्च कल्पयेत्पार्थ प्रसूतवरकन्यकाम् । कश्यपो वसुदेवोऽयमदितिश्चैव देवकी ॥ शेषो वै बलभद्रोऽयं यशोदा क्षितिरन्वभूत् । नन्दः प्रजापतिर्दक्षो गर्गश्चापि चतुर्मुखः ॥ गोर्धेनुः कुञ्जरश्चैव दानवाः शस्त्रपाणयः । लेखनीयाश्च तत्रैव कालियो यमुनाह्रदे ॥ इत्येवमादि यत्किंचिच्छक्यते चरितं मम । लेखयित्वा प्रयत्नेन पूजयेद्भक्तितत्परः॥ मन्त्रेणानेन कौन्तेय देवकीं पूजयेन्नरः ॥ गायद्भिः किन्नराद्यैः सततपरिवृता वेणुवीणानिनादैः शृङ्गारादर्शकुम्भप्रवरकृतकरैः किंकरैः सेव्यमाना । पर्यंके स्वास्तृते या मुदिततरमुखी पुत्रिणी सम्यगास्ते सा देवी देवमाता जयति सुतनया देवकी कान्तरूपा ॥ पादौ संवाहयती श्रीर्देवक्याश्चरणान्तिके । निषण्णा पंकजे पूज्या नमो देव्यै श्रियै इति ॥ अर्धरात्रे वसोर्धारां पातयेद्गुडसर्पिषा । नाडीवर्धापनं

कल्पित करे, उसके मध्यमें प्रतिमाको स्थापन करे वह प्रतिमा आठ प्रकारकी लिखी है कि, सुवर्ण, चांदी, तांबा, पीतल, मट्टी, वृक्ष और मणि इनकी अथवा रंगोंसे लिखी गयी सब लक्षणोंसे पूर्ण उस प्रतिमाको कपडोंसे ढके हुए पलंगपर रक्खे और एक स्थानमें शय्यापर ऐसी देवकीको स्थापन करे, जिसके स्तनोंसे दूध टपकता हो और जिसके प्रसव हुआ हो और स्तन पीते और सोते हुए मुझ बालकको उसी शय्यापर पौढावे और हे पार्थ ! प्रकट श्रेष्ठ कन्यावाली यशोदाकी भी उसी सूतिकागृहके किसी देशमें कल्पना करे, यह वसुदेव कश्यप हैं और यह देवकी अदिति हैं यह बलदेवजी शेष हैं, यशोदा क्षिति, हैं, नन्द दक्षप्रजापति हैं, गर्ग ब्रह्मा हैं, इनको लिखे और बछड़ गौ आदि हाथी और शस्त्र हाथमें लिये दानवोंको लिखे और यमुनाके कुण्डमें कालियकी मूर्ति बनावे इत्यादि मेरे चरित्रको जितना लिख सकते उतना लिख कर भक्तिमें तत्पर हो मनुष्य प्रयत्नसे पूजा करे, और हे कौन्तेय ! इस मन्त्रसे मनुष्य देवकीकी पूजा करे, और जो गाते हुए किन्नरादिसे निरन्तर युक्त, प्रवृत्त और वेणु, वीणा बजाते हुए और शृंगार शीशा घट हाथमें लिये किन्नरोंसे सेवित और भली प्रकार बिछे हुए पलंगपर भली प्रकार स्थिर सुन्दर पुत्र और रूपवाली और देवमाता देवकी जयवाली हो, देवकीके चरणोंके समीप चरणोंको दाबती हुई कमलपर बैठी हुई लक्ष्मीकी भी इस प्रकार पूजा करे, कि लक्ष्मीदेवीको प्रणाम है। पुष्प, कुशा, चन्दनसहित जलको शंखमें भरकर और गोडोंसे पृथ्वीको छू करके चन्द्रमाको अर्घ दे। गुड़ और घीसे आधीरातके समय वसोर्धारा दे, और मेरा नाल छेदन, षष्ठी,

षष्ठी नामादेः करणं मम ॥ ततो मन्त्रेण वै दद्याच्चन्द्रायार्घ्यं समाहितः। शंखे तोयं समादाय सपुष्पकुशचन्दनम् ॥ जानुभ्यां धरणीं गत्वा चन्द्रायार्घ्यं निवेदयेत्। क्षीरोदार्णवसंभूत अत्रिनेत्रसमुद्भव ॥ गृहाणार्घ्यं शशांकेदं रोहिण्या सहितो मम। ज्योत्स्नापते नमस्तुभ्यं नमस्ते ज्योतिषां पते ॥ नमस्ते रोहिणीकान्त अर्घ्यं नः प्रतिगृह्यताम्। तथा पुत्रं हरिं लब्ध्वा प्राप्ता ते निर्वृतिः परा। तामेव निर्वृतिं देहि सुपुत्रं दर्शयस्व मे ॥" इति देवक्यर्घः। "ततः पुष्पाञ्जलिं दत्त्वा यामे यामे प्रपूजयेत्। प्रभाते ब्राह्मणाञ्शक्त्या भोजयेद्भक्तिमान्नरः ॥ ॐ नमो वासुदेवाय गोब्राह्मणहिताय च। शान्तिरस्तु शिवं चास्तु इत्युक्त्वा मां विसर्जयेत् ॥२॥" इदं प्रतिमासकृष्णाष्टम्यामप्युक्तं मदनरत्ने वह्निपुराणे-"प्रतिमासं च ते पूजामष्टम्यां यः करिष्यति। मम चैवाखिलान्कामान्स सम्प्राप्स्यत्यसंशयम् ॥" तथा- "अनेन विधिना यस्तु प्रतिमासं नरेश्वर। करोति वत्सरं पूर्वं यावदागमनं हरेः॥ दद्याच्छय्यां सुसंपूर्णां गोभी रत्नैरलंकृताम् ॥" इति जन्माष्टमीव्रतम्। कुशग्रहणम्। भाद्रामावास्यायां कुशग्रहणमुक्तं हेमाद्रौ हारीते च-"मासे नभस्यमावास्या तस्यां दर्भोच्चयो मतः। अयातयामास्ते दर्भा विनियोज्याः पुनःपुनः ॥" नभाः श्रावणः। तेन दर्शान्तमासे जन्माष्टम्यनन्तरं दर्शो लभ्यते। मदनरत्ने तु- 'मासे नभस्येऽमावास्या तस्यां दर्भोच्चयो मतः' इति मरीचिवाक्यमुक्तम् ॥ नभस्यो भाद्रपदः।

नामकरणको करे, फिर इस मन्त्रसे चन्द्रमाको सावधानतापूर्वक अर्घ्य दे कि, हे क्षीरसागरसे वा अत्रिके नेत्रसे प्रादुर्भूत हुए चन्द्रमा रोहिणीसहित! मेरे इस अर्घ्यको आप स्वीकार करो। हे प्रकाश और ज्योतियोंके पति! आपको प्रणाम है, और हे रोहिणीके पति! मेरे इस अर्घ्यको ग्रहण करो। फिर इस मन्त्रसे देवकीको अर्घ्य दे कि, जैसे कृष्णरूप पुत्र प्राप्त होकर तुमको आनन्द हुआ है वही सुख मुझे दो और श्रेष्ठ पुत्र दिखाओ। फिर पुष्पांजलि देकर प्रहर प्रहर भरमें पूजन करे। फिर शक्तिसे भक्तिमान् मनुष्य प्रातःकाल ब्राह्मणोंको भोजन करावे। गो ब्राह्मणके हितकारी वासुदवको नमस्कार है, मेरे शांति हो और कल्याण हो यह कहकर मेरा विसर्जन करे। यह व्रत प्रतिमास कृष्णपक्षकी अष्टमीको भी मदनरत्नमें वह्निपुराणके वाक्यसे लिखा है कि, जो मनुष्य प्रतिमहीनेमें अष्टमीको मेरी पूजा करता है वह सब कामनाको प्राप्त होता है इसमें सन्देह नहीं। हे नरोंके ईश्वर! जो मनुष्य भगवान्के जन्मादिनतक सम्पूर्ण वर्षतक पूजा करता है वह गौ और रत्नोंसे भूषित पूरी शय्याका दान करता है वह सुखी होता है। इति जन्माष्टमीव्रतम्। भाद्रपदकी अमावस्याको कुशाओंका ग्रहण हेमाद्रिमें हारीतके वाक्यसे लिखा है कि, श्रावणके महीनेकी अमावस्याको कुशाका संग्रह लिखा है श्रेष्ठ कुशा वारंवार कर्मोंमें ग्रहण करने योग्य हैं, इस वाक्यमें नभाः पदसे श्रावण अमान्त मासका ग्रहण किया है इससे जन्माष्टमीके उपरान्तकी अमावस्या ग्रहण करनी। मदनरत्नमें तो मरीचिने यह वाक्य लिखा है कि, नभस्य (भाद्रपद) महीनेकी अमावस्याको कुशाओंका संचय लिखा है

तेन महालयान्तर्गतदर्शो लभ्यते। अत्र गौणमुख्यचान्द्राभ्यामेक एव दर्श इत्यन्ये। हरितालिकाव्रतम् ॥ भाद्रपदशुक्लतृतीयायां हरितालिकाव्रतम्। तत्र परा ग्राह्या– "मुहूर्तमात्रसत्त्वेऽपि दिने गौरीव्रतं परे। शुद्धाधिकायामप्येवं गणयोगप्रशंसनात्॥" इति माधवोक्तेः। चतुर्थीयुक्तायां फलाधिक्यं माधवीये आपस्तम्बः–"चतुर्थीसहिता या तु सा तृतीया फलप्रदा। अवैधव्यकरा स्त्रीणां पुत्रपौत्रप्रवर्धिनी॥" द्वितीयायोगे प्रत्यवायमाह स एव–"द्वितीयाशेषसंयुक्तां या करोति विमोहिता। सा वैधव्यमवाप्नोति प्रवदन्ति मनीषिणः॥" इति। "आद्या मधुश्रावणिका कज्जली हरितालिका। चतुर्थीमिश्रितास्त्रीभिर्दिवानक्ते विधीयते॥ तृतीया नभसः शुक्ला मधुश्रावणिका स्मृता। भाद्रस्य कज्जली कृष्णा शुक्ला च हरितालिका॥२॥" इति दिवोदासोदाहृतवचनाच्च। भाद्रपदशुक्लवरदचतुर्थी। भाद्रपदशुक्लचतुर्थी वरदचतुर्थी। सा मध्याह्नव्यापिनी ग्राह्या। 'प्रातः शुक्लतिलैः स्नात्वा मध्याह्ने पूजयेन्नृप।' इति हेमाद्रौ भविष्ये। तत्रैव पूजोक्तेः॥ मदनरत्नेऽप्येवम्। परदिने एवांशेन साकल्येन वा मध्याह्नव्याप्त्यभावे सर्वपक्षेषु पूर्वा ग्राह्या। तथा च बृहस्पतिः–"चतुर्थी गणनाथस्य मातृविद्धा प्रशस्यते। मध्या-

---

तिससे अमान्तमास होनेसे महालयके अन्तर्गत अमावस्या प्राप्त होती है। कोई तो यह लिखते हैं कि, गौण और मुख्य चंद्रमासे एक ही अमावस्या ग्रहण करनी चाहिये। भाद्रपदशुक्ला ३ को हरितालिका व्रत होता है, उसमें अगली तृतीया ग्रहण करनी। कारण कि, माधवने कहा है कि, मुहूर्तमात्र होनेपर भी गौरीका व्रत परदिनमें करना चाहिये। माधवीयमें आपस्तम्बने चतुर्थीयुक्तका विशेष फल कहा है कि, चतुर्थीसहित तीज अधिक फल देती है, यह स्त्रियोंको सौभाग्य करने और पुत्र पौत्रकी बढ़ानेवाली है और जो मोहित होकर द्वितीयासे संयुक्त करती है वह वैधव्यको प्राप्त होती है ऐसा विद्वान् कहते हैं। और गणचतुर्थी योगकी प्रशंसासे शुद्ध और अधिकमें भी किसी प्रकार होती है, भाद्रकृष्ण तीजको मधुश्रावणीका (कजली तीज) और शुक्लको हरितालिका कहते हैं। स्त्रियोंको उसे करना चाहिये। जो दिन वा रात्रिमें चतुर्थीसंयुक्त हो, श्रावणशुक्ल तृतीयाको मधुश्रावणिका और भाद्रपदकृष्णको कज्जली, और शुक्लको हरितालिका वर्णन करते हैं यह दिवोदासने कहा है। भाद्रपदशुक्ल चतुर्थीको सिद्धिविनायकका व्रत होता है, वह मध्याह्नव्यापिनी करनी चाहिये। कारण कि, हेमाद्रिमें भविष्यपुराणके वाक्यसे मध्याह्नमें ही पूजा लिखी है कि, हे राजन्! प्रातःकाल श्वेत तिलोंसे स्नान करके मध्याह्नमें पूजन करे, मदनरत्नमें भी यही लिखा है। यदि परदिनमें अंशसे वा सम्पूर्णतासे मध्याह्नव्यापिनी न हो वो सब प्रकार सब पक्षोंमें पहिली ही करनी। यही बृहस्पतिने लिखा है कि, गणेशचतुर्थी मध्याह्नव्यापिनी हो तो तृतीयासे विद्धा उत्तम

ह्व्यापिनी चेत्स्यात्परतश्चेत्परेऽहनि॥"इति । "मातृविद्धा प्रशस्ता स्याच्चतुर्थीगण-नायके । मध्याह्ने परतश्चेत्स्यान्नागविद्धा प्रशस्यते ॥"इति माधवीये स्मृत्यन्तराच्च । तत्र गणेशरूपं स्कान्दे-"एकदन्तं शूर्पकर्णं नागयज्ञोपवीतिनम् । पाशांकुशधरं देवं ध्यायेत्सिद्धिविनायकम् ॥" इति । इयं रविभौमयोरतिप्रशस्ता । "भाद्रशुक्लचतुर्थी या भौमेनार्केण वा युता । महती सात्र विघ्नेशमार्चित्वेष्टं लभेन्नरः ॥ " इति निर्णयामृते वाराहोक्तेः । अत्र चन्द्रदर्शनं निषिद्धम् ॥ तथा चापरार्के मार्कण्डेयः-"सिंहादित्ये शुक्लपक्षे चतुर्थ्यां चन्द्रदर्शनम् । मिथ्याभिदूषणं कुर्यात्तस्मात्पश्येन्न तं सदा " इति ॥ चतुर्थ्यां न पश्येदित्यन्वयः ॥ प्रधानक्रियान्वयलाभात् । तेन चतुर्थ्यामुदितस्य पञ्चम्यां न निषेधः । गौडा अप्येवमाहुः ॥ पराशरोऽपि-"कन्यादित्ये चतुर्थ्यां तु शुक्ले चन्द्रस्य दर्शनम् । मिथ्याभिदूषणं कुर्यात्तस्मात्पश्येन्न तं सदा॥ तद्दोषशांतये सिंहः प्रसेनमिति वै पठेत्॥" इति। श्लोकस्तु विष्णुपुराणे-"सिंहः प्रसेनमवधीत्सिंहो जाम्बवता हतः ॥ सुकुमारक मा रोदीस्तव ह्येषः स्यमन्तकः ॥" इति । भाद्रपदशुक्लऋषिपञ्चमीव्रतनिर्णयः । भाद्रपदशुक्लपञ्चमी ऋषिपञ्चमी । सा मध्याह्नव्यापिनी ग्राह्या । 'पूजाव्रतेषु सर्वेषु मध्याह्नव्यापिनी तिथिः।' इति माधवीये हारीतोक्तेः । दिनद्वये सत्त्वे हेमाद्रिमते परा । ' सिता

होती है परे हो तो पञ्चमीमें विद्धा उत्तम होती है । ऐसा ही माधवीयमें और स्मृतियोंका वचन है । वहां गणेशजीका रूप इस स्कंदपुराणके वाक्यसे इस प्रकार लिखा है कि, एक दांत, शूर्पवत् कान, सर्पोंका यज्ञोपवीत धारे, पाश, अंकुशधारी सिद्धिविनायक गणेशका ध्यान करे, सूर्य और मंगलवार इस व्रतमें अत्यंत श्रेष्ठ कहे गये हैं । कारण कि, निर्णयामृतमें वाराहपुराणका कथन है कि, भाद्रपद शुक्लचतुर्थी मंगल वा रविवारसे युक्त हो तो बडी श्रेष्ठ है, उसमें विघ्नेश्वरका पूजन करके मनुष्य मनोवांछित फलको प्राप्त होता है । इसमें चन्द्रमाका दर्शन करना निषिद्ध है, यही अपरार्कमें मार्कण्डेयका कथन है कि सिंहके सूर्यके शुक्लपक्षमें चन्द्रमाका दर्शन करनेसे मिथ्या दोष लगता है, इससे उस दिन चन्द्रमाका देखना अच्छा नहीं, प्रधान क्रियामें अन्वयसे चतुर्थीको न देखे ऐसे अन्वय करना । इससे चतुर्थीमें उदय हुए चन्द्रमाका पंचमीमें देखना दोष नहीं करता गौडोंने भी इसी प्रकार कहा है । पाराशरने भी कहा है कि, कन्याके सूर्यमें शुक्लपक्षकी चतुर्थीको चन्द्रमाका दर्शन करनेसे मिथ्या दोष लगता है, इससे उस दिन चन्द्रमाको न देखना यदि देखे तो उसके दोषशांतिके निमित्त (सिंहः प्रसेनमवधीत्) इस श्लोकको जपे, कि सिंहने प्रसेनको मारा, और सिंहको जांबवानने मारा, हे सुकुमार बालक ! तू मत रोवे, तेरी ही यह स्यमंतक मणि है यह विष्णुपुराणमें लिखा है । भाद्रपदशुक्ल५ ऋषिपञ्चमी होती है, वह मध्याह्नव्यापिनी लेनी। कारण कि, माधवीयमें हारीतका कथन है कि, सम्पूर्ण पूजा और व्रतोंमें तिथि मध्यांह्नव्यापिनी ग्रहण करनी, दोनों दिनमें मध्याह्नव्यापिनी हो तो हेमाद्रिके मतसे अगली लेनी

परयुता स्यात् पंचमी' इति दीपिकोक्तेः। माधवमते पूर्वा। 'सर्वत्र पंचमी पूर्वा' इत्युक्तेः। युग्मवाक्यान्निर्णयस्तु युक्तः। ऋषिपञ्चमी षष्ठीयुतैवेति दिवोदासः। अत्र ऋषीन् प्रतिमासु पूजयित्वाऽकृष्टभूमिजशाकेन वर्तनम्। एवं सप्तवर्षाणि कृत्वा सप्तकुम्भेषु प्रतिमासु सम्पूज्य परेऽह्नि तत्तन्मन्त्रेणाष्टोत्तरशतं तिलान् हुत्वा सप्त ब्राह्मणान् भोजयेदिति निर्णयामृते। भाद्रपदशुक्लसूर्यषष्ठीनिर्णयः। भाद्रपदशुक्लषष्ठी सूर्यषष्ठी।' सा सप्तमीयुतैवेति दिवोदासः। "शुक्लभाद्रपदे षष्ठ्यां स्नानं भास्करपूजनम्। प्राशनं पंचगव्यस्य अश्वमेधफलाधिकम्" इति वचनात्। कल्पतरौ भविष्ये-"येयं भाद्रपदे मासि षष्ठी स्याद्भरतर्षभ। योऽस्यां पश्यति गाङ्गेयं दक्षिणापथवासिनम्। ब्रह्महत्यादिपापैस्तु मुच्यते नात्र संशयः।' गाङ्गेयः स्वामिकार्त्तिकेयः। भाद्रपदशुक्लमुक्ताभरणसप्तमीनिर्णयः। भाद्रपदशुक्लसप्तम्यां मुक्ताभरणव्रतम्। तत्र सप्तमी पूर्वयुता ग्राह्या। 'षण्मुन्योः' इति युग्मवाक्यात्। भाद्रपदशुक्लदूर्वाष्टमीनिर्णयः। भाद्रपदशुक्लाष्टमी दूर्वाष्टमी। सा पूर्वा ग्राह्या-'श्रावणी दुर्गनवमी दूर्वा चैव हुताशनी। पूर्वविद्धा तु कर्तव्या शिवरात्रिर्बलेर्दिनम्" इति हेमाद्रौ बृहद्यमोक्तेः। "शुक्लाष्टमीतिथिर्या तु मासि भाद्रपदे भवेत्। दूर्वाऽष्टमी तु सा ज्ञेया नोत्तरा सा विधीयते" इति पुराणसमु-

---

कारण कि, दीपिकाका वाक्य है कि, शुक्लपक्षकी पंचमी परतिथिसे संयुक्त होती है। माधवके मतमें पहली स्वीकार की है जिसमें दो ऋषियोंके वाक्य मिले उससे निर्णय करना युक्त है दिवोदास तो इस प्रकार कहते हैं कि, षष्ठीसे युक्त ऋषिपंचमी लेनी, इससे प्रतिमाओंमें ऋषियोंका पूजन करके विना जोते उत्पन्न हुए शाक (परवाड आदि) का भक्षण करे, इस प्रकार ७ वर्षतक करके ७ घडोंपर ७ प्रतिमाओंका अर्चन करके दूसरे दिनमें उस उस ऋषिके मंत्रसे तिलोंकी १०८ आहुति देकर ७ ब्राह्मणोंको जिमावे, यह निर्णयामृतमें लिखा है। भाद्रपदशुक्ल ६ सूर्यषष्ठी होती है, वह सप्तमीसे युक्त लेनी कारण कि, दिवोदासने यह लिखा है कि, भाद्रपदशुक्ल षष्ठीको स्नान और सूर्यका पूजन कर पंचगव्यके पीनेसे अश्वमेधसे भी अधिक फल प्राप्त होता है। कल्पतरुमें भविष्यपुराणका वाक्य है कि, हे भरतश्रेष्ठ! इस भादों महीनेकी छठमें जो मनुष्य दक्षिण देशनिवासी गंगापुत्र कार्त्तिकेयका दर्शन करता है वह ब्रह्महत्या आदि पापोंसे मुक्त होता है इसमें संदेह नहीं। भाद्रपद शुक्ल सप्तमीको मुक्ताभरणव्रत होता है उसमें 'षण्मुन्योरिति' इस वाक्यसे पूर्वयुत सप्तमी लेनी॥ भाद्रपद शुक्ला ८ अष्टमीको दूर्वाष्टमी होती है वह पहली ग्रहण करनी। कारण कि, हेमाद्रिमें बृहद्यमने कहा है कि, श्रावणी, दुर्गानवमी, दूर्वा, होली, शिवरात्रि, बलिका दिन यह सब पूर्वविद्धा ग्रहण करनी चाहिये। पुराणसमुच्चयमें लिखा है कि, भाद्रपदमासकी शुक्लाष्टमी तिथि दूर्वाष्टमी है वह पिछली नहीं करनी

च्चयाच्च । यत्तु-"मुहूर्ते रौहिणेऽष्टम्यां पूर्वा वा यदि वा परा । दूर्वाष्टमी तु सा कार्या ज्येष्ठां मूलं च वर्जयेत् ॥" इति । तत्रैव परा कार्येत्युक्तम् । तत्पूर्वदिन ज्येष्ठादियोगे द्रष्टव्यम् । 'दूर्वाष्टमी सदा त्याज्या ज्येष्ठा मूलर्क्षसंयुता ।' तथा-"ऐंद्रर्क्षे पूजिता दूर्वा हंत्यपत्यानि नान्यथा । भर्तुरायुर्हरा मूले तस्मात्तां परिवर्जयेत् ॥" इति तत्रैव तन्निषेधात् । इदमगस्त्योदये कन्यार्के च न कार्यम् । 'शुक्लभाद्रपदे मासि दूर्वासंज्ञा तथाष्टमी । सिंहार्क एव कर्तव्या न कन्यार्के कदाचन । सिंहस्थे सोत्तमा सूर्येऽनुदिते मुनिसत्तमे ॥" इति मदनरत्ने स्कांदोक्तेः । "अगस्त्ये उदिते तात पूजयेदमृतोद्भवाम् । वैधव्यं पुत्रशोकं च दश वर्षाणि पंच च ॥" इति तत्रैव दोषोक्तेश्च । भाद्रपदशुक्लाष्टम्यामगस्त्योदये भाविनि सति पूर्वकृष्णाष्टम्यामेव कुर्यादिति हेमाद्रिः । दीपिकायामप्येवम् । इदं च व्रतं स्त्रीणां नित्यम् । "या न पूजयते दूर्वां मोहादिह यथाविधि । त्रीणि जन्मानि वैधव्यं लभते नात्र संशयः ॥ तस्मात्संपूजनीया सा प्रतिवर्षं वधूजनैः ॥" इति पुराणसमुच्चयात् । यदा ज्येष्ठादिकं विनाष्टमी न लभ्यते तदा तत्रैवोक्तम् । "कर्तव्या चैकभक्तेन ज्येष्ठामूलं यदा भवेत् । दूर्वामभ्यर्चयेद्भक्त्या न वन्ध्यं दिवसं नयेत् ॥" इति ।

चाहिये। जो किसीने यह लिखा है कि, प्रातःकालके मुहूर्तमें अष्टमीको पूर्वा हो वा परा हो वह दूर्वाष्टमी करनी, ज्येष्ठा और मूल नक्षत्रको त्याग देना चाहिये । और वहां ही जो यह लिखा है कि, दूसरी करनी यह कथन पहले दिन यदि ज्येष्ठा आदिका योग हो तो जानना चाहिये । कारण कि, वहां ही इस वाक्यसे यह भी लिखा है कि, ज्येष्ठा और मूलनक्षत्रसे युक्त सदा त्याग देनी तैसे ही वहां ही यह निषेध है कि, ज्येष्ठानक्षत्रमें दूर्वा पूजन करनेसे सन्तानोंको और मूलमें पूजनेसे पतिकी अवस्थाको नष्ट करती है, इससे उसको वर्ज दे। इस दूर्वाष्टमीको अगस्त्यके उदयमें और कन्याके सूर्यमें न करना । कारण कि, मदनरत्नमें स्कन्दपुराणका यह कथन है कि, भाद्रपद मासमें शुक्लाष्टमीका दूर्वा नाम है । वह सिंहके सूर्यमें करनी चाहिये, कन्याके सूर्यमें किसी प्रकार न करनी चाहिये. कारण कि, सिंहके सूर्यमें और अगस्त्यमुनिके उदय न होनेपर वह श्रेष्ठ होती है, और वहां ही यह दोष लिखा है कि, अगस्त्यके उदय होनेपर जो स्त्री दूर्वाका पूजन करती है वह पन्द्रह वर्षतक वैधव्य और पुत्रके शोकको प्राप्त होती है । हेमाद्रिने तो यह लिखा है कि, जो भाद्रपद शुक्लाष्टमीको अगस्त्योदय होनेवाला हो तो कृष्णाष्टमीको दूर्वाष्टमी पूजन करे । दीपिकामें भी इसी प्रकार लिखा है, यह व्रत स्त्रियोंको नित्य करना चाहिये । कारण कि, पुराणसमुच्चयमें लिखा है कि, जो स्त्री जगत्में विधिसे दूर्वाका पूजन अज्ञानतासे नहीं करती वह तीन जन्मतक निःसन्देह विधवा होती है इससे स्त्रीजनोंको दूर्वाका प्रतिवर्ष पूजन करना चाहिये जब ज्येष्ठा आदिके विना अष्टमी मिले तब वहां ही यह लिखा है कि, जब ज्येष्ठा वा मूल हो तब एक समय व्रत करके भक्तिसे दूर्वाका पूजन करे और दिनको वृथा न बितावे । वह पुराणस-

तत्र विधिः। अत्र विधिर्मदनरत्ने भविष्ये–" शुचौ देशे प्रजातायां दूर्वायां ब्राह्मणोत्तम। स्थाप्य लिंगं ततो गंधैः पुष्पैर्धूपैः समर्चयेत् ॥ दध्यक्षतैर्द्विजश्रेष्ठ अर्घ्यं दद्यात्रिलोचने। दूर्वाशमीभ्यां विधिवत्पूजयेच्छ्रद्धयान्वितः ॥ २ ॥ " मन्त्रस्तु–" त्वं दूर्वेऽमृतजन्मासि वन्दितासि सुरासुरैः ॥ सौभाग्यं संततिं देहि सर्वकार्यकरी भव ॥ यथा शाखाप्रशाखाभिर्विस्तृतासि महीतले। तथा ममापि संतानं देहि त्वमजरामरम् ॥ २ ॥" इति। अत्रानग्निपक्वं भक्षयेत्। " अनग्निपक्वमश्नीयादन्नं दधि फलं तथा। अक्षारलवणं ब्रह्मन्नश्नीयान्मधुनान्वितम् ॥ " इति तत्रैव भविष्योक्तेः ॥ भाद्रपदेऽधिमासे सति निर्णयदीपे स्कांदे–" अधिमासे तु संप्राप्ते नभस्य उदये मुनेः। अर्वाग्दूर्वाव्रतं कार्यं परतो नैव कुत्रचित्। ज्येष्ठापूजाव्रतम्। अत्रैव ज्येष्ठापूजोक्ता माधवीये स्कान्दे–"मासि भाद्रपदे शुक्लपक्षे ज्येष्ठर्क्षसंयुता। रात्रिर्यस्मिन् दिने कुर्याज्ज्येष्ठायाः परिपूजनम् ॥ " इति। इयं ज्येष्ठायोगवशेन पूर्वा परा वा ग्राह्या ॥ दिनद्वययोगे परा। पूर्वेऽह्नि रात्रियोगे पूर्वैव। " नवम्या सह कार्या स्यादष्टमी नात्र संशयः। मासि भाद्रपदे शुक्लपक्षे ज्येष्ठर्क्षसंयुता ॥ रात्रिर्यस्मिन् दिने कुर्याज्ज्येष्ठायाः परिपूजनम् ॥ " इति तत्रैवोक्तेः। अस्यापवादः–"यस्मिन् दिने भवेज्ज्येष्ठा मध्याह्नादूर्ध्वमप्यणुः। तस्मिन् हविष्यं पूजा च न्यूना

मुच्चयमें लिखा है। इसकी विधि मदनरत्नमें भविष्यपुराणके वाक्यसे लिखी है कि, शुद्धदेशमें उत्पन्न हुई दूर्वाके ऊपर शिवलिंगको स्थापन करके हे ब्राह्मणोत्तम ! गन्ध, पुष्प, धूपसे पूजन करे। और दहीसे तथा चावलसे शिवजीको अर्घ्य दे दूर्वा और शमीसे श्रद्धापूर्वक विधिसे पूजन करे। उसका मन्त्र यह है कि, हे दूर्वे ! तुम्हारा अमृतसे जन्म है, देवता और राक्षस तुम्हारी वन्दना करते हैं मुझे सौभाग्य सन्तान दो ? मेरे सब कार्योंको पूर्ण करो, और जैसे तुम अपनी शाखाओं और प्रशाखाओंसे व्याप्त होती हो इसी प्रकार मुझे भी अजर और अमर सन्तानको दो, इसमें वह वस्तु भक्षण करे, जो अग्निसे पक न हो कारण कि, वहां ही भविष्यपुराणका कथन है कि,हे ब्रह्मन् ! अग्निसे नहीं पका अन्न दधि जिसमें क्षार और लवण न पड़ा हो मीठे सहित उसको भक्षण करे। यदि भाद्रपद अधिकमास हो जाय तो निर्णयदीपकग्रन्थमें स्कन्दपुराणके वाक्यसे यह लिखा है कि, यदि भाद्रपद अधिक मास हो और अगस्त्यका उदय हो जाय तो प्रथम ही दूर्वाव्रत कर ले,परे अगले कदाचित् भी न करे। इसीमें माधवग्रन्थमें स्कन्दपुराणके वाक्यसे ज्येष्ठाकी पूजा लिखी है। भाद्रपदमासके शुक्लपक्षमें ज्येष्ठा नक्षत्रसे युक्त रात्रि हो उस दिन ज्येष्ठाका पूजन करे। यह ज्येष्ठाके योगवशसे पहली वा अगली ग्रहण करनी। दोनों दिन ज्येष्ठाका योग हो तो अगली लेनी और पहले दिन रात्रिमें हो तो पहले दिन लेनी। कारण कि,वहां ही यह लिखा है कि, नवमीसहित अष्टमी करनी, इसमें संशय नहीं। और भाद्रपदके शुक्लपक्षमें ज्येष्ठा नक्षत्रयुक्त रात्रि हो उसमें ज्येष्ठाका पूजन करना चाहिये,इसका अपवाद भी है कि,जिस दिन मध्याह्नसे

चेत्पूर्ववासरे" इति ॥ इदं केवलतिथौ नक्षत्रे चोक्तम् । तत्राद्यं केवलतिथौ कार्यम् । अन्त्यं केवलर्क्षे । तदुक्तं मात्स्ये–'प्रत्याब्दिकं तिथावुक्तं यज्ज्येष्ठादैवतं व्रतम् ॥ प्रतिज्येष्ठाव्रतं यच्च विहितं केवलोडुनि ॥ तिथावेवाचरेदाद्यं द्वितीयं केवलर्क्षतः ॥" इति । अत एव मदनरत्ने भविष्ये नक्षत्रमात्रे उक्तम्–" मासि भाद्रपदे पक्षे शुक्ले ज्येष्ठा यदा भवेत् । रात्रौ जागरणं कृत्वा एभिर्मन्त्रैश्च पूजयेत् ॥" इति । दाक्षिणात्यास्त्वृक्ष एव कुर्वन्ति । हेमाद्रौ स्कान्देऽपि–'मासि भाद्रपदे शुक्लपक्षे ज्येष्ठर्क्षसंयुते। यस्मिन्कस्मिन्दिने कुर्याज्ज्येष्ठायाः परिपूजनम् ॥" इति । तथा–" मैत्रेणावाहयेद्देवीं ज्येष्ठायां तु प्रपूजयेत् ॥ मूले विसर्जयेद्देवीं त्रिदिनं व्रतमुत्तमम् " इति । मन्त्रस्तु– "एह्येहि त्वं महाभागे सुरासुरनमस्कृते। ज्येष्ठे त्वं सर्वदेवानां मत्समीपगता भव॥" इत्यावाह्य ' तामग्निवर्णाम् ' इति संपूज्य। " ज्येष्ठायै ते नमस्तुभ्यं श्रेष्ठायै ते नमो नमः ॥ शर्वायै ते नमस्तुभ्यं शांकर्यै ते नमो नमः। ज्येष्ठे श्रेष्ठे तपोनिष्ठे ब्रह्मिष्ठे सत्यवादिनि । एह्येहि त्वं महाभागे अर्घ्यं गृह्ण सरस्वति ॥ २ ॥ " इत्यर्घ्यम् । भाद्रपदशुक्लद्वादश्यां श्रवणयोगरहितायां पारणं कुर्यात् । 'आभाकासितपक्षेषु ' इति दिवोदासोदाहृतवचनात् । "उपोष्यैकादशीं मोहात्पारणं श्रवणे यदि । करोति हंति तत्पुण्यं द्वादशद्वादशीभवम् ॥" इति तत्रैव स्कान्दाच्च । अस्य तत्रैव

परे ज्येष्ठा नक्षत्र कुछ भी हो उसी दिन हविष्य भोजन और पूजा करे,और मध्याह्नसे प्रथम हो तो पूर्वदिनमें करे, यह केवल तिथि वा केवल नक्षत्रमें लिखा है, उनमें पहिला केवल तिथिमें करना वा केवल नक्षत्रमें करना सोई मत्स्यपुराणमें लिखा है कि, ज्येष्ठादेवताका व्रत प्रतिवर्ष तिथिमें जिस प्रकार वर्णन किया है और ज्येष्ठाका व्रत जो केवल नक्षत्रमें लिखा है इन दोनोंमें प्रथमको तिथिमें करे और दूसरेको नक्षत्रमें करे। इसी निमित्त मदनरत्नमें भविष्यपुराणके वाक्यसे केवल नक्षत्रमें व्रत लिखा है कि, भाद्रपदके शुक्लपक्षमें जब ज्येष्ठा-नक्षत्र हो तब रात्रिको जागरण करके इन मन्त्रोंसे पूजन करे। दाक्षिणात्य तो नक्षत्रमें ही करते हैं। हेमाद्रिमें स्कन्दपुराणका वाक्य भी है कि,भाद्रपदके शुक्लपक्षमें ज्येष्ठा नक्षत्रसे युक्त जिस किसी दिनमें ज्येष्ठाका अर्चन करे, तैसे ही लिखा है कि, अनुराधामें देवीका आवाहन करे, ज्येष्ठामें पूजन और मूलमें विसर्जन करे। ये तीनों दिन श्रेष्ठ व्रत है। मन्त्र यह है कि, हे महाभागे ! हे देवता और राक्षसोंसे नमस्कृत सब देवताओंमें ज्येष्ठे ! तुम आओ मेरे निकटमें प्राप्त हो, इस मन्त्रसे आवाहन करके (तामग्निवर्णा) इस ऋचासे पूजन करके इस मन्त्रसे अर्घ्य दे, ज्येष्ठा (बडी) श्रेष्ठा (उत्तमा) तुमको नमस्कार है । शर्वाको नमस्कार है, और शांकरीको प्रणाम है।हे श्रेष्ठ !हे ज्येष्ठे ! हे तपोनिष्ठे ! हे ब्रह्मिष्ठे हे महाभागे ! हे सत्यवादिनि ! हे सरस्वति ! तुम आओ और अर्घ्यको ग्रहण करो, भाद्रपद शुक्ल द्वादशीको श्रवणनक्षत्रका योग न हो तो पारणा करे । कारण कि, पूर्वोक्त (आभाकासितपक्षेषु) इस दिवोदासके लिखे हुए वाक्यसे श्रवणनक्षत्रके योगमें पारणाका

प्रतिप्रसवः। मार्कण्डेयः—"विशेषेण महीपाल श्रवणं वर्धते यदि। तिथिक्षये न भोक्तव्यं द्वादशीं लंघयेन्न हि" इति। केचित्तु—यदा त्वपरिहार्यो योगस्तदा श्रवणनक्षत्रे त्रेधा विभक्ते मध्यमविंशतिघटिकायोगं त्यक्त्वा पारणं कार्यम्। तदुक्तं विष्णुधर्मे—"श्रुतेश्च मध्ये परिवर्तमेति सुप्तिप्रबोधपरिवर्तनमेव वर्ज्यम्।" इति। केचिच्चतुर्धा विभज्य मध्यपादद्वयं वर्ज्यमाहुः। अत्र मूलं चिन्त्यम्। परिवर्तनोत्सवनिर्णयः॥ अत्रैव विष्णुपरिवर्तनोत्सवं कुर्यात्। सन्ध्यायां विष्णुं सम्पूज्य प्रार्थयेत्। मन्त्रस्तु तिथितत्त्वे उक्तः "ॐ वासुदेव जगन्नाथ प्राप्तेयं द्वादशी तव। पार्श्वेन परिवर्तस्व सुखं स्वपिहि माधव" इति॥ शक्रध्वजोत्थापनम्। अत्रैव शक्रध्वजोत्थापनमुक्तमपरार्के गर्गेण। "द्वादश्यां तु सिते पक्षे मासि प्रौष्ठपदे तथा। शक्रमुत्थापयेद्राजा विश्वश्रवणवासवे॥" श्रवणद्वादशीनिर्णयः॥ इयमेव श्रवणद्वादशी। तत्रैकादश्यां द्वादशी श्रवणयोगे सैवोपोष्या।" एकादशी द्वादशी च वैष्णव्यमपि तत्र चेत्। तद्विष्णुशृंखलं नाम विष्णुसायुज्यकृद्भवेत्॥" इति विष्णुधर्मोक्तेः। नारदीयेऽपि—"संस्पृश्यैकादशी राजन्द्वादशीं यदि संस्पृशेत्। श्रवणं ज्योतिषां श्रेष्ठं ब्रह्महत्यां व्यपोहति॥ द्वादशी श्रवणस्पृष्टा स्पृशेदेकादशीं

निषेध है। वहां ही स्कंदपुराणका कथन है कि, जो मनुष्य एकादशीको व्रत करके मोहसे श्रवणमें पारणा करता है वह बारह द्वादशीका पुण्य नष्ट करता है। वहां ही इसका निषेध भी मार्कण्डेयपुराणके इस वाक्यसे है कि, हे महीपति! यदि श्रवण नक्षत्र बढ़ जाय और तिथिका क्षय हो जाय तो भोजन न करे और द्वादशीका लंघन न करे। कोई तो यह कहते हैं कि, जब ऐसा योग हो कि, श्रवण नक्षत्र न हट सके जब तीन प्रकारके भाग किये हुए श्रवण नक्षत्रके मध्यकी २० घडी छोड़कर पारणा करे सोई विष्णुधर्ममें लिखा है, कि श्रवणके मध्यमें विष्णु करवट लेते हैं और सोना, जागना, करवट लेना ही छोड़ने योग्य है। कोई यह कथन करते हैं कि, श्रवणनक्षत्रके चार भाग करके मध्यके दो चरण त्याग दे, इसमें प्रमाण नहीं है। इसी दिन विष्णुके परिवर्तनका उत्सव करे कि, संध्याके समय विष्णुका अर्चन करके प्रार्थना करे और उसका मन्त्र तिथितत्त्वमें यह लिखा है कि, हे वासुदेव! हे जगत्के नाथ! हे माधव! यह आपकी द्वादशी आयी इसमें करवट लो और सुखसे शयन करो। इसी दिन इन्द्रकी ध्वजाका उठाना भी अपरार्कग्रन्थमें गर्गके वाक्यसे लिखा है कि, हे राजन्! भाद्रपदशुक्ल द्वादशीको इन्द्रध्वजाको उठावे। यदि अनुराधा, श्रवण, धनिष्ठा नक्षत्र हो तो इसीको श्रवणद्वादशी कहते हैं, वह एकादशीको द्वादशी और श्रवणका योग हो तो उसी दिन ही व्रत करे। कारण कि; विष्णुधर्ममें यह लिखा है कि. एकादशी और द्वादशी हो और श्रवणनक्षत्र भी वहां हो तो यह विष्णुशृंखल नाम योग विष्णुकी सायुज्य करनेवाला होता है। नारदपुराणमें भी लिखा है कि, हे राजन्! यदि ज्योतियोंमें श्रेष्ठ श्रवणनक्षत्र एकादशीका स्पर्श करके द्वादशीका भी स्पर्श कर ले

यदि। स एवं वैष्णवो योगो विष्णुशृंखलसंज्ञितः ॥२॥" इति हेमाद्रौ मात्स्योक्तेश्च। दिनद्वये द्वादशी श्रवणयोगेऽपि पूर्वा। निर्णयामृते त्वस्य पूर्वार्धमन्यथा पठितम्। 'द्वादशीं श्रवणर्क्षं च स्पृशेदेकादशी यदि।' इति। तेन हेमाद्रिमते एकादश्याः श्रवणयोगाभावेऽपि तद्युक्तद्वादशीयोगमात्रेण विष्णुशृंखलं भवति॥ निर्णयामृतमते तु–'श्रवणस्यैकादशीद्वादशीभ्यां योग एव विष्णुशृंखलं नान्यथेति।' यदा निशीथानन्तरं सूर्योदयावधि द्विकलामात्रमपि श्रवणर्क्षं भवति तदापि पूर्वैव॥ तदुक्तं तत्रैव नारदीये इमां प्रकृत्य–"तिथिनक्षत्रयोर्योगो योगश्चैव नराधिप। द्विकलो यदि लभ्येत स ज्ञेयो ह्यष्टयामिकः॥" इति। "द्वादशी श्रवणस्पृष्टा कृत्स्ना पुण्यतमा तिथिः। न तु सा तेन संयुक्ता तावत्येव प्रशस्यते॥" इति मदनरत्ने मात्स्याच्च। दिवोदासीये तु–"रात्रेः प्रथमपादे चेच्छ्रवणं हरिवासरे। तदा पूर्वामुपवसेत्प्रातर्भान्ते च पारणम्॥" इत्युक्तम्॥ इदं तु निर्मूलत्वात्पूर्वविरोधाच्चोपेक्ष्यम्। इयं बुधवारेऽतिप्रशस्ता। "बुधश्रवणसंयुक्ता सैव चेद्द्वादशी भवेत्। अत्यन्तमहती सा स्याद्दत्तं भवति चाक्षयम्॥" इति हेमाद्रौ स्कान्दात्। यानि तु पठन्ति "उत्तराषाढसंयुक्ता श्रोणा मध्याह्नगापि वा। आसुरी सैव तारा स्या-

---

तो ब्रह्महत्याओंको दूर करता है। हेमाद्रिमें मत्स्यपुराणका वाक्य है कि, श्रवणनक्षत्रसे मिली द्वादशी एकादशीका स्पर्श कर ले तो वह वैष्णवोंका विष्णुशृंखलयोग होता है। दोनों दिन द्वादशी और श्रवणयोगमें भी प्रथम ही ग्रहण करनी चाहिये। निर्णयामृतमें तो पूर्वका आधा श्लोक और प्रकारसे पढ़ा है कि, यदि द्वादशी और श्रवणनक्षत्र एकादशी स्पर्श कर ले, इससे हेमाद्रिके मतमें एकादशीका श्रवणयोगके अभावमें भी श्रवणनक्षत्रयुक्त द्वादशीके योग मात्रसे विष्णुशृंखल योग होता है। निर्णयामृतमें तो एकादशी और द्वादशी दोनोंमें श्रवणयोग होनेपर विष्णुशृंखलयोग होता है अन्यथा नहीं। जब आधी रातके पीछे सूर्योदयतक घडी मात्र भी श्रवणनक्षत्र हो तब भी पहली ही ग्रहण करनी। सोई वहां ही नारदके वाक्यसे इसी तिथिके प्रकरणमें लिखा है कि, हे राजन्! तिथि और नक्षत्रका योग योग कहाता है। यदि वह दो घडी भी प्राप्त हो तो आठ प्रहरका योग होता है। योगपदसे शिवरात्रि आदिमें आर्द्रानक्षत्र आदि समझना चाहिये। कृष्णपक्षकी द्वादशी श्रवणके स्पर्शसे ही अत्यन्त पवित्र होती है। कुछ सम्पूर्ण ही श्रवण नक्षत्रसे युक्त पवित्र नहीं। यह मदनरत्नमें मत्स्यपुराणके वाक्यसे लिखा है कि, दिवोदासीयमें तो यह लिखा है कि, यदि एकादशीके प्रथम चरणमें श्रवणनक्षत्र हो तब पहिली तिथिका व्रत करे और प्रातःकाल नक्षत्रके अन्तमें पारणा करे। यह तो निर्मूल और पूर्वसे विरुद्ध होनेसे त्यागने योग्य है। यह बुधवारमें अत्यन्त श्रेष्ठ होती है। कारण कि, हेमाद्रिमें स्कन्दपुराणका कथन है कि बुध और श्रवणनक्षत्रसे युक्त द्वादशी हो तो वह अत्यन्त श्रेष्ठ होती है। उसमें दिया दान करनेसे अक्षय होता है। जो इन वाक्योंको पढते हैं कि, उत्तराषाढनक्षत्रसे युक्त श्रवण मध्याह्नमें भी

घ्नन्ति पुण्यं पुराकृतम् ॥ उदयव्यापिनी ग्राह्या श्रोणा द्वादशिकायुता । विश्वर्क्षसंयुता सा च नैवोपोष्या शुभेप्सुभिः" ॥ २ ॥ इत्यादीनि विष्णुधर्मस्कान्दभविष्यादीनि वचनानि तानि निर्मूलानि । यदपि स्मृत्यर्थसारे 'उदयव्यापिनी ग्राह्या' इत्युक्तम् । यच्च बृहन्नारदीये–'उदयव्यापिनी ग्राह्या श्रवणद्वादशीव्रते' इति । तद्यदा शुद्धाधिका द्वादशी परदिन एवोदये श्रवणयोगः पूर्वेऽह्नि च तदभिन्ने कालयोगस्तत्परम् ॥ दिनद्वये उदययोगे पूर्वैव । बहुकर्मकालव्याप्तेरित्युक्तं मदनरत्ने । यदा त्वेकादश्येव श्रवणयुता न द्वादशी तदापि पूर्वैव । "यदा न प्राप्यते ऋक्षं द्वादश्यां वैष्णवं क्वचित् । एकादशी तदोपोष्या पापघ्नी श्रवणान्विता" इति मदनरत्ने नारदीयोक्तेः । यदा परैवर्क्षयुता तदा परा । तत्र शक्तेनोपवासद्वयं कार्यम् । "एकादशीमुपोष्यैव द्वादशीं समुपोषयेत् । न चात्र विधिलोपः स्यादुभयोर्दैवतं हरिः" इति भविष्योक्तेः । यत्तु विष्णुधर्मे–"पारणान्तं व्रतं ज्ञेयं व्रतान्ते विप्रभोजनम् । असमाप्ते व्रते पूर्वे नैव कुर्याद्व्रतान्तरम्" इति । तदेतद्भिन्नपरम् । अत्र गौडाः–'शृणु राजन्परं काम्यं श्रवणद्वादशीव्रतम्' इति स्थूलशीर्ष-

---

हो तो वह आसुरी तारा पूर्व किये पुण्यको नष्ट करती है । द्वादशीसे युक्त श्रोणा उदयव्यापिनी ग्रहण करनी। जो वह उत्तराषाढ नक्षत्रसंयुक्त हो तो कल्याणके अभिलाषी उसमें व्रत न करे। इत्यादि विष्णुधर्म, स्कन्द, भविष्यके वाक्य निर्मूल हैं और जो स्मृत्यर्थसारमें यह कहा है कि, उदयव्यापिनी ग्रहण करनी और जो बृहन्नारदीयमें लिखा है कि, व्रतमें श्रवणद्वादशी उदयव्यापिनी लेनी, वह तब है जब द्वादशी शुद्ध वा अधिक है और परदिनमें उदयके समय श्रवण योग है और पूर्वदिन उससे भिन्नकालमें श्रवणनक्षत्रका योग हो । दोनों दिन श्रवणयोग हो तो पूर्ण होनेसे प्रथम ही ग्रहण करनी. श्रवणद्वादशीका व्रत तो श्रवणयुक्त द्वादशीके न मिलने पर श्रवणयुक्त एकादशीमें ही करना। कारण कि, मदनरत्नमें नारदका यह वाक्य है कि, यदि कभी द्वादशीको श्रवण नक्षत्र न मिले तो पापनाश करनेवाली श्रवणसे युक्त द्वादशीको ही सदा व्रत करे। यदि अगली ही नक्षत्रयुक्त हो तो अगली ही लेनी ।ऐसे समयपर समर्थ मनुष्य दो व्रत करे। कारण कि, भविष्यपुराणमें लिखा है कि, एकादशीका व्रत करके द्वादशीका व्रत करे । इसमें विधिका लोप नहीं कारण कि, दोनों तिथियोंके देवता भगवान् हैं। जो विष्णुधर्ममें यह लिखा है कि, पारणाके अन्ततक व्रत जानना चाहिये और व्रतके अन्तमें ब्राह्मणभोजन होता है और प्रथम व्रतके पूर्ण न होनेपर दूसरा व्रत न करे, यह वाक्य इससे भिन्न व्रतोंमें समझना चाहिये। इसमें गौड यह मानते हैं कि, हे राजन् ! श्रेष्ठ और काम्य श्रवण द्वादशीव्रतको श्रवण करो, इस स्थूलशीर्षके वाक्यसे यह काम्य ही है । इससे अशक्त पुरुष नित्य एकादशी-

वचनात् काम्यमेवेदम् । तेनाशक्तस्य नित्यैकादशीव्रतमेवेति मन्यते । "द्वादश्यामुपवासेन शुद्धात्मा नृप सर्वशः ॥ चक्रवर्तित्वमतुलं सम्प्राप्नोत्युत्तमां श्रियम् ॥" इति गौडनिबन्धे मार्कण्डेयोक्तेश्च । दाक्षिणात्यास्तु—"एकादश्यां नरो भुक्त्वा द्वादश्यां समुपोषणात् । व्रतद्वयकृतं पुण्यं सर्वं प्राप्नोत्यसंशयम्" ॥ इति वाराहवामनपुराणोक्तेः श्रवणद्वादशीव्रतमेवेत्याहुः । भुक्त्वेति फलाद्याहारपरम् । न त्वन्नपरम् । 'अन्नाश्रितानि पापानि' इति निषेधात् । "उपवासद्वयं कर्तुं न शक्नोति नरो यदि । प्रथमेऽह्नि फलाहारी निराहारोऽपरेऽहनि ॥" इति दिवोदासीये भविष्योक्तेश्च । अशक्तो तु गृहीतैकादशीव्रतो यस्तं प्रत्युक्तं मात्स्ये—'द्वादश्यां शुक्लपक्षे तु नक्षत्रं श्रवणं यदि । उपोष्यैकादशीं तत्र द्वादश्यां पूजयेद्धरिम्" इति । पूजयेन्न तूपवसेदित्यर्थः । अगृहीतैकादशीव्रतश्चेदेकादश्यां भुक्त्वा द्वादश्यामुपवसेत् । "एवमेकादशीं भुक्त्वा द्वादशीं समुपोषयेत् । पूर्ववासरजं पुण्यं सर्वं प्राप्नोत्यसंशयम्" इति नारदीयोक्तेः ॥ 'पारणं तूभयान्तेऽन्यतरान्ते वा कुर्यात्' 'तिथिनक्षत्रनियमे तिथिभान्ते च पारणम्' इति स्कान्दात् । "तिथिनक्षत्रसंयोगे उपवासो यदा भवेत् । पारणं तु न कर्तव्यं यावन्नैकस्य संक्षयः ॥" इति नारदीयादिति हेमाद्रिः । यद्यप्यत्र नक्षत्रमात्रान्तेऽपि पारणं प्रतिभाति तथापि तिथिमात्रान्ते ज्ञेयम् । न त्वृक्षान्ते तिथि-

---

व्रतको ही करे, गौड निबन्धमें मत्स्यपुराणका कथन है कि, हे नृप ! द्वादशीके व्रतसे सब प्रकार शुद्धमन मनुष्य उत्तम चक्रवर्ती राजा होता है, और महालक्ष्मीको प्राप्त होता है। दाक्षिणात्य तो यह लिखते हैं कि, मनुष्य एकादशीको भोजन और द्वादशीके व्रतको करके दो व्रतोंके सम्पूर्ण पुण्यको प्राप्त होता है इसमें सन्देह नहीं । इस वाराह वामनपुराणके कथनसे श्रवणद्वादशीका व्रत ही है, इसमें भोजनपदसे फलाहार लेना और नहीं; कारण कि, अन्नके आश्रयमें पाप होते हैं, इससे अन्नका निषेध है। कारण कि, दिवोदासीयमें भविष्यपुराणका कथन है कि, यदि मनुष्य दो व्रत करनेको समर्थ न हो तो प्रथम दिन फलाहारी और परदिन निराहारी रहे । अशक्तिमें तो जिसने एकादशीव्रत ग्रहण कर रक्खा हो उसके प्रति मत्स्यपुराणके वाक्यसे लिखा है कि, यदि शुक्लपक्षकी द्वादशीको श्रवण नक्षत्र हो तब एकादशीको व्रत करके द्वादशीको हरिपूजन करे अर्थात् केवल पूजा करे व्रत न करे । यदि एकादशी व्रत ग्रहण न कर रक्खा हो तो एकादशीको भोजन करके द्वादशीको व्रत करना चाहिये । इसी प्रकार यह नारदका वाक्य है कि, जो एकादशीको भोजन करके द्वादशीको व्रत करे वह प्रथम दिनके समस्त पुण्यको प्राप्त होता है इसमें सन्देह नहीं । पारणा तो दोनोंके वा किसी एकके अन्तमें करना, स्कन्दपुराणका वाक्य है कि, तिथि और नक्षत्रके नियममें तिथि और नक्षत्रके अन्तमें पारणा करे । जब तिथि और नक्षत्रके संयोगमें व्रत हो तबतक पारणा न करे, जबतक एकका क्षय न हो । यह नारदपुराणका वाक्य हेमाद्रिमें लिखा है। यद्यपि यहां नक्षत्रके अन्तमें भी पारणा प्रतीत होती है तो भी तिथिमात्रके अन्तमें जानना चाहिये और तिथिके बीचमें नक्षत्रके अन्तमें

मध्येऽपि। "याः काश्चित्तिथयः प्रोक्ताः पुण्या नक्षत्रयोगतः। ऋक्षान्ते पारणं कुर्याद्विना श्रवणरोहिणीम् ॥" इति विष्णुधर्मे श्रवणान्तमात्रे पारणनिषेधात्। रोहिण्यां तु–'भान्ते कुर्यात्तिथेर्वापि' इति वह्निपुराणात् तदन्तेऽप्यस्तु। न त्वत्रैवमस्तीति न ऋक्षान्तोऽनुकल्प .इति मदनरत्ने। असंभवे तु–"तिथ्यन्ते तिथिभान्ते वा पारणं यत्र चोदितम्। यामत्रयोर्ध्वगामिन्यां प्रातरेव हि पारणा ॥" इति ज्ञेयम्। यत्तु मदनरत्ने द्वादशीवृद्धौ श्रवणवृद्धौ वा श्रवणान्त एव पारणं कुर्यात्। "पारणं तिथिवृद्धौ तु द्वादश्यामुडुसंक्षयात्। वृद्धौ कुर्यात्त्रयोदश्यां तत्र दोषो न विद्यते ॥ इति वह्निपुराणादित्युक्तम् ॥ तत्प्रकरणादेतस्यामेव श्रवणयुक्तैकादश्यां विहितं विजयैकादशीव्रतपरम् न तु श्रवणद्वादशीपरमिति मदनरत्ने ॥ गौडास्तु श्रवणद्वादशीपरमाहुः ॥ तत्र विधिः। अत्र विधिर्मदनरत्ने विष्णुधर्मे–'तस्मिन् दिने तथा-स्नानं यत्र क्वचन संगमे'। तथा–" दध्योदनयुतं तस्यां जपूलर्णं घटं द्विजे। वस्त्रसंवेष्टितं दत्त्वा छत्रोपानहमेव च ॥ न दुर्गतिमवाप्नोति गतिमग्र्यां च विन्दति ॥" मन्त्रस्तु भविष्ये–घटे जनार्दनपूजामभिधाय "नमो नमस्ते गोविन्द बुधश्रवणसंज्ञक। अघौघसंक्षयं कृत्वा सर्वसौख्यप्रदो भव ॥ प्रीयतां देवदेवेशो मम संशयनाशनः " ॥ वामनद्वादशीव्रतनिर्णयः ॥ वामनावतारनिमित्तोपवासस्तु व्रतहेमाद्रौ

न जानना चाहिये. कारण कि, विष्णुधर्ममें श्रवणके अन्तमात्रमें पारणाका निषेध है कि, नक्षत्रके योगसे जो शुद्ध तिथि कही हैं उनमें श्रवण और रोहिणीको छोड़कर नक्षत्रके अन्तमें पारणा करे, इस वह्निपुराणके वाक्यसे तिथिके अन्तमें भी पारणा है और यहांसे नहीं इससे नक्षत्रका अनुकल्प (गौण) है यह मदनरत्नमें कहा है, असम्भव हो तो तिथि वा तिथिनक्षत्रकी पूर्तिमें पारणा जहां कथन की हैं वहां यदि तिथि तीन प्रहरसे अधिक हो तो प्रातःसमय ही पारणा जाननी चाहिये, जो मदनरत्नमें यह कथन है कि, द्वादशी वा श्रवण नक्षत्रकी वृद्धिमें श्रवणके अन्तमें ही पारणा करे. कारण कि, वह्निपुराणका वाक्य है कि, तिथिकी वृद्धि हो तो द्वादशीमें नक्षत्रके क्षय होनेपर पारणा करे, नक्षत्रकी वृद्धि हो तो त्रयोदशीको पारणा करे, यह वाक्य उस विजया एकादशीके व्रतमें है. जो इसी श्रवणयुक्त एकादशीमें कथन है कुछ श्रवणद्वादशीके व्रतमें नहीं, मदनरत्नमें गौड तो यह कहते हैं कि, श्रवणद्वादशीके विषय ही यह वाक्य है। यही विधि मदनरत्नमें विष्णुधर्मप्रकरणमें कथन की है, उसदिन जिस किसी संगममें स्नान करे और दही चावल इनसे युक्त जलसे भरे वस्त्रसे ढके घटको और छत्री जूता ब्राह्मणको देकर मनुष्य दुर्गतिको प्राप्त नहीं होता है, श्रेष्ठ गतिको प्राप्त होता है। मन्त्र तो भविष्यपुराणमें यह लिखा है कि, घटमें भगवान्‌की पूजा करके कहे कि, हे गोविंद ! आपको नमस्कार है, तुम बुध और श्रवणकी द्वादशीमें पापोंके समूहको नष्ट करके सम्पूर्ण सुख देनेवाले हो, देवताओंके देव श्री ईश्वर मेरे सन्देहके नाशक मेरे पापोंको दूर करो। वामनावतारके निमित्त व्रत तो हेमाद्रिमें

भविष्ये—"द्वादश्यास्ते विधिः प्रोक्तः श्रवणेन युधिष्ठिर । सर्वपापप्रशमनः सर्वसौख्यप्रदायकः ॥ एकादशी यदा सा स्याच्छ्रवणेन समन्विता । विजया सा तिथिः प्रोक्ता भक्तानां विजयप्रदा ॥ २ ॥" इत्युपक्रम्य "अथ काले बहुतिथे गते सा गुर्विणी भवेत् । सुषुवे नवमे मासि पुत्रं सा वामनं हरिम् ॥" इत्युक्त्वा "एतत्सर्वं समभवदेकादश्यां युधिष्ठिर । तेनेष्टा देवदेवस्य सर्वथा विजया तिथिः ॥ एषा व्युष्टिः समाख्याता एकादश्यां मया तव । पूर्वमेव समाख्याता द्वादशी श्रवणान्विता ॥" इत्युपसंहारादेकादश्यामेव व्युष्टिः फलम् । भागवतेऽष्टमस्कन्धे तु द्वादश्यां वामनोत्पत्तिरुक्ता—"श्रोणायां श्रवणद्वादश्यां मुहूर्तेऽभिजिति प्रभुः । ग्रहनक्षत्रताराद्याश्चक्रुस्तज्जन्म दक्षिणम् ॥ द्वादश्यां सविता तिष्ठन् मध्यंदिनगतो नृप । विजया नाम सा प्रोक्ता यस्यां जन्म विदुर्हरेः ॥" श्रोणायां चन्द्रे ॥ अभिजिच्छ्रवणप्रथमोंऽशः ॥ गौडा अप्येवम् । अत्र कल्पभेदाद्व्यवस्था ॥ तद्विधिश्च हेमाद्रौ वह्निपुराणे—"नदीनां संगमे स्नायादर्चयेदत्र वामनम् । सौवर्णवस्त्रसंयुक्तं द्वादशांगुलमुच्छ्रितम् ॥" ततो विधिवत्संपूज्य । "हिरण्मयेन पात्रेण दद्यादर्घ्यं प्रयत्नतः । नमस्ते पद्मनाभाय नमस्ते जलशायिने ॥ तुभ्यमर्घ्यं प्रयच्छामि बालवामनरूपिणे । नमः कमलकिंजल्कपीतनिर्मलवाससे ॥ महाहवरिपुस्कन्धधृत-

---

भविष्यपुराणके वाक्यसे कहा है कि, हे युधिष्ठिर ! श्रवणयुक्त द्वादशीकी सब पापोंकी नाशक सब सुखोंकी दायक विधि तुम्हारे आगे कही। जब श्रवणयुक्त एकादशी हो वह भक्तोंको विजय देनेवाली होती है, उसका विजया नाम है ॥ यह प्रारम्भ करके फिर बहुतकाल समाप्त होनेपर वह अदिति गर्भवती हो और नववें मासमें वामनहरिको उत्पन्न करती हुई. यह कहकर यह समस्त हे युधिष्ठिर ! एकादशीको हुआ इससे देवताओंके देवता वामनदेवको यह विजयातिथि इष्ट है, मैंने तुझसे यह एकादशीका फल कहा और श्रवणनक्षत्रयुक्त द्वादशी तो पहले ही कथन कर दी यह उपसंहार (समाप्त) करके एकादशीमेंही व्रत होता है। भागवतके अष्टमस्कन्धमें द्वादशीको वामनकी उत्पत्ति कथन की है, श्रवणनक्षत्रयुक्त श्रोणा द्वादशीको अभिजित् मुहूर्तमें भगवान् हुए, उनके जन्मको ग्रह, नक्षत्र, तारा आदि दाहिने करते हुए द्वादशीको सूर्य मध्यादिनमें स्थित रहे। जिसमें हरिका जन्म हुआ वह तिथि हे नृप ! विजया लिखी है। श्रवणके चन्द्रमामें श्रवणके प्रथम पादको अभिजित् कथन करते हैं, यहां कल्पभेदसे व्यवस्था जाननी चाहिये। इसकी विधि हेमाद्रिमें अग्निपुराणके वाक्यसे लिखी है कि, नदियोंके संगममें स्नान करे, वस्त्रसहित बारह अंगुल ऊंचे सुवर्णके वामनका अर्चन करे, फिर विधिसे पूजन करके यत्नसे सुवर्णके पात्रसे अर्घ्य दें और इन मन्त्रोंसे स्तुति करे कि, नाभिमें पद्मवाले जलमें शयन करनेवाले आपको नमस्कार है, बालवामनरूपी आपको प्रणाम है, आपको अर्घ्य देता हूं, बड़े २ संग्राममें शत्रुओंके स्कन्धमें स्कन्ध रखनेवाले, कमलके किंजल्कोंके समान पीले वस्त्र धारे, चक्र हाथमें

स्कन्धाय चक्रिणे। नमः शार्ङ्गसीरबाणपाणये वामनाय च॥ यज्ञभुक्फलदात्रे च वामनाय नमोनमः। देवेश्वराय देवाय देवसंभूतिकारिणे॥ प्रभवे सर्वदेवानां वामनाय नमोनमः। एवं संपूजयित्वा तं द्वादश्यामुदये रवेः॥ शृंगारसहितं तं तु ब्राह्मणाय निवेदयेत्। वामनः प्रतिगृह्णाति वामनोऽहं ददामि ते॥ वामनं सर्वतोभद्रं द्विजाय प्रतिपादये॥" इति। अनन्तभट्टोऽप्याह। 'श्रवणैकादश्यां जनार्दननामा विष्णुः पूज्यते। श्रवणैकादश्यां वामनावतारः' इति। श्रवणयुतशुक्लैकादश्यलाभे तु दशमीविद्धापि श्रवणयुता कार्या। "दशम्यैकादशी यत्र सा नोपोष्या भवेत्तिथिः। श्रवणेन तु संयुक्ता सा चेत्स्यात्सर्वकामदा॥" इति वह्निपुराणादित्युक्तं मदनरत्ने। पूजा च मध्याह्ने कार्या। 'अह्नो मध्ये वामनो रामरामौ' इति पूर्वोक्तवचनात्। दुग्धव्रतविर्णयः। अत्रैव दुग्धवत् संकल्पयेत्। तदुक्तम्-'दुग्धमाश्वयुजे मासि' इति। अत्रेदं चिन्त्यते-दुग्धव्रते पायसादि वर्ज्यं नवेति। नेति केचित्। न हि प्रकृतिवर्जने विकारवर्जनं युक्तम्। दधिघृतादीनामपि वर्जनापत्तेः॥ न च यत्र प्रकृतिरसोपलम्भस्तद्वर्जनमिति वाच्यम्। मांसविकारस्यौष्ट्रदध्यादेश्चावर्जनापत्तेः। तस्माद्दध्यादिकं पायसादि भक्ष्यमिति। अत्र प्रब्रूमः। यत्र

लिये आपको अर्घ्य देता हूं। शार्ङ्गधनुषधारी, हल बाण हाथमें लिये, यज्ञके भोक्ता और फलके दाता वामनजीको प्रणाम है। देवताओंके ईश्वर, देवरूप, देवताओंके उत्पन्न करनेवाले, सब देवताओंके प्रकाशक वामनजीको प्रणाम है। इस प्रकार वामनकी पूजा करके द्वादशीको सूर्योदयके समय शृंगारसहित उस मूर्त्तिको ब्राह्मणके निमित्त दान करे और यह कहे कि, वामन ही प्रतिग्रह लेते हैं और वामन ही मैं देता हूं, सब प्रकार मंगलके दाता ब्राह्मणको मैं प्रदान करता हूं। अनन्तभट्टने भी लिखा है कि, श्रवणद्वादशीको जनार्दन विष्णुकी और श्रवण एकादशीको वामनदेवकी अर्चा होती है। यदि श्रवणयुक्त पवित्र एकादशी न प्राप्त हो तो श्रवणयुक्त दशमीविद्धा भी ग्रहण करनी। कारण कि, मदनरत्नमें वह्निपुराणके वाक्यसे यह लिखा है कि, दशमीविद्धा एकादशी हो तो व्रत न करे। यदि वह श्रवणनक्षत्रयुक्त हो तो सब कामनाओंको प्रदान करती है। इसका पूजन मध्याह्नके समयमें करना। कारण कि, यह वाक्य भागवतमें कहा है कि, दिनके मध्यमें वामन और दोनों राम प्रकट हुए हैं। इसमें दुग्धव्रतका भी संकल्प करें। सोई कहा है, आश्विनके महीनेमें दुग्धव्रत करना चाहिये। इसमें यह कथन (विचार) करते हैं कि, दुग्धव्रतमें खीर आदिका निषेध है कि नहीं। कोई यह कहते हैं कि, वर्जित नहीं है। कारण कि, प्रकृतिके वर्जनेमें विकारका वर्जना युक्त नहीं हो तो दधि घृत आदिका भी त्याग हो जायगा। यदि कोई यह कहे कि, जिसमें प्रकृतिका रस मिले उसीका त्याग है सो ठीक नहीं। मांसका विकार उष्ट्रके दही आदिका वर्जन नहीं होगा। उससे दहीके तुल्य पायस आदि भी भक्ष्य हैं वर्जित नहीं। इसमें हम यह लिखते हैं कि, जिस विकारमें उस प्रकृतिकी उपलम्भना हो वा सादृश्य हो वहां विकारका

विकारे प्रकृतिरसोपलंभस्तत् प्रत्यभिज्ञा वा तत्र विकारस्यापि निषेधः । अस्ति च मांसविकारे मांसप्रत्यभिज्ञा मांसत्वानपायात् । यत्तु औष्ट्रदध्यादेरनिषेधापत्तिरिति । तन्न; औष्ट्रमिति विकारस्तद्धितेन निषेधात् । तथा च विज्ञानेश्वरः—"औष्ट्रमेकशफं स्त्रैणमारण्यकमथाविकम् ।" इत्यत्र औष्ट्रमिति विकारतद्धिताच्छकृन्मूत्रादीनामपि निषेध इत्याह । नन्वेवं 'सन्धिन्यनिर्दशावत्सागोपयः परिवर्जयेत् ।' इति सन्धिन्यादिक्षीरानिषेधेऽपि दध्यादिग्रहणं स्यात् । सत्यं प्राप्तम् । वचनेन परं निषेधः । तदाहापरार्के शंखः—"क्षीराणि यान्यभक्ष्याणि तद्विकाराशने बुधः । सप्तरात्रं व्रतं कुर्यात्प्रयत्नेन समाहितः ॥" इति । व्रतं गोमूत्रयावकम् । तस्मात्पायसे दुग्धरसोपलम्भाद्वर्जनम् अत एवामिक्षायां दधिसत्त्वेऽपि माधुर्योपलम्भात् पयोरूपत्वमुक्तं मीमांसकैः । तदुक्तम्—'पय एव घनीभूतमामिक्षेत्यभिधीयते ।' इति । दध्यादिषु तु तदभावादवर्जनमिति । एवं दध्यादिव्रते न तक्रादीनां निषेधः । उक्तोभयहेत्वभावादिति केचित् । पूर्वोक्तशंखवचनात्सर्वविकारनिषेध इति युक्तं प्रतीमः ॥ इति दुग्धव्रतम् । भाद्रपदशुक्लचतुर्दश्यामनन्तव्रतनिर्णयः । भाद्रपदशुक्लचतुर्दश्यामनन्तव्रतम् । तत्र त्रिमुहूर्ताप्यौदयिकी ग्राह्येति माधवः । तदुक्तम्—'उदये त्रिमुहूर्तापि ग्राह्यानन्तव्रते तिथिः ।' इति । 'मध्याह्ने भोज्यवेलायाम्' इति कथायां श्रवणात्

भी निषेध कहा है मांसके विकारमें मांसके न होनेसे मांसकी तुल्यता है । जो यह कहा है कि, ऊंटके दही आदिका निषेध न होगा सो भी उचित नहीं । वह औष्ट्रपदसे ऊंटके विकारका भी निषेध है। कारण कि, विकारमें तद्धितका अण् प्रत्यय औष्ट्रपदमें है इससे उष्ट्रके विकारको औष्ट्र कहते हैं । सोई विज्ञानेश्वरने लिखा है कि, ऊंट, घोडा, स्त्री, वनके पशु इनके दूधको त्याग दे। इस वाक्यमें विकारमें अण्प्रत्यय होनेसे इनके मलमूत्र आदिका निषेध नहीं है। यदि कोई शंका करे कि, इसी प्रकार जो गौ गाभन भी दूध देती हो वा जिसको व्याये दश दिन न हुए हैं, जिसका बछडा मृतक हो गया हो उसके दूधको त्याग दे। यहांपर भी दही आदिका स्वीकार होगा यह शंका सत्य है कि, दही आदिका ग्रहण पाया तथापि दूसरे वाक्यसे निषेध है। यही अपरार्कमें शंखने लिखा है कि, भक्षण करने योग्य जो दूध हैं उनके विकारको भक्षण करे तो प्रयत्न और सावधानीसे सात दिन गोमूत्र यावक व्रत करे, इससे खीरमें दूधके रस मिलनेसे निषेध है। इसीसे शिखरनमें दहीके होनेपर भी मधुरताके मिलनेसे मीमांसकोंने आमिक्षाको दूधरूप वर्णन किया ह । सोई लिखा है (कररे) घनीभूत हुए दूधको भी आमिक्षा कहते हैं, दही आदिमें दुग्ध आदिका रस नहीं मिलता इससे उसका त्याग नहीं होता। इससे दहीके निषेधमें तक्रका निषेध नहीं है। कोई कहते हैं दोनोंमें तुल्य हेतु है । पूर्वोक्त शंखके वचनसे सब प्रकारका निषेध प्राप्त है, यह हम जानते हैं। भाद्रपदशुक्ल चतुर्दशीको अनन्तव्रत कहा है, वह तीन मुहूर्त भी हो तो उदयकाल ग्रहण करना यह माधवका मत है । सोई लिखा है कि, अनन्तव्रतमें उदयकी तीन मुहूर्त भी तिथि ग्रहण करनी, मध्याह्नमें भोजनके समय पूजन

'उपरि हि देवेभ्यो धारयति' इतिवद्विधिकल्पनात्। 'पूजाव्रतेषु सर्वेषु मध्याह्नव्यापिनी तिथिः।' इति माधवीयवचनात् 'मध्याह्नव्यापिनी ग्राह्या' इति तु दिवोदासः। प्रतापमार्तण्डेऽप्येवम्। इदमेव च युक्तम्। निर्णयामृते तु-'घटिकामात्राप्यौदयिकी' इत्युक्तम्। "तथा भाद्रपदस्यान्ते चतुर्दश्यां द्विजोत्तम। पौर्णमास्याः समायोगे व्रतं चानन्तकं चरेत्॥" इति भविष्योक्तेः। "मुहूर्तमपि चेद्भाद्रे पूर्णिमायां चतुर्दशी। संपूर्णां तां विदुस्तस्यां पूजयेद्विष्णुमव्ययम्॥" इति स्कान्दाच्चेति। अत्र मूलं चिन्त्यम्। द्व्यहे औदयिकत्वे पूर्णत्वात् पूर्वेति युक्तम्। तत्त्वं तु विध्यर्थवादयोर्भिन्नार्थत्वे. एकवाक्यतायोगात्। संदिग्धेषु एकवाक्यत्वात् इति न्यायेन पूर्वा परा वा मध्याह्नव्यापिन्येव मुख्या। माधवस्तु सामान्यवाक्यान्निर्णयं कुर्वन् भ्रान्त एव। अनन्तव्रतस्य पुराणान्तरेष्वभावान्निबन्धान्तरेष्वभावाच्च वचनं निर्मूलमेवेति। अथागस्त्यार्घ्यः। तत्कालो व्रतहेमाद्रौ भविष्ये-"कन्यायामागते सूर्ये अर्वाग्वै सप्तमे दिने। कन्यायां समनुप्राप्ते ह्यर्घकालो निवर्तते॥" तेन उदयोत्तरमपि सप्तदिनमध्ये इत्यर्थः। यत्पाद्मे-"आसप्तरात्रादुदयाद्यमस्य दातव्यमेतत्सकलं नरेण। यावत्समाः सप्त दशाथवा स्युरथोर्ध्वमप्यत्र वदन्ति

करे, यह कथामें लिखा है। और मध्याह्नसे ऊपर देवताओंको दे, इसके तुल्य विधिकी कल्पनासे और सम्पूर्ण पूजाओंके व्रतोंमें मध्याह्नव्यापिनी तिथि ग्रहण करनी। इस माधवके कथनसे मध्याह्नव्यापिनी तिथि लेनी, यह दिवोदासका मत है। प्रतापमार्तण्डमें भी इसी प्रकार लिखा है। निर्णयामृतमें तो यह लिखा है कि, घडीभर भी उदयकालकी तिथि लेनी। कारण कि, भविष्यपुराणमें लिखा है कि, भाद्रपदके अन्तमें और पूर्णिमाके योगमें हे द्विजोंमें श्रेष्ठ! अनन्तव्रत करना। स्कन्दपुराणमें लिखा है कि, भाद्रपदमें पूर्णिमामें मुहूर्तमात्र भी चतुर्दशी हो तो उसको सम्पूर्ण जानना और उसमें अविनाशी विष्णुका पूजन करना चाहिये। इन दोनों वाक्योंका मूल नहीं है। सिद्धान्त तो यह है कि, जहां विधिवाक्य और अर्थवाद वाक्योंका भिन्न भिन्न अर्थ हो तो वहां एकवाक्यता नहीं होती है। इससे और जहाँ शंका हो वहां वाक्यशेषसे निर्णय करना चाहिये। इस वाक्यसे प्रथम वा पिछली मध्याह्नव्यापिनी तिथि ही मुख्य है। माधव तो सामान्य वाक्योंसे निर्णय करते हुए यहां भ्रान्त हैं और दूसरे पुराणों और ग्रन्थोंमें अनन्तका व्रत नहीं है इससे यह वाक्य अप्रमाण है। दोनों दिन उदयव्यापिनी हो तो पूर्ण होनेसे प्रथमकी ही ग्रहण करनी यही युक्त है। अब अगस्त्यका अर्घ्य लिखते हैं-उसका समय व्रतहेमाद्रिमें भविष्यपुराणके वाक्यसे लिखा है कि, जबतक कन्याका सूर्य हो उससे सात दिन प्रथम अर्घ्य दे और जब कन्याके सूर्य आ जायँ तब अर्घ्यका समय निवृत्त हो जाता है इससे अगस्त्योदयके पीछे सात दिनके मध्यमें अर्घ्य देना यही अर्थ है। यही पद्मपुराणमें कहा है कि, अगस्त्योदयसे सात रात्रतक मनुष्यको अर्घ्य देना चाहिये और वर्ष पर्यंत दे और कोई यह कहते हैं कि, उसके उपरान्त भी

केचित् ॥" यमस्यागस्त्यस्य । उदयकालश्च दिवोदासीये उक्तः । "उदेति याम्यां हरिसंक्रमाद्रवेरेकाधिके विंशतिमेत्यगस्त्यः । स सप्तमेऽस्तं वृषसंक्रमाच्च प्रयाति गर्गादिभिरभ्यभाणि ॥" अत्र विधिर्विष्णुरहस्ये-"काशपुष्पमयीं रम्यां कृत्वा मूर्तिं तु वारुणैः । प्रदोषे विन्यसेत्तां तु पूर्णकुम्भे स्वलंकृताम् ॥ कुम्भस्थां पूजयेत्तां तु पुष्पधूपविलेपनैः । दध्यक्षतबलिं दद्याद्रात्रौ कुर्यात्प्रजागरम् ॥ २ ॥" पूजा च वक्ष्यमाणार्घ्यमन्त्रेण कार्या । "प्रभाते तां समादाय यायात्पुण्यं जलाशयम् । निशावसाने तां पश्यञ्जलान्ते प्रतिमां मुनेः॥ अर्घ्यं दद्यादगस्त्याय भक्त्या सम्यगुपोषितः ॥" मात्स्ये तु-'अंगुष्ठमात्रं पुरुषं तथैव सौवर्णमत्यायतबाहुदण्डम् ।' पूर्वं काशमयत्वमशक्तौ "चतुर्भुजं कुम्भमुखे निधाय धान्यानि सप्तांकुरसंयुतानि । सकाशपुष्पाक्षतशुक्तियुक्तं मन्त्रेण दद्याद्द्विजपुंगवाय ॥ धेनुं बहुक्षीरवतीं च दद्यात्सवस्त्रघंटाभरणां द्विजाय ॥" भविष्ये-"विरूढैः सप्तधान्यैश्च वंशपात्रनिधापितैः । सौवर्णरूप्यपात्रेण ताम्रवंशमयेन वा ॥ मूर्ध्नि स्थितेन नम्रेण जानुभ्यां धरणीं गतः ॥" विष्णुरहस्ये-"अगस्त्यः खनमानेति पठन्मन्त्रमिमं मुनेः । अर्घ्यं दद्यादगस्त्याय शूद्रे मन्त्रविधिस्त्वयम् ॥ काशपुष्पप्रतीकाश वह्निमारुतसंभव । मित्रावरुणयोः पुत्र कुम्भयोने नमोऽस्तु ते ॥ विंध्यवृद्धिक्षयकर मेघतोयविषापह । रत्न-

---

दे । उदयका काल दिवोदासीय ग्रन्थमें कहा है कि, अगस्त्यमुनि दाक्षिण दिशामें सिंहसंक्रांतिसे इक्कीस २१ दिन उदय होते हैं और वृषकी संक्रांतिसे सातवें दिनपर अस्त हो जाते हैं यह गर्ग आदि मुनियोंने लिखा है । इसकी विधि विष्णुरहस्यमें लिखी है । काशके फूलोंकी रमणीक अगस्त्यकी मूर्ति बनाकर प्रदोषके समय उसका अलंकार करके जलसे पूर्ण घटपर उसे स्थापन करे । घडेपर रक्खी हुई उसको फूल, धूप, चन्दनसे अर्चन करे, दही और चावलकी बलि दे, रात्रिको जागरण करे, पूजा उस मन्त्रके अर्घ्यसे करे जो आगे लिखेंगे । प्रातःकालके समय उसको लेकर पवित्र जलाशय (नदी आदि) में जाय, जलके निकट प्रभातके समय अगस्त्यमुनिकी प्रतिमाको दर्शन करता हुआ भली प्रकार व्रत कर अगस्त्यमुनिको अर्घ्य दे । मत्स्यपुराणमें तो यह लिखा है कि, अंगूठेके प्रमाणकी ऐसी सुवर्णकी मूर्ति बनावे जिसकी लम्बी भुजा हों, चतुर्भुजी उस मूर्तिको घटपर रखकर सात दूबके अंकुर और अन्न, काश, फूल, चावल सीपिसे युक्त उस मूर्तिको ब्राह्मणके निमित्त दे । पहिले काशकी मूर्ति जो कही वह शक्तिहीनतामें जाननी और वस्त्र घण्टा भूषणसहित और बहुत दूध देती हुई गौ ब्राह्मणको दे । भविष्यपुराणमें कहा है कि, वंशपात्रमें रक्खे हुए सप्तधान्योंसे सुवर्ण वा चांदीके पात्रको मस्तकपर रखकर नम्र होकर गोडोंको पृथ्वीपर रखकर विष्णुरहस्यमें लिखे हुए इस (अगस्त्यः खनमान इत्यादि) वाक्यसे अगस्त्यको अर्घ्य दे कि, अगस्त्यको प्रणाम है । यह मन्त्रविधि शूद्रके निमित्त है कि, काश फूलके तुल्य प्रकाशमान वह्निमारुतसे जन्म मित्रावरुणके पुत्र अगस्त्यजीको प्रणाम है । हे विंध्याचलकी वृद्धिके क्षय करनेवाले! हे मेघजलोंके विषको दूर करनेवाले! हे रत्नोंके प्रिय! हे देवताओंके ईश्वर!

वल्लभ देवेश लंकावास नमोऽस्तु ते ॥ वातापी भक्षितो येन समुद्रः शोषितः पुरा। लोपामुद्रापतिः श्रीमान्योऽसौ तस्मै नमोनमः ॥ येनोदितेन पापानि विलयं यांति व्याधयः। तस्मै नमोऽस्त्वगस्त्याय साशिष्याय च पुत्रिणे ॥ 'अगस्त्यः खनमानेति विप्रोऽर्घ्यं विनिवेदयेत्। राजपुत्रि महाभागे ऋषिपत्नि वरानने ॥ लोपामुद्रे नमस्तुभ्यमर्घ्यं मे प्रतिगृह्यताम् । दत्त्वैवमर्घ्यं कौरव्य प्रणिपत्य विसर्जयेत् ॥ अर्चितस्त्वं यथाशक्ति नमोऽगस्त्यमहर्षये । ऐहिकामुष्मिकीं दत्त्वा कार्यसिद्धिं व्रजस्व मे ॥ विसर्जयित्वागस्त्यं तं विप्राय प्रतिपादयेत् । अगस्त्यो मे मनस्थोऽस्तु अगस्त्योऽस्मिन् घटे स्थितः॥ अगस्त्यो द्विजरूपेण प्रतिगृह्णातु सत्कृतः॥१०॥" दानमन्त्रः—"अगस्त्यः सप्तजन्माघं नाशयत्वावयोरयम् । अतुलं विमलं सौख्यं प्रयच्छ त्वं महामुने" ॥ इति । ग्रहमन्त्रः विष्णुरहस्ये—"त्यजेदगस्त्यमुद्दिश्य धान्यमेकं फलं रसम्। होमं कृत्वा ततः पश्चाद्वर्जयेन्मानवः फलम्" ॥ होमश्चार्घ्यमन्त्रेणाज्येन । भविष्ये—"दत्त्वार्घ्यं सप्तवर्षाणि क्रमेणानेन पाण्डव। ब्राह्मणः स्याच्चतुर्वेदः क्षत्रियः पृथिवीपतिः । वैश्ये च धान्यनिष्पत्तिः शूद्रश्च धनवान् भवेत् । यावदायुश्च यः कुर्यात्स परं ब्रह्म गच्छति" ॥ २ ॥ इत्यगस्त्यार्घ्यः ॥ भाद्रपौर्णमास्यां श्राद्धम् । भाद्रपौर्णमास्यां प्रपितामहात्परांस्त्रीनुद्दिश्य श्राद्धं कार्यम्। तदुक्तं हेमाद्रौ ब्राह्ममार्कण्डेययोः—"नान्दीमुखानां प्रत्यब्दं कन्याराशिगते रवौ।

हे लंकाके निवासी! आपको प्रणाम है। जिन्होंने वातापीको भक्षण किया और पूर्वसमुद्रको शोष लिया उन लोपामुद्राके पतिके निमित्त प्रणाम है। जिनके उदयसे पाप और व्याधि नष्ट होती हैं, शिष्य पुत्रोंसहित उनको नमस्कार है। 'अगस्त्यः खनमान०' इस मन्त्रसे ब्राह्मण अर्घ्य दे। हे राजपुत्रि, हे महाभागे! हे ऋषिपत्नी, हे लोपामुद्रे, हे सुमुखि! आपको प्रणाम है। मेरे इस अर्घ्यको स्वीकार करो। हे कुरुवंशी युधिष्ठिर! इस प्रकार अर्घ्य दे और प्रणाम करके फिर विसर्जन करे, यथाशक्ति आपका मैंने पूजन किया, महर्षि अगस्त्यको प्रणाम है। इस लोक और परलोकके कार्योंकी सिद्धिको देकर आप गमन करें। इस प्रकार अगस्त्यमुनेका विसर्जन करके ब्राह्मणको देना। दानका मन्त्र यह है कि, अगस्त्य मेरे मनमें स्थित हो, घटमें अगस्त्य स्थित है, अगस्त्य ही द्विजरूपसे सत्कारपूर्वक ग्रहण करे, अगस्त्य हम दोनोंके सप्तजन्मके पाप नष्ट करो। हे महामुने! अतुल और निर्मल सुख दीजिये। यह प्रतिग्रहका मन्त्र है। विष्णुरहस्यमें कहा है कि, अगस्त्यमुनिके निमित्त एक अन्न, फल, रसको त्याग देना और होमके पश्चात्से मनुष्य फलको त्यागे और होम अर्घ्यके मन्त्र और घीसे करे। भविष्यपुराणमें लिखा है कि, हे पांडव! इस प्रकार सात वर्षतक अर्घ्य देकर ब्राह्मण चतुर्वेदी, क्षत्रिय राजा, वैश्य अन्नका अधिपति और शूद्र धनवान् होता है और जो अवस्थाभर अर्घ्य दे उसको परब्रह्मकी प्राप्ति होती है। इति अगस्त्यार्घ्यः। भाद्रपदकी पूर्णिमाको प्रपितामहसे अगले तीनका श्राद्ध करे, सोई हेमाद्रिमें ब्राह्म

पौर्णमास्यां तु कर्तव्यं वराहवचनं यथा॥" इति। नान्दीमुखत्वं चोक्तं ब्राह्मे-" पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः। त्रयो ह्यश्रुमुखा ह्येते पितरः परिकीर्तिताः॥ तेभ्यः पूर्वतरा ये च प्रजावन्तः सुखैधिताः। ते तु नांदीमुखा नांदी समृद्धिरिति कथ्यते" ॥ २ ॥ एतच्च 'प्रत्यब्दम्' इत्युक्तेः। पक्षश्राद्धपक्षे सकृन्महालयपक्षे चावश्यकमिति प्रयोगपारिजाते। अत्र मातामहा अपि कार्याः। 'पितरो यत्र पूज्यन्ते तत्र मातामहा अपि।' इति धौम्योक्तेः। पितृशब्दस्य च जनकपरत्वे बहुवचनविरोधेन पितृभावापन्नपरत्वात्। वार्षिके तु वचनान्निवृत्तिः। न च जीवत्पितृकस्यान्वष्टकायां मातृश्राद्धे तदापत्तिः। इष्टापत्तेः। अत एव स उक्तश्राद्धेषु स्वमातृमातामहयोर्दद्यादिति मदनरत्नकालादर्शौ। एतज्जीवत्पितृकश्राद्धे वक्ष्यामः। केचित्तु-अजहल्लक्षणया पित्रादयो यत्रतत्र मातामहस्तेनात्र नेत्याहुः। न चात्र नाम्ना नान्दीश्राद्धधर्मातिदेशः। वैष्णवादिशब्दवद्देवतापरस्य कर्मनामत्वाभावात्। नापि नान्दीमुखत्वं पितृविशेषणम्। पारिभाषिकत्वादिति दिक्। तथा निर्णयदीपे गार्ग्यः-"पौर्णमासीषु सर्वासु निषिद्धं पिण्डपातनम्। वर्जयित्वा प्रौष्ठपदीं यथा दर्शस्तथैव सा॥" इति।इति कमलाकरभट्टकृते निर्णयसिन्धौ भाद्रपदमासः समाप्तः॥

और मार्कण्डेयपुराणके वाक्यसे लिखा है कि, वाराहके कथनानुसार कन्याराशिके सूर्यमें नान्दीमुख पितरोंका श्राद्ध पूर्णिमाको प्रतिवर्ष करना। ब्रह्मपुराणमें नान्दीमुख ये लिखे हैं कि, पिता, पितामह, प्रपितामह ये तीन पितर अश्रुमुख लिखे हैं। इनसे पहिले जो तीन प्रजावाले और सुखसे बढ़े हैं, वे पितर नान्दीमुख कहे हैं। जिसको नान्दी और समृद्धि कहते हैं। यह श्राद्ध प्रतिवर्ष कहनेसे पक्षश्राद्धके पक्षमें एक बार और महालयमें करना आवश्यक है। यह प्रयोग पारिजातमें लिखा है। इसमें मातामहोंका भी श्राद्ध करे, कारण कि, धौम्यऋषिने लिखा है कि, जहां पितरोंका पूजन है वहां मातामहोंका भी पूजन है। यदि पितृशब्दको जनकपर ही मानोगे तो 'पितरः' यह बहुवचन नहीं बन सकेगा इससे पितृशब्द पितृत्वधर्मका बोधक है, वार्षिक श्राद्धमें तो वाक्यसे निवृत्ति है। यदि कोई शंका करे कि, जिसका पिता जीता है उसके अन्वष्टका मातृश्राद्धमें भी निवृत्ति प्राप्त हो जायगी, उसका उत्तर यही है कि, वहां भी निवृत्ति ही इष्ट है। इसीसे मातृश्राद्ध लिखा है, श्राद्धोंमें अपनी माता और मातामहको देना। और मदनरत्न और कालादर्शमें कहा है कि, यह जीवत्पितृकश्राद्धमें कहेंगे। जो कोई कहे कि, अजहल्लक्षणासे पित्रादिक जहां तहां मातामह हैं सो भी नहीं। यदि कोई सन्देह करे कि, यहां नामसे नान्दीश्राद्धके धर्मको मानेंगे सो भी उचित नहीं। वैष्णव आदि शब्दके समान देवतावाची शब्द कर्मका बोधक नहीं हो सकता और नान्दीमुख शब्द पितृशब्दका विशेषण भी नहीं हो सकता। कारण कि, नांदीमुख शब्द पारिभाषिक संकेत है; सोई निर्णयदीपमें गर्गका कथन है कि, भाद्रपदकी पूर्णिमाको त्यागकर सब पूर्णिमाओंमें पिण्डदानका निषेध है, वह तो अमावस्याके समान जानना चाहिये। इति श्रीमीमांसकरामकृष्णभट्टात्मज-

अथाश्विनमासः ॥ कन्यासंक्रांतिनिर्णयः ॥ कन्यासंक्रमे पराः षोडशघटिकाः पुण्याः। शेषं प्रागवत् ॥ अथ महालयनिर्णयः। तत्र पृथ्वीचन्द्रोदये वृद्धमनुः—"आषाढीमवधिं कृत्वा पञ्चमं पक्षमाश्रिताः। कांक्षन्ति पितरः क्लिष्टा अन्नमप्यन्वहं जलम्" ॥ कन्यायोगे पुण्यतमत्वमाह शाट्यायनिः—'कन्यास्थार्कान्वितः पक्षः सोऽत्यन्तं पुण्यमुच्यते।' इति। अत्र विशेषमाह वृद्धमनुः—"मध्ये वा यदि वाप्यन्ते यत्र कन्यां व्रजेद्रविः। स पक्षः सकलः श्रेष्ठः श्राद्धषोडशकं प्रति" ॥ तथा ब्रह्माण्डमार्कण्डेययोः—"कन्यागते सवितरि दिनानि दश पञ्च च। पार्वणेनेह विधिना श्राद्धं तत्र विधीयते" ॥ तथा तत्रैव षोडशदिनान्युक्तानि—"कन्यागते सवितरि यान्यहानि तु षोडश। ऋतुभिस्तानि तुल्यानि देवो नारायणोऽब्रवीत् ॥" अत्र हेमाद्रिः षोडशत्वं त्रेधा व्याचख्यौ। तिथिवृद्ध्या पक्षस्य षोडशदिनात्मकत्वं श्राद्धवृद्ध्यर्थमेकः पक्षः। भाद्रपदपूर्णिमया सहेति द्वितीयः। आश्विनशुक्लप्रतिपदा सहेति तृतीयः। अन्त्य एव तु युक्तः। "अहः षोडशकं यत्तु शुक्लप्रतिपदा सह। चन्द्रक्षयाविशेषेण सापि दर्शात्मिका स्मृता ॥" इति देवलोक्तेः। तत्र पञ्च पक्षाः। तदुक्तं हेमाद्रौ ब्राह्मे—"आश्वयुक्कृष्णपक्षे तु श्राद्धं कार्यं दिनेदिने। त्रिभागहीनं पक्षं वा त्रिभागं त्वर्धमेव वा" ॥ दिनेदिने इति पक्षपर्यन्तत्वमुक्तम्। त्रिभागहीनमिति पञ्चम्यादिपक्षः। त्रिभागमिति दशम्यादिपक्षः। त्रिभागहीनमिति

कमलाकरभट्टकृते निर्णयसिन्धौ भाषाटीकायां भाद्रपदमासः समाप्तः ॥ कन्याकी संक्रांतिमें अगली सोलह घड़ी पुण्यकाल है शेष पहली संक्रांतियोंके समान जानना। अब महालयका निर्णय लिखते हैं—उसमें पृथ्वीचन्द्रोदयमें वृद्धमनुने लिखा है कि, आषाढकी पूर्णिमासे पांचवें पक्षमें पितर अन्न और जलकी प्रतिदिन इच्छा करते हैं। कन्याके योगमें शाट्यायनिमुनिने अत्यन्त पुण्य लिखा है कि, कन्याराशिके सूर्यसे युक्त पक्ष अत्यन्त शुद्ध लिखा है। इसमें विशेष वृद्धमनुने लिखा है कि, मध्यमें वा अन्तमें जब कन्याका सूर्य प्राप्त हो तो सोलह श्राद्धोंके निमित्त सब पक्ष श्रेष्ठ है। इसी प्रकार ब्रह्माण्ड और मार्कण्डेय पुराणमें कहा है कि, कन्याके सूर्यमें पन्द्रह दिनोंमें पार्वणकी विधिसे श्राद्ध करना चाहिये। ऐसे ही वहां सोलह दिन लिखे हैं कि, कन्याके सूर्यमें जो सोलह दिन लिखे हैं वे यज्ञोंके समान हैं यह नारायणदेवने लिखा है। इसमें हेमाद्रिने यह कहा है कि, सोलह तीन प्रकारके होते हैं कि, १ तिथिके बढनेसे पक्षके सोलह दिन हो जायँगे तो १ श्राद्ध वृद्धिको प्राप्त हो जायगा, २ भाद्रपदकी पूर्णिमाके मिलानेसे दूसरा प्रकार, ३ आश्विनशुक्ल प्रतिपदाको मिलाकर तीसरा प्रकार, इन तीनोंमें तीसरा पक्ष युक्त है। कारण कि, देवलने कहा है कि, शुक्लपक्षकी प्रतिपदासहित सोलह दिन हैं। कारण कि, उसमें चन्द्रमाका क्षय होनेसे पडवा भी अमावस्यारूप कही है। इसमें पांच पक्ष हैं, यही हेमाद्रिमें ब्रह्मपुराणका कथन है कि, आश्विनके कृष्णपक्षमें प्रतिदिन श्राद्ध करे वा त्रिभागहीन (पञ्चमीसे) में करे वा पक्षभर करे वा त्रिभाग (दशमीसे) करे वा अर्द्ध (अष्टमीसे) करे। 'दिनेदिने' इससे पक्षपर्यन्त कहा है।

चतुर्दशीसहितप्रतिपदादिचतुष्टयवर्जनाभिप्रायेणेति कल्पतरुः । अत्र दिनपदं तिथिपरं वीप्सया तत्पक्षीयतिथित्वं श्राद्धव्याप्यतावच्छेदकम् । तेन पञ्चदशतिथिव्यापि श्राद्धं सिद्ध्यति । तेन चतुर्दशीनिषेधोऽन्यकृष्णपक्षपर इति गौडाः । तन्न ॥ "श्राद्धं शस्त्रहतस्यैव चतुर्दश्यां महालये ।" इत्यादिविरोधात् । यच्च कश्चित् पूरणप्रत्ययलोपेन तृतीयभागहीनं षष्ठ्यादिपक्षतृतीयभागमेकादश्यादि तदर्द्धं त्रयोदश्यादि उत्तरोत्तरं लघुकालोक्तेरिति । तन्न । गौतमादिवचनेन मूलकल्पनालाघवात् । पक्षमित्यनन्वयापत्तेश्च । 'पञ्चम्यूर्ध्वं च तत्रापि दशम्यूर्ध्वं ततोऽप्यति ।' इति विष्णुधर्मोक्तेः । षष्ठ्याद्येकादश्यादिपक्षावपि ज्ञेयाविति तत्त्वम् । कालादर्शेऽपि–"पक्षाद्यादि च दर्शान्तं पञ्चम्यादि दिगादि च । अष्टम्यादि यथाशक्ति कुर्यादापरपाक्षिकम् ॥" पक्षादिः प्रतिपत् । दिग्दशमी । दर्शांतमिति सर्वत्र । गौतमोऽपि–'अथापरपक्षे श्राद्धं पितृभ्यो दद्यात् । पंचम्यादिदर्शांतमष्टम्यादिदशम्यादिसर्वस्मिंश्च' इति । तथैकस्मिन्नपि दिने श्राद्धमुक्तं हेमाद्रौ नागरखंडे– "आषाढ्याः पंचमे पक्षे कन्यासंस्थे दिवाकरे । यो वै श्राद्धं नरः कुर्यादेकस्मिन्नपि वासरे ॥ तस्य संवत्सरं यावत्संतृप्ताः पितरो ध्रुवम् ॥" इति । अत्र शक्ताशक्तपरा व्यवस्थेति प्राञ्चः । तन्न । तद्वाचकपदाभावात् त्रयोदश्यादिपक्ष एव नित्यः ।

त्रिभागहीन इससे दशमी आदि है । कल्पतरु तो यह लिखते हैं कि, त्रिभागहीनसे चतुर्दशी सहित प्रतिपदा आदि चार तिथियोंका त्याग है । यहां दिनपद तिथिपरत्व है वीप्सा (दिने दिने) से उस पक्षकी सम्पूर्णतिथि श्राद्धकी हैं यह सिद्ध हुआ, इससे पन्द्रह तिथियोंमें व्यापक (पूर्ण) श्राद्ध सिद्ध होता है, इससे निषेध चतुर्दशीका और पक्षकी तिथिका है इसका नहीं यह गौडोंका मत है, सो ठीक नहीं । कारण कि, इसमें इस वाक्यका विरोध है कि, शस्त्रसे मृतकका श्राद्ध महालयकी चतुर्दशीको होता है । जो कोई यह कहते हैं कि, पूरणप्रत्ययके लोपसे तीसरे भागसे हीन षष्ठी आदि पक्ष और तृतीयभाग एकादशी आदि उसका अर्ध त्रयोदशी आदि पक्ष उत्तरोत्तर क्रमसे लघु लेना कहा है, सो ठीक नहीं । गौतम आदिके वचनसे और लाघवसे न्यूनकी कल्पना नहीं कर सकते और इसमें पक्षका भी अन्वय यथार्थ नहीं होगा और विष्णुधर्ममें यह लिखा है कि, पञ्चमी और दशमीसे उपरान्त श्राद्ध करके षष्ठी और एकादशी आदि भी पक्ष हैं यह निचोड है । कालादर्शमें भी कहा है कि, प्रतिपदासे अमावस्यातक वा पञ्चमी, अष्टमी, दशमीसे अमावस्यातक कृष्णपक्षमें श्राद्ध करे । गौतमने भी कहा है कि, अपरपक्षमें पञ्चमी, अष्टमी, दशमीसे अमावस्यातक वा सम्पूर्ण दिनोंमें पितरोंको श्राद्ध देना । ऐसे ही एक दिन भी श्राद्ध हेमाद्रिके नागरखण्डमें लिखा है कि, आषाढकी पूर्णिमासे पांचवें पक्ष और कन्याके सूर्यमें जो मनुष्य एक दिन भी श्राद्ध करता है उसके पितर एक वर्षतक निश्चय तृप्त होते हैं । इसमें प्राचीनोंने यह कहा है कि, यह व्यवस्था समर्थ और असमर्थके भेदसे है सो ठीक नहीं । क्योंकि, समर्थ और असमर्थका वाची कोई पद नहीं होता, त्रयोदशी पक्ष ही नित्य है वहां ही निन्दा न करनेमें श्रवण किया है । ब्रह्मपुराणके वाक्यमें पढे हुए एवकारसे

तत्रैव निंदाश्रुतेः । ब्राह्मे-एवकारेण तस्यैव पंचमपक्षायोगव्यवच्छेदोक्तेरिति गौडाः। तन्न । 'एकस्मिन्नपि' इति विरोधात् । तेन फलभूयार्थिनान्यानि कार्याणीति तत्त्वम् ॥ तत्र चतुर्दशीश्राद्धाभावे पञ्चम्यादिदशम्यादिपक्षौ तत्सत्त्वे षष्ठ्याद्येकादश्यादिकौ । एवं चतुर्दश्यभावे द्वादश्यादिः । तत्सत्त्वे त्रयोदश्यादिरिति व्यवस्था ॥ विधवाकर्तृकश्राद्धनिर्णयः । विधवायास्तु विशेषः स्मृतिसंग्रहे-"चत्वारः पार्वणाः प्रोक्ता विधवायाः सदैव हि । स्वभर्तृश्वशुरादीनां मातापित्रोस्तथैव च ॥ ततो मातामहानां च श्राद्धदानमुपक्रमेत् ॥" तथा-'श्वश्रूणां च विशेषेण मातामह्यास्तथैव च ।' इति । अशक्तौ तु स्मृतिरत्नावल्याम्-"स्वभर्तृप्रभृतित्रिभ्यः स्वपितृभ्यस्तथैव च । विधवा कारयेच्छ्राद्धं यथाकालमतन्द्रिता ॥" विधवा स्वयं संकल्पं कृत्वान्यब्राह्मणद्वारा कारयेदित्युक्तं प्रयोगपारिजाते । सकृन्महालये च वर्ज्यातिथ्याद्युक्तं पृथ्वीचन्द्रोदयप्रयोगपारिजातादिषु । वसिष्ठः-"नन्दायां भार्गवदिने चतुर्दश्यां त्रिजन्मसु । एषु श्राद्धं न कुर्वीत गृही पुत्रधनक्षयात् ॥" जन्मभं तत्पूर्वोत्तरे च त्रिजन्मनि । वृद्धगार्ग्यः-"प्राजापत्ये च पौष्णे च पित्र्यर्क्षे भार्गवे तथा । यस्तु श्राद्धं प्रकुर्वीत तस्य पुत्रो विनश्यति ॥" प्राजापत्यं रोहिणी । पौष्णं रेवती । पित्र्यं मघा । अन्यान्यपि प्रत्यरादीनि तत्रैव ज्ञेयानि । केचित्तु-"नन्दाश्वकामरव्यारभृग्वग्निपितृकालभे ।

उसको ही पांचवां पक्ष अयोग निश्चयसे लिखा है, यह गौडोंका कथन है सो उचित नहीं। इसमें एक दिन भी करे, इस पूर्ववाक्यका विरोध है, इससे अधिक फलके अभिलाषी और श्राद्धोंको न करे यही निचोड है। यहां चतुर्दशी श्राद्धके अभावमें पंचमी आदि और दशमी आदि पक्ष ग्रहण करने और चतुर्दशी श्राद्ध भी हो तो षष्ठी एकादशी आदि ग्रहण करने। इस प्रकार चतुर्दशीके अभावमें द्वादशी आदि और चतुर्दशी हो तो त्रयोदशी आदि पक्ष ग्रहण करने, यही व्यवस्था है। विधवाके निमित्त विशेष तो स्मृतिसंग्रहमें यह लिखा है कि, विधवाको सदैव चार पार्वण लिखे हैं कि, अपने पति और श्वशुर आदिकोंका, माता पिताओंका, मातामहोंका श्राद्ध करे और ऐसे ही श्वश्रू और नानीका श्राद्ध करे। सामर्थ्य न हो तो स्मृतिरत्नावलीमें यह लिखा है कि, अपने पति आदि तीन और अपने पिता आदि तीनके श्राद्धको आलस्य त्यागकर विधवाको करना चाहिये। अर्थात् आप संकल्प करके ब्राह्मणद्वारा श्राद्ध करवा दे।प्रयोगपारिजातमें यही लिखा है कि, महालयमें वर्जने योग्य तिथि आदि पृथ्वीचन्द्रोदय, माधव, प्रयोगपारिजात आदिमें लिखा है। वसिष्ठका वाक्य है कि, शुक्रवारकी नन्दाको और उस चतुर्दशीको जिनमें अपने जन्मका नक्षत्र वा जन्मनक्षत्रसे पहिला वा पिछला नक्षत्र हो गृहस्थी श्राद्ध न करे। करनेसे पुत्र तथा धनका क्षय होता है। वृद्ध गार्ग्यने कहा है कि, रोहिणी, रेवती, मघा, शुक्रवारको जो श्राद्ध करता है उसका पुत्र नष्ट होता है और भी प्रत्यरा आदि नक्षत्र वहां ही जानने। कोई तो यह कहते हैं कि, प्रतिपदा, षष्ठी, एकादशी, सप्तमी, त्रयोदशी, सूर्य, मंगल, शुक्र, कृत्तिका, मघा, भरणी, गण्ड,

गण्डे वैधृतिपाते च पिण्डास्त्याज्याः सुतेप्सुभिः॥" इति संग्रहात्। नन्दा प्रतिपत्षष्ठ्येकादश्यः। अश्वः सप्तमी। कामस्त्रयोदशी। आरो भौमः॥ भृगुः शुक्रः। अग्निभं कृत्तिका। कालभं भरणी। तत्र पिण्डास्त्याज्या इत्याहुः। तत्र मूलं मृग्यम्। एतच्च सकृन्महालयविषयम्। "सकृन्महालये काम्ये पुनः श्राद्धेऽखिलेषु च। अतीतविषये चैव सर्वमेतद्विचिन्तयेत्॥" इति पृथ्वीचन्द्रोदये नारदोक्तेः। अस्यापवादो हेमाद्रौ पृथ्वीचन्द्रोदये च—"अमापाते भरण्यां च द्वादश्यां पक्षमध्यके। तथा तिथिं च नक्षत्रं वारं च न विचारयेत्॥" पराशरमाधवीयमदनपारिजातादिषु चैवम्। निर्णयदीपिकायां तु—'पितृमृताहे निषिद्धदिनेऽपि सकृन्महालयः कार्यः' इत्युक्तम्। "आषाढ्याः पञ्चमे पक्षे कन्यासंस्थे दिवाकरे। मृताहनि पितुर्यो वै श्राद्धं दास्यति मानवः। तस्य संवत्सरं यावत्संतृप्ताः पितरो ध्रुवम्॥" इति नागरखण्डोक्तेः॥ "या तिथिर्यस्य मासस्य मृताहे तु प्रवर्तते। सा तिथिः पितृपक्षे तु पूजनीया प्रयत्नतः॥ तिथिच्छेदो न कर्तव्यो विनाशौचं यदृच्छया। पिण्डश्राद्धं च कर्तव्यं विच्छित्तिं नैव कारयेत्॥ अशक्तः पक्षमध्ये तु करोत्येकदिने यदा। निषिद्धेऽपि दिने कुर्यात्पिण्डदानं यथाविधि" ॥ ३ ॥ इति कात्यायनोक्तेश्च। अत्र मूलं चिन्त्यम्। पक्षश्राद्धे नन्दादिषु न पिण्डनिषेधः। तथा पक्षश्राद्धकरणेऽपि न नन्दादिषु पिण्डनिषेध इत्याह पराशरमाधवीये कार्ष्णाजिनिः- "नभस्यस्यापरे पक्षे श्राद्धं कार्यं दिनेदिने। नैव नन्दादिवर्ज्यं स्यान्नैव निन्द्या चतु-

---

वैधृति, व्यतिपातमें पुत्रकी इच्छावालेको पिंड न देना चाहिये, इन वाक्योंका मूल नहीं मिलता। यह बात भी सकृत् (एकदिनके) महालयमें है। कारण कि, पृथ्वीचन्द्रोदय ग्रन्थमें नारदका यह वाक्य है कि, एक दिनके महालयमें काम्यश्राद्धमें और दुवारा श्राद्धमें और भूले श्राद्धमें इन सबकी चिन्ता करे। इसका अपवाद हेमाद्रिमें और पृथ्वीचन्द्रोदयग्रन्थमें कहा है कि, अमा,पात, भरणी, द्वादशी, पक्षमध्यमें तिथि, नक्षत्र और वारका विचार न करे और पराशरमाधवीय, मदनपारिजात आदिमें भी इसी प्रकार लिखा है। निर्णयदीपिकामें तो यह कहा है कि, पिताके मृत्युके दिन निषेध दिनमें भी सकृन्महालयको करे। कारण कि, नागरखण्डमें यह लिखा है कि, आषाढकी पूर्णिमासे पांचवें पक्ष, कन्याके सूर्यमें, पिताके मरनेके दिन जो मनुष्य श्राद्ध करता है उसके पितर वर्षदिनतक अवश्य तृप्त होते हैं। मनुष्यकी मृत्युके दिन मासकी जो तिथि हो वही तिथि पितृपक्षमें प्रयत्नपूर्वक पूजने योग्य है। अशौचके विना उसका विच्छेद (न करना) अपनी इच्छासे न करे, पिंडश्राद्ध करे और विच्छेद न करे। कात्यायनने कहा है कि, जो असमर्थ मनुष्य पक्षके मध्यमें एक दिन ही श्राद्ध करे उसको निषिद्ध दिनमें भी यथाविधि पिंडदान करना उचित है, इस वाक्यका मूल नहीं मिलता। पराशरमाधवीय ग्रन्थमें कार्ष्णाजिनिने पक्षश्राद्ध करनेमें नन्दा आदिका निषेध नहीं लिखा है कि, भाद्रपदके अपरपक्षमें प्रतिदिन श्राद्ध करना उचित है और न नन्दा आदिका निषेध है और न चतुर्दशी निन्दित है। यहां श्राद्ध इस एक वाक्य और (दिने दिने)

देशी॥" इति। अत्र श्राद्धमित्येकवचनात्। 'दिनेदिने' इति वीप्सावशाच्च सोमयागवदेकस्याभ्यासेनैकप्रयोगपरदिनम्। अतः—'प्रतिपत्प्रभृतिष्वेकां वर्जयित्वा चतुर्दशीम्।' इति याज्ञवल्क्यीयं प्रयोगभेदपरं न तु पञ्चम्यादिपक्षविषयम्। 'प्रतिपत्प्रभृतिषु' इति विशिष्योक्तेः। निर्णयदीपे पृथ्वीचन्द्रोदये मदनपारिजाते चैवम्। अन्यकृष्णपक्षपरं याज्ञवल्क्यीयम्। एतत्परत्वेनैव निन्द्या चतुर्दशी इति विरोधादिति गौडाः। तन्न। 'श्राद्धं शस्त्रहतस्यैव चतुर्दश्यां महालये' इति विरोधात्। तत्त्वं तु—"तिथिनक्षत्रवारादिनिषेधो य उदाहृतः। स श्राद्धे तन्निमित्ते स्यान्नानुषङ्गकृते ह्यसौ" इति दिवोदासीये वृद्धगार्ग्योक्तेस्तन्निमित्ते पक्षांतरे च ज्ञेयः। सकृन्महालये तु वचनान्निषेधः। अन्यत्र कोऽपि न निषेधः। कार्ष्णाजिनिस्मृतेरिति। अतो नन्दादौ सपिण्डश्राद्धे पुत्रवतोऽप्यधिकारः। अत्रिरपि—"महालये क्षयाहे च दर्शे पुत्रस्य जन्मनि। तीर्थेऽपि निर्वपेत्पिण्डान्रविवारादिकेष्वपि॥" पूर्वोक्तनन्दानिषेधस्तु मृताहातिक्रमे सकृन्महालये पौर्णमास्यादिमृतश्राद्धे तन्निमित्ते च ज्ञेयः। यत्तु स्मृत्यर्थसारे—"विवाहव्रतचूडासु वर्षमर्धं तदर्धकम्। पिण्डदानं मृदा स्नानं न कुर्यात्तिलतर्पणम्॥" इति। तस्यात्रापवादो दिवोदासीये बृहस्पतिः—"तीर्थे संवत्सरे प्रेते पितृयागे महालये। पिण्डदानं प्रकुर्वीत युगादिभरणीमघे। महालये

इस वीप्साके वशसे सोम यज्ञके तुल्य एक श्राद्धके अभ्याससे अनेक बार प्रयोग करनेवाला यह वाक्य है, इससे प्रतिपदासे लेकर एक चतुर्दशीको छोड़कर श्राद्ध करे, यह याज्ञवल्क्यका वाक्य प्रयोगभेद कहता है, पंचमीआदि पक्षविषयक नहीं है। कारण कि, यह पृथक् कथन है कि, प्रतिपदा आदि तिथिमें श्राद्ध करे। निर्णयदीप, पृथ्वीचन्द्रोदय, मदनपारिजातमें भी ऐसे ही लिखा है॥ जो गौडोंका कथन है कि, याज्ञवल्क्यका वाक्य दूसरे कृष्णपक्षका बोधक है, इस पक्षका नहीं। कारण कि, इसमें चतुर्दशी निन्द्य नहीं इसका विरोध है यह उनकी बात ठीक नहीं। कारण कि, शस्त्रसे मृतकका श्राद्ध महालयकी चौदशको करना, इसमें इस वचनका विरोध है। सिद्धान्त तो यह है कि, तिथि, वार, नक्षत्र आदिका जो निषेध किया ह वह उस उस निमित्तसे किये हुए श्राद्धका है प्रसंगसे किये हुए श्राद्धका नहीं है। दिवोदासीयमें लिखे इस वृद्धगार्ग्यके कथनसे उसके निमित्त श्राद्धमें और पक्षांतरमें ही निषेध जानना। सकृन्महालयमें तो वाक्यसे निषेध नहीं, महालयमें कार्ष्णाजिनिकी स्मृतिसे कोई भी निषेध नहीं लिखा, इससे नन्दाआदि तिथिमें पुत्रवान्‌को भी सपिण्डश्राद्धका अधिकार है। अत्रिने भी कहा है कि, महालय, मरणदिन, अमावस्या, पुत्रजन्म, तीर्थ इनमें रविवार आदिको भी पिंडदान करे। पूर्वोक्त नन्दा आदि तिथियोंका निषेध तो मरनेके दिनके अतिक्रममें पूर्णिमाके दिन मृतकके श्राद्धमें वा तन्निमित्तक श्राद्धमें समझना। जो स्मृत्यर्थसारमें यह कहा है कि विवाह, यज्ञोपवीत, मुण्डनसे ६ महीनेतक वा तीन महीनेतक पिंडदान, मृत्तिकासे स्नान, तिलोंसे तर्पण न करे, इस वाक्यका यहां अपवाद दिवोदासीयग्रन्थमें बृहस्पतिके वाक्यसे लिखा है कि, तीर्थ, संवत्सर, प्रेत, पितृयाग, महालय

गयाश्राद्धे मातापित्रोः क्षयेऽहनि । कृतोद्वाहोऽपि कुर्वीत पिण्डनिर्वपणं सदा ”॥ २॥ इति निर्णयदीपे तु नन्दानिषेधः प्रत्यहभिन्नश्राद्धविषयः । षोडशाहव्यापिश्राद्धप्रयोगकत्वे तु प्रत्यहं पिण्डदानं कार्यमेवेत्युक्तम्।तदयमर्थः सम्पन्नः षोडशाहव्यापिश्राद्धैक्ये न पिण्डनिषेधः । मृताहे सकृन्महालयेऽपि तथा । इति केचित् । तत्रापि निषेधस्तु युक्तः प्रत्यहं श्राद्धभेदेऽपि व्यतीपातादौ तथा । अन्यमृताहातिक्रमे महालयातिक्रमे च पिण्डनिषेधः । संन्यासिनां महालयनिर्णयः । संन्यासिनां तु द्वादश्यां श्राद्धं कार्यम् । “यतीनां च वनस्थानां वैष्णवानां विशेषतः । द्वादश्यां विहितं श्राद्धं कृष्णपक्षे विशेषतः॥” इति पृथ्वीचन्द्रोदये संग्रहोक्तेः । अत्र पक्षे श्राद्धाकरणे गौणकालमाह हेमाद्रौ यमः–“हंसे कन्यासु वर्षास्थे शाकेनापि गृहे वसन् । पञ्चम्योरन्तरे दद्यादुभयोरपि पक्षयोः ॥” आश्विनकृष्णशुक्लपञ्चम्योर्मध्ये इत्यर्थः । तत्राप्यसंभवे भाविष्ये–“येयं दीपान्विता राजन् ख्याता पञ्चदशी भुवि । तस्यां दद्यान्न चेद्दत्तं पितॄणां वै महालये ॥” तत्राप्यसम्भवे भारते–“ यावच्च कन्यातुलयोः क्रमादास्ते दिवाकरः । शून्यं प्रेतपुरं तावद्वृश्चिके यावदागतः ॥ ” ब्राह्मे–“वृश्चिके समतिक्रान्ते पितरो दैवतैः सह । निःश्वस्य प्रतिगच्छन्ति शापं

इनमें पिंडदान युगादि,भरणी,मघा हो तो भी करे।महालय,गयाश्राद्ध, मातापिताका मरणदिन इनमें पिंडदान वह भी सदा करे जिसका विवाह हुआ हो।निर्णयदीपमें तो नन्दा आदि तीथियोंका निषेध प्रतिदिन भिन्न श्राद्ध विषयमें लिखा है। सोलह दिनतक रहनेवाले श्राद्धप्रयोगको एक मानो तो प्रतिदिन पिण्डदान करे। यह पहले ही लिख आये हैं,इससे यह अर्थ सिद्ध हुआ कि, सोलह दिनतक श्राद्धके यज्ञमें पिण्डका निषेध नहीं है, मृताह और सकृन्महालयमें भी निषेध नहीं । कोई यह कहते हैं, वहां भी निषेध तो युक्त है, और ऐसे ही प्रतिदिन श्राद्धभेदमें और व्यतीपात आदिमें निषेध है तथा श्राद्ध और मरणदिनके अतिक्रम (भूलना) में पिंडका निषेध है । संन्यासियोंका श्राद्ध द्वादशीको करना चाहिये । कारण कि, पृथ्वीचन्द्रोदयमें संग्रहका वाक्य है कि, यदि वानप्रस्थ और विशेषकर वैष्णवको कृष्णपक्षमें और द्वादशीको विशेषकर श्राद्ध लिखा है । इस पक्षमें श्राद्ध करनेका गौणकाल हेमाद्रिग्रन्थमें यमने लिखा है कि, वर्षाकालमें जब कन्याका सूर्य हो तब गृहमें रहते हुए मनुष्यको आश्विनकी दोनों पञ्चमियोंके उपरान्त शाकसे भी श्राद्ध करना उचित है, उसमें भी न हो सके तो भविष्यपुराणमें यह कहा है कि, हे राजन् ! जो यह दीपयुक्त पञ्चदशी (दिवाली) पृथ्वीमें प्रसिद्ध है उस मनुष्यको उसमें पिंडदान करना चाहिये, जिसने महालयमें पितरोंको न दिया हो, उसमें भी न हो सके तो भारतमें यह कहा है कि, जबतक सूर्य कन्या और तुलापर रहे तबसे वृश्चिककी संक्रांतितक यमपुरी शून्य हो जाती है। ब्रह्मपुराणमें लिखा है कि, वृश्चिकके समाप्त होनेपर श्राद्धादि न करनेपर देवताओंके सहित

दत्त्वा सुदारुणम् ॥" यत्तु जातूकर्ण्यः-"आकांक्षन्ति स्म पितरः पञ्चमं पक्षमाश्रिताः। तस्मात्तत्रैव दातव्यं दत्तमन्यत्र निष्फलम् ॥" इति । तत्फलातिशयहानिपरम्। 'कन्यां गच्छतु वा न वा' इति तुर्यपादे वा पाठः। तेन कन्यायोगे प्राशस्त्यमात्रम्। अतः श्राद्धविवेकोक्तं श्राद्धद्वयं हेयम्। इदं च श्राद्धमन्नेनैव कार्यं नामान्नादिना। "मृताहं च सपिण्डं च गयाश्राद्धं महालयम्। आपन्नोऽपि न कुर्वीत श्राद्धमामेन कर्हिचित् ॥" इति स्मृतिदर्पणे गालवोक्तेः। तत्र देवतानिर्णयः। अथात्र देवताः संग्रहे-"तातम्बात्रितयं सपत्नजननी मातामहादित्रयं सस्त्रि स्त्रीतनयादि तातजननीस्वभ्रातरस्तत्स्त्रियः। ताताम्बात्मभगिन्यपत्यधवयुग्जायापिता सद्गुरुः शिष्याप्ताः पितरो महालयविधौ तीर्थे तथा तर्पणे ॥" अस्यार्थः-तातत्रयी पितृत्रयी। अम्बात्रयी च। स्मृत्यर्थसारेऽपि महालये मातृश्राद्धं पृथक् प्रशस्तमिति। अत्र विशेषः स्मृतिदर्पणे गालवः-"अनेका मातरो यस्य श्राद्धे चापरपक्षिके। अर्घ्यदानं पृथक्कुर्यात्पिण्डमेकं तु निर्वपेत् ॥" जीवन्मातृकस्तु सापत्नमातुरेकोद्दिष्टं कुर्यान्न पार्वणम्। श्राद्धदीपकलिकायां तु पार्वणमुक्तम्। "अन्वष्टक्यं च यन्मातुर्गयाश्राद्धं महालयम्। पितृपत्नीषु च श्राद्धं कार्यं पार्वणवद्भवेत् ॥" इति

पितर श्वास लेकर दारुण शाप देकर फिर जाते हैं। और जातूकर्ण्यने यह लिखा है कि, पांचवें पक्षमें पितरोंको इच्छा होती है, उससे उसी पक्षमें देना चाहिये, अन्यत्र दिया हुआ निष्फल होता है। वह अधिक फलकी हानिका कहनेवाला वाक्य है। अथवा जातूकर्ण्यके श्लोकमें चौथे चरणका यह अर्थ है, चाहे सूर्य कन्याका हो वा न हो उससे कन्याके सूर्यमें बड़ाई मात्र लिखी है, इससे श्राद्धविवेकमें लिखे हुए दो श्राद्ध त्यागने चाहिये, इस श्राद्धको पकान्नसे करे कच्चेसे न करे। कारण कि, स्मृतिदर्पणमें गालवका कथन है कि, क्षयश्राद्ध, सपिंडी, गयाश्राद्ध, महालयको मनुष्य आपत्तिमें भी कच्चे अन्नसे न करे किन्तु पके अन्नसे ही करे। अब यहां संग्रहके वाक्यसे देवता लिखते हैं कि, पिता, माता इनके तीन तीन, माताकी सपत्न, मातामह आदि तीन और उनकी स्त्री, स्त्री, पुत्र आदि, पिताकी जननी, अपने भाई और उनकी स्त्री, पिता, माता और अपनी भगिनी और इनकी सन्तति और पति, जायापिता, श्रेष्ठगुरु, आप्त, शिष्य ये महालयविधिमें, तीर्थमें, तर्पणमें पितर होते हैं। स्मृत्यर्थसारमें भी कहा है कि, महालयमें माताका श्राद्ध भिन्न करना अच्छा है। इसमें विशेष स्मृतिदर्पणमें गालवके वाक्यसे लिखा है कि, जिसके अनेक माता हों वह दूसरे पक्षके श्राद्धमें अर्घ्यदान भिन्नतासे करे और पिण्ड एक दे। जिसकी माता जीवित हो वह अपनी माताकी सौतका एकोद्दिष्ट श्राद्ध करे, पार्वण न करे। श्राद्धदीपकलिकामें तो पार्वण लिखा है। कारण कि, बृहन्मनुने यह लिखा है कि, अन्वष्टकाश्राद्ध, गयाश्राद्ध, मातृश्राद्ध, महालय, माताकी सपत्नीका श्राद्ध इनको पार्वणके तुल्य करे। यद्यपि

बृहन्मनूक्तेः। सस्त्रीद्धि मातामहानां सपत्नीकत्वेऽपि विभवे सति मातामहीनां पृथक्कार्यम्। "महालये गयाश्राद्धे वृद्धौ चान्वष्टकासु च। ज्ञेयं द्वादशदैवत्यं तीर्थे प्रोष्ठे मघासु च॥" इति निगमोक्तेः। हेमाद्रिमते त्वत्र नवदैवत्यमेव। "महालये गयाश्राद्धे वृद्धौ चान्वष्टकासु च। नवदैवत्यमन्वेष्टं शेषं षट्पौरुषं विदुः॥" इति विष्णुधर्मोक्तेः। तातभ्राता पितृव्यः। जननीभ्राता मातुलः। तत्स्त्रियः पितृव्यस्त्री, मातुलानी, भ्रातृजायाः। पितृष्वसृमातृष्वसृस्वभगिन्योऽपत्यभर्तृयुक्ताः। तेन सापत्यायै सधवायै इति प्रयोगो ज्ञेयः। एतासु सतीषु न तद्भर्त्रादेर्दानम्। द्वारलोपात्। जायापिता श्वशुरः श्वश्रूरप्यत्रोपलक्ष्या। अत्र मूलं स्मृतिचन्द्रिकायां ज्ञेयम्। तत्र पार्वणैकोद्दिष्टादिव्यवस्था। अत्र पार्वणैकोद्दिष्टव्यवस्थोक्ता हेमाद्रौ पुराणांतरे—"उपाध्यायगुरुश्वश्रूपितृव्याचार्यमातुलाः। श्वशुरभ्रातृतत्पुत्रपुत्रर्त्विक्छिष्यपोषकाः॥ भगिनीस्वामिदुहितृजामातृभगिनीसुताः। पितरौ पितृपत्नीनां पितुर्मातुश्च या स्वसा॥ सखिद्रव्यदशिष्याद्यास्तीर्थे चैव महालये। एकोद्दिष्टविधानेन पूजनीयाः प्रयत्नतः॥ ३॥" इति। इतरेषां पित्रादीनां पार्वणमर्थसिद्धम्। अत्र क्रमान्यत्वेऽप्याचाराद्व्यवस्था। तत्राशक्तौ निर्णयः। अशक्तौ तु पृथिवीचन्द्रोदये चतुर्विंशतिमते—"एकस्मिन्ब्राह्मणे सर्वानाचार्यादीन्प्रपूज-

---

मातामह आदि पत्नीसहित ह, तो भी सपत्नीपदसे यह जताया है कि, जिसके पास धन हो तो वह नानी आदिका श्राद्ध भी पृथक् करे। कारण कि शास्त्रमें कहा है कि, महालय, गयाश्राद्ध, वृद्धिश्राद्ध, अन्वष्टकाश्राद्ध, तीर्थ, भाद्रपद, मघाके श्राद्धोंमें द्वादश देवता होते हैं। हेमाद्रिके मतमें तो यहां नौ देवता हैं। कारण कि धर्मका कथन है कि, महालय, गयाश्राद्ध, वृद्धि, अन्वष्टकामें नव देवता होते हैं, शेषोंमें छः पुरुषोंतक जानना। पिताका भाई पितृव्य, माताका भाई मातुल, उनकी पत्नी, चाची और मामी, पिता और माताकी भगिनी, सब सन्तान, पतियोंसे युक्त ग्रहण करनी चाहिये, ये हैं तो इनके भर्ता आदिको पिण्ड न देना। कारण कि, इसमें द्वारका लोप है अर्थात् भर्ताके द्वारा पत्नीको प्राप्त हो सकता है। पत्नीके द्वारा पतिको नहीं मिल सकता। जायाका पिता श्वशुर और उससे श्वश्रू (सास) का ग्रहण करना इसका मूल स्मृतिचन्द्रिकामें लिखा है। इसमें पार्वण और एकोद्दिष्टश्राद्धकी व्यवस्था हेमाद्रिमें पुराणान्तरके वाक्यसे लिखी है कि, (पढानेवाला) गुरु, सास, चाचा, आचार्य, मामा, श्वशुर, भाई, भाईके पुत्र, पोते, ऋत्विक्, पालना करनेवाले शिष्य, भगिनी, स्वामी, पुत्री, जामाता, भानजे, पिताकी स्त्रियोंके पितर, पिता और माताकी बहन, मित्र, द्रव्यका दाता, शिष्य आदि ये सब महालय तीर्थमें एकोद्दिष्टकी विधिसे प्रयत्नसे पूजनके उचित हैं। इनके सिवाय पित्रादिकोंका पार्वण सिद्ध है इसमें क्रमका भेद ही है, तो भी कुलाचारसे व्यवस्था जाननी चाहिये। अशक्तिमें तो पृथ्वीचन्द्रोदय और चतुर्विंशतिमतमें लिखा है कि, एक ब्राह्मणमें सम्पूर्ण आचार्यादिकोंका

येत्। दश द्वादश वा पिण्डान् दद्यादकरणं न तु ॥" एकोद्दिष्टस्वरूपं चाह याज्ञवल्क्यः—" एकोद्दिष्टं देवहीनमेकार्घ्यैकपवित्रकम्। आवाहनाग्नौकरणरहितं ह्यपसव्यवत् ॥" इति। अत्रैकपाको वैश्वदेवतन्त्रपिण्डं बर्हिश्चैकमिति स्मृत्यर्थसारे उक्तम्। पाणिहोमः। अत्र पाणिहोमः पिण्डाश्च द्विजान्तिक इत्याह प्रयोगपारिजाते आचार्यः—" काम्यमभ्युदयेष्टम्यामेकोद्दिष्टमथाष्टमम्। चतुर्ष्वेषु करे होमः पिंडाश्चात्र द्विजान्तिके ॥" इति। पार्वणैकोद्दिष्टयोः समानतन्त्रत्वे तु अग्निसमीप एव अत्र धूरिलोचनौ वैश्वदेवौ। "अपि कन्यागते सूर्ये काम्ये च धूरिलोचनौ।" इति हेमाद्रावादित्यपुराणात्। अत्र प्रातिदिनं भिन्नप्रयोगत्वाद्दक्षिणाभेदो वा प्रयोगैक्यादन्ते एव वा दक्षिणेति हेमाद्रौ उक्तम्। एतच्च संन्यस्तपितृकादिना जीवत्पितृकेणापि कार्यम्। वृद्धौ तीर्थे च संन्यस्ते ताते च पतिते सति। येभ्य एव पिता दद्यात्तेभ्यो दद्यात्स्वयं सुतः ॥" इति कात्यायनोक्तेः। यत्तु कौण्डिन्यः—" दर्शश्राद्धं गयाश्राद्धं श्राद्धं चापरपाक्षिकम्। न जीवत्पितृकः कुर्यात्तिलैस्तर्पणमेव च ॥" इति तत्संन्यस्तपित्राद्यतिरिक्तविषयम्। काम्यश्राद्धपरं वा। अत्र बहु वक्तव्यं श्रीपितृकृतजीवत्पितृकनिर्णये ज्ञेयम्। एतच्च जीवत्पितृकेण पिण्डरहितं कार्यम्। 'मुण्डनं पिण्डदानं च प्रेतकर्म च सर्वशः। न जीवत्पितृकः कुर्याद्गुर्विणीपतिरेव च॥"

पूजन करे दश वा बारह पिण्ड दे और न करनेको न करे, एकोद्दिष्टका स्वरूप याज्ञवल्क्यने लिखा है कि, एकोद्दिष्टश्राद्धमें विश्वेदेवा नहीं होते और एक अर्घ्य एक पवित्री होती है, आवाहन अग्नौकरण नहीं होते और अपसव्य युक्त स्मृत्यर्थसारमें यह लिखा है कि, एकोद्दिष्टमें एक पाक, एक विश्वेदेवा, एक पिण्ड और एक बर्हि होती है। प्रयोगपारिजातमें आचार्यको ब्राह्मणके हाथमें होम और ब्राह्मणके समीप पिण्डदान करना लिखा है। कारण यह लिखा है कि, काम्यश्राद्ध, अभ्युदयश्राद्ध, अष्टमीश्राद्ध, एकोद्दिष्टश्राद्ध इन चारोंमें हाथमें होम और ब्राह्मणके निकट ही पिण्ड होता है। यदि पार्वण एकोद्दिष्ट एकबार ही किये जायँ तो अग्निके निकट ही पिण्ड होता है और इसमें धूरि और लोचन नामके विश्वेदेवा होते हैं। कारण कि, हेमाद्रिमें आदित्यपुराणका कथन है कि, कन्यागत सूर्यमें और काम्यश्राद्धमें धूरिलोचन विश्वेदेवा कहे हैं। महालयमें प्रतिदिन प्रयोगका भेद होनेसे दक्षिणाका भेद प्राप्त होता है, अथवा सोलह दिनका एक प्रयोग होनेसे अन्तमें दक्षिणा होती है, यह हेमाद्रिमें कहा है। यह श्राद्ध उसको भी करना चाहिये, जिसका पिता जीवित हो वा संन्यासी हो गया हो, कारण कि, कात्यायनने कहा है कि, वृद्धि तीर्थश्राद्धमें पिताके संन्यासी वा पतित होनेमें जिनको पिता पिण्डदान करे उनको पुत्र भी करे। जो कौडिन्यने यह कहा है कि, अमावास्याका श्राद्ध, और महालयश्राद्ध, गयाश्राद्ध इनको और तिलोंसे तर्पण उस मनुष्यको न करना चाहिये जिसका पिता जीता हो, यह वाक्य संन्यासीसे भिन्न पिताके विषयमें लिखे हैं अथवा काम्यश्राद्धके विषयमें जानने। जो हमें इसमें अधिक कहना है वह हमारे श्रीमत्पिताके किये जीवत्पितृकनिर्णयग्रन्थमें देख लेना। जीवत्पितृक मनुष्य इसको पिंडरहित करे। कारण कि, दक्षके इस कथनसे उसको पिण्डका निषेध है कि,

इति दक्षेण तस्य पिण्डनिषेधात् ॥ अन्वष्टक्यमातृवार्षिकादा तु वचनाद्भवतीति वक्ष्यामः। तथा छागलेयः–"पिण्डो यत्र निवर्तेत मघादिषु कथञ्चन । सांकल्पं तु तदा कार्यं नियमाद्ब्रह्मवादिभिः ॥" सांकल्पस्वरूपं च वक्ष्यते। अत्र श्राद्धाङ्गतर्पणं पक्षश्राद्धे प्रतिदिनं श्राद्धोत्तरम्। सकृन्महालये तु परेऽह्नि कार्यम्। तदुक्तं नारदीये–"पक्षश्राद्धं यदा कुर्यात्तर्पणं तु दिनेदिने। सकृन्महालये चैव परेऽहनि तिलोदकम् ॥" गर्गोऽपि–'पक्षश्राद्धे हिरण्ये च अनुव्रज्य तिलोदकम्।' इति। तथा प्रयोगपारिजाते गर्गः–"कृष्णे भाद्रपदे मासि श्राद्धं प्रतिदिनं भवेत्। पितॄणां प्रत्यहं कार्यं निषिद्धाहेऽपि तर्पणम् ॥ सकृन्महालये श्वः स्यादष्टकास्वन्त एव हि ॥" इदं निषिद्धादिनेऽपि कार्यम्। 'तिथितीर्थविशेषेषु कार्यं प्रेते च सर्वदा' इति स्मृत्यर्थसारोक्तेः। "तीर्थे तिथिविशेषे च गयायां प्रेतपक्षके। निषिद्धेऽपि दिने कुर्यात्तर्पणं तिलमिश्रितम् ॥" इति स्मृतिरत्नावल्यां वचनाच्च। मलमासे श्राद्धनिषेधनिर्णयः। एतच्च श्राद्धं मलमासे न कार्यम्। तदाह भृगुः–"वृद्धिश्राद्धं तथा सोममग्न्याधेयं महालयम्। राजाभिषेकं काम्यं च न कुर्याद्भानुलंघिते ॥" इति। हेमाद्रौ नागरखण्डे–"नभो वाथ नभस्यो वा मलमासो यदा भवेत्। सप्तमः पितृपक्षः स्यादन्यत्रैव तु पञ्चमः। एतच्च पित्रोर्मरणे प्रथमाब्दे कृताकृतम्।

मुण्डन, पिंडदान और सम्पूर्ण प्रेतकर्मको ये दोनों न करें जिसका पिता जीवित हो और जो गर्भवतीका भर्ता हो। अन्वष्टकाश्राद्ध और माताका वार्षिकश्राद्ध इनमें तो और वाक्यसे होता है यह आगे लिखेंगे। सोई छागलेय ऋषिने कहा है कि, जहाँ किसी प्रकार मघा आदिमें पिंडकी निवृत्ति हो जाय तो वहां ब्रह्मवादीको नियमसे संकल्प करना चाहिये। संकल्पका स्वरूप आगे लिखेंगे। यहां श्राद्धके अंगका तर्पण पक्षके श्राद्धमें प्रतिदिन श्राद्धके उपरान्त करे। एक दिन ही किसी दिन महालय करे, तो अगले दिन करे सोई नारदने लिखा है कि, पक्षश्राद्ध करे। तो प्रतिदिन तर्पण करे। सकृन्महालयमें अगले दिन तिलांजलि दे। गर्गने भी कहा है कि, पक्षश्राद्ध और सुवर्णश्राद्धमें पीछेसे तिलांजलि देनी। तैसे ही प्रयोगपारिजातमें गर्गने कहा है कि, भाद्रपदके कृष्णपक्षमें प्रतिदिन श्राद्ध करना होता है और निषिद्धदिनमें भी प्रतिदिन तर्पण होता है और सकृन्महालयमें अगले दिन और निषिद्धदिनमें अगले दिन तर्पण करना चाहिये। तिथि तीर्थविशेषमें सर्वथा तर्पण करना चाहिये यह स्मृत्यर्थसारमें लिखा है। स्मृतिरत्नावलीमें लिखा है कि, तीर्थ और तिथिविशेषमें गया और प्रेतपक्ष (महालय) में निषिद्ध दिनमें भी तिलोंको मिलाकर तर्पण करे। यह श्राद्ध मलमासमें न करना। यही भृगुजीने लिखा है कि, वृद्धिश्राद्ध, सोमयज्ञ, अग्निका आधान, महालय, राजगद्दी ये मलमासमें न करनी चाहिये। हेमाद्रिके नागरखण्डमें भी कहा है कि, श्रावण वा भाद्रपदमें मलमास हो जाय तो पितरोंका पक्ष सातवाँ पक्ष होता है और अन्यत्र पांचवां होता है। त्रिस्थलीसेतुग्रन्थमें भट्टने तो यह लिखा है कि, माता पिताकी मृत्युपर प्रथम

इति त्रिस्थलीसेतौ भट्टाः । इदं च नित्यं काम्यम् । "पुत्रानायुस्तथारोग्यमैश्वर्यमतुलं तथा । प्राप्नोति पंचमे दत्त्वा श्राद्धं कामान्सुपुष्कलान् ॥" इति जाबाल्युक्तेः । "वृश्चिके समतिक्रान्ते पितरो दैवतैः सह । निश्वस्य प्रतिगच्छन्ति शापं दत्त्वा सुदारुणम् ॥" इति कार्ष्णाजिनिवचनात् । महालयश्राद्धातिक्रमे प्रायश्चित्तम् । तदतिक्रमे प्रायश्चित्तमुक्तमृग्विधाने-"दुरो अश्वस्य मन्त्रं च दशमासे द्विमासयोः । महालयं यदा न्यूनं तदा संपूर्णमेति तत् ॥" इति द्विमासयोः कन्यातुलयोर्महालयश्राद्धं यदा हीनमित्यर्थः । भरणीश्राद्धनिर्णयः । अत्र भरण्यां श्राद्धमतिप्रशस्तम् । तदुक्तं पृथ्वीचन्द्रोदये मात्स्ये-"भरणी पितृपक्षे तु महती परिकीर्तिता । अस्यां श्राद्धं कृतं येन स गयाश्राद्धकृद्भवेत् ॥" पृथिवीचन्द्रोदये श्रीधरीये बृहस्पतिः-"नभस्यापरपक्षस्य द्वितीया यदि याम्यभे । तृतीया चाग्नितारामिः सहिता प्रीतिदा पितुः ॥" एतत्पक्षे षष्ठी योगविशेषेण कपिलासंज्ञा । तदुक्तं वाराहे-"नभस्ये कृष्णपक्षे तु रोहिणीपादभूसुतैः । युक्ता षष्ठी पुराणज्ञैः कपिला परिकीर्तिता ॥ व्रतोपवासनियमैर्भास्करं तत्र पूजयेत् । कपिलां च द्विजा-

---

वर्षमें न किये श्राद्धके विषे यह कथन है यह श्राद्ध नित्य है और काम्य भी है कारण कि, जाबालिने कहा है कि,पांचवें पक्षमें पितरोंके निमित्त श्राद्ध देकर मनुष्य पुत्र,अवस्था,आरोग्य, उत्तम ऐश्वर्य और संपूर्ण श्राद्धोंकी कामनाओंको प्राप्त होता है,और कार्ष्णाजिनिने यह कहा है कि, वृश्चिक संक्रांतिके बीतनेपर पितर श्वास लेकर और दारुण शाप देकर पितृलोकको चले जाते हैं । यह श्राद्धके अवहेलनमें ऋग्विधानमें प्रायश्चित्त लिखा है कि, जब वर्षदिनके दशमास और कन्या और तुलाकी संक्रांतिके दो महीनोंमें महालय श्राद्ध न्यून होजाय जो (दुरोऽश्वस्य) इस मन्त्रसे जप करनेसे वह सम्पूर्ण होजाता है, जो कुछ फलकी इच्छासे हो वह काम्य होता है, और जिसके न करनेमें कुछ प्रायश्चित्त हो वह नित्य होता है । महालयमें भरणीमें श्राद्ध करना अत्यन्त श्रेष्ठ है यह पृथ्वीचन्द्रोदयमें मत्स्यपुराणके वाक्यसे लिखा है कि, पितृपक्षमें भरणी बडी श्रेष्ठ कही है । इसमें जिसने श्राद्ध किया वह गयाश्राद्ध करनेके तुल्य होता है, श्रीधरके निमित्त पृथ्वीचन्द्रोदयमें बृहस्पतिका वाक्य है कि, भाद्रपदके कृष्णपक्षकी द्वितीयाको भरणी नक्षत्र और तृतीयाको कृत्तिका नक्षत्र हो तो यह तिथि पिताको प्रीति देनेवाली कही है । महालयपक्षमें षष्ठीकी योगोंकी विशेषतासे कपिलासंज्ञा लिखी है, यही वाराहपुराणमें कहा है कि, भाद्रपदके कृष्णपक्षकी छठको रोहिणी नक्षत्र, व्यतीपात, मंगलवार हो तो कपिलासंज्ञा है । उसमें व्रत उपवास और नियमसे सूर्यका पूजन कर और ब्राह्मणको कपिला गौ देनेसे यज्ञका फल

---

१ दुरोअश्वदुर इन्द्रगोरासिदुरोयवस्य वसुन इनस्पतिः । शिक्षानरः प्रदिवा अकामकर्शनः सखा सखिभ्यस्तमिदं गृणामसि ॥ ऋ० १ ॥ ४ ॥ १५ ॥

ध्याय दत्त्वा क्रतुफलं लभेत् ॥ २ ॥ " पुराणसमुच्चये-"भाद्रे मास्यासिते पक्षे भानौ चैव करे स्थिते। पाते कुजे च रोहिण्यां सा षष्ठी कपिला भवेत् ॥" अत्र दर्शान्तत्वेन महालयो भाद्रपदकृष्णपक्षो ज्ञेय इत्युक्तं निर्णयामृते हेमाद्रौ च। हस्तार्कस्तु फलातिशयार्थः। 'संयोगे तु चतुर्णां वै निर्दिष्टा परमेष्ठिना' इति तत्रैवोक्तेः। अत्र विशेषो हेमाद्रौ स्कांदे "देवदारुं तथोशीरं कुंकुमैलां मनःशिलाम्। पत्रकं पद्मकं यष्टिं मधुगव्येन पेषयेत्॥ क्षीरेणालोड्य कल्केन स्नानं कुर्यात्समंत्रकम्। आपस्त्वमसि देवेश ज्योतिषां पतिरेव च॥ पापं नाशय मे देव वाङ्मनःकायकर्मजम्। पंचगव्यकृतस्नानः पञ्चभंगैस्तु मार्जयेत्"॥ ३॥ पंचभंगैः पञ्चपल्लवैः। तथा-"रत्नैर्नानाविधैर्युक्तं सौवर्णं कारयेद्रविम्। शक्तितस्तु पलादूर्ध्वं तदर्धं कर्षतोऽपि वा। सौवर्णमरुणं कुर्यान्नौकां चैव तथा रथम् ॥" तथा-'अल्पवित्तोऽपि यः कश्चित्सोऽपि कुर्यादिमं विधिम्॥' प्रभासखंडे-"स्थापयेदव्रणं कुंभं चन्दनोदकपूरितम्। रक्तवस्त्रयुगच्छन्नं ताम्रपात्रेण संयुतम्। रथो रौक्मपलस्यैव एकचक्रः सुचित्रितः। सौवर्णपलसंयुक्तां मूर्तिं सूर्यस्य कारयेत्॥ २ ॥ " ततः सूर्यं कपिलां च षोडशोपचारैः संपूज्य दद्यात्। "दिव्यमूर्तिर्जगच्चक्षुर्द्वादशात्मा

मिलता है। पुराणसमुच्चयमें कहा है कि, भाद्रपदके कृष्णपक्षमें जब हस्तनक्षत्रमें सूर्य हो तो; व्यतीपात, रोहिणीनक्षत्र, मंगलवारका योग हो तो वह षष्ठी "कपिला" कहाती है यहां अमावस्यान्त मास लेनेसे महालय भाद्रपदका कृष्णपक्ष जानना चाहिये यह निर्णयामृत हेमाद्रिमें कथन किया है। हस्तका सूर्य तो अधिक फलके निमित्त है कारण कि, वहां ही यह लिखा है कि, हस्तका सूर्य, व्यतीपात योग, मंगलवार, रोहिणी नक्षत्र इनके योगसे परमेष्ठिने कपिलाषष्ठी लिखी है इसमें विशेष हेमाद्रिमें स्कन्दपुराणके वाक्यसे लिखा है कि, देवदारु, उशीर, चन्दन, कुंकुम, इलायची, मनशिल, पतरज, पद्माख, मुलहटी इनको शहत और पञ्चगव्यमें पीसे और दूधमें मिलाकर सबके कल्क (चूर्ण) से मिलाकर मन्त्रोंसहित स्नान करे कि, हे देवेश सूर्य ! तुम जलरूप हो और ज्योतियोंके स्वामी हो, हे देव ! मेरे वाणी, मन, काया, कर्मसे किये पापको नष्ट करो, पञ्चगव्यसे स्नान करो तैसे ही यह कहा है कि, नानाप्रकारके रत्नोंसे युक्त सुवर्णका सूर्य निर्माण करे, शक्ति हो तो एक पलका वा उसका आधा बनावे वा कर्ष (चांदी) का बनावे और सोनेका अरुण सारथि और सोना चांदीका रथ बनावे, थोडा धन हो तो भी मनुष्य इस विधिको करे, प्रभासखण्डमें कहा है कि, चन्दन और जलसे भरेहुए ऐसे घडेको स्थापन करे जिसमें छेद न हो, और जो लालवस्त्रसे ढका, और तांबेके पात्रसे युक्त हो, जिसमें एक चित्र हो ऐसा पलभर चांदीका रथ बनावे, और पलभर सुवर्णकी सूर्यकी प्रतिमा निर्माण करे, फिर सूर्य और कपिलाका षोडशोपचारसे पूजन कर भक्तिसे दान करे, और इस प्रकार प्रार्थना करे कि, हे सूर्य ! तुम दिव्यमूर्ति जगत्के नेत्र हो, तुम्हारे बारह रूप हैं दिनके

दिवाकरः । कपिलासहितो देवो मम मुक्तिं प्रयच्छतु ॥ यस्मात्त्वं कपिले पुण्या सर्वलोकस्य पावनी । प्रदत्ता सह सूर्येण मम मुक्तिप्रदा भव ॥ २ ॥" इति । विशेषांतरं तत्रैव ज्ञेयमिति दिक् । चन्द्रषष्ठीनिर्णयः । इयमेव चन्द्रषष्ठी । सा चन्द्रोदयव्यापिनी ग्राह्या । उभयत्र तथात्वे पूर्वा । तदुक्तं भविष्ये-"तद्वद्भाद्रपदे मासि षष्ठ्यां पक्षे सितेतरे । चन्द्रषष्ठीव्रतं कुर्यात्पूर्ववेधः प्रशस्यते ॥ चन्द्रोदये यदा षष्ठी पूर्वाह्ने चापरेऽहनि । चन्द्रषष्ठ्यसिते पक्षे सैवोपोष्या प्रयत्नतः ॥ २ ॥ इति । माघ्यावर्षसंज्ञश्राद्धनिर्णयः । अष्टम्यामाश्वलायनेन मघावर्षसंज्ञश्राद्धमुक्तम् । एतेन माघ्यावर्षं प्रौष्ठपद्या अपरपक्षे इति । इदं सप्तम्यादिषु त्रिष्वहस्सु कार्यमिति नारायणवृत्तिः । हरदत्तस्तु मघायुक्तवर्षासु भवं त्रयोदशीश्राद्धमिति व्याचख्यौ ॥ पृथ्वीचन्द्रोदये ब्राह्मे-" आषाढ्याः पञ्चमे पक्षे गया माघ्याष्टमी स्मृता । त्रयोदशी गजच्छाया गयातुल्या तु पैतृके ॥ महालक्ष्मीव्रतनिर्णयः । आश्विनकृष्णाष्टम्यां महालक्ष्मीव्रतम् । तत्र निर्णयामृते पुराणसमुच्चये-"श्रियोऽर्चनं भाद्रपदेऽसिताष्टमीं प्रारभ्य कन्यामगते च सूर्ये । समापयेत्तत्र तिथौ च यावत् सूर्यस्तु पूर्वार्धगतो युवत्या ॥" इति । तत्रैव-"कन्यागतेऽर्के प्रारभ्य कर्तव्यं न श्रियोऽर्चनम् । हस्तप्रान्तदलस्थेऽर्के तद्व्रतं न समापयेत् ॥ पूजनीया गृहस्थानामष्टमी

करनेवाले हो, प्रकाशरूप हो, कपिलासहित तुम मुझको मुक्ति दो । हे कपिल ! तुम पवित्र हो और सब जगत्की पवित्र करनेवाली हो जिससे सूर्यके साथ दान की हुई मुझे मुक्ति दो अन्याविशेष हेमाद्रिमें ही जानना यही मार्ग है ॥ उसको ही चन्द्रषष्ठी कहते हैं, वह दोनों दिन चन्द्रोदयव्यापिनी लेनी चाहिये, दोनों दिन चंद्रोदयव्यापिनी हो तो पहली ग्रहण करनी सोई भविष्यपुराणमें लिखा है कि, तैसे ही भाद्रपदमासकी कृष्णपक्षकी षष्ठीकी चन्द्रषष्ठीका व्रत करना चाहिये, उसमें पूर्वतिथिका वेध श्रेष्ठ है, पहले दिन वा परले दिन जो चन्द्रोदयके समय षष्ठी हो वह ही भाद्रपदके कृष्णपक्षकी चन्द्रषष्ठी होती है, उसीको प्रयत्नसे व्रत करे । अष्टमीको आश्वलायन ऋषिने मघावर्षश्राद्ध लिखा है कि, भाद्रपदके प्रथम पक्षमें अष्टमीको माघ्यावर्ष श्राद्ध होता है यह सप्तमी आदि तीन तिथियोंमें करना चाहिये, यह नारायणवृत्तिमें लिखा है, हरदत्तने तो मघानक्षत्रयुक्त वर्षामें होनेवाली त्रयोदशी श्राद्धको माघ्यावर्ष कहा है यह व्याख्या की है। पृथ्वीचन्द्रोदयमें ब्रह्मपुराणका कथन है कि, आषाढकी पूर्णिमासे पांचवे पक्षमें माघ्याष्टमी गयाके समान कही है, त्रयोदशी और गजच्छाया पितृश्राद्धमें गयाके तुल्य है । आश्विनकृष्णाष्टमीको महालक्ष्मीका व्रत होता है । निर्णयामृतमें पुराणसमुच्चयका कथन है कि भाद्रपदके शुक्लपक्षकी अष्टमीको लक्ष्मीके पूजनका प्रारम्भ करके जबतक कन्याका सूर्य प्राप्त न हो तबतक समाप्त करदे, अथवा जबतक उस तिथिमें सूर्य कन्याके पूर्वार्द्धमें हो तबतक पूर्ण करें वहां ही यह लिखा है कि, कन्याके सूर्यमें प्रारंभ करके लक्ष्मीका पूजन करे, और जब हस्तनक्षत्रके चौथे चरणमें सूर्य हो तबतक लक्ष्मीके व्रतको पूर्ण न करे, गृहस्थीको वर्षा-

प्रावृषि श्रियः । दोषैश्चतुर्भिः संयुक्ता सर्वसंपत्करी तिथिः" ॥ २ ॥ तथा- "पुत्रसौभाग्यराज्यायुर्नाशिनी सा प्रकीर्तिता । तस्मात्सर्वप्रयत्नेन त्याज्या कन्यागते रवौ । विशेषेण परित्याज्या नवमी दूषिता यदि ॥" इति । दोषचतुष्टयं तत्रैवोक्तम् । "त्रिदिने चावमे चैव अष्टमीं नोपवासयेत् । पुत्रहा नवमी विद्धा स्वघ्नी हस्तोर्ध्वगे रवौ" इति । त्रिदिनावमदिनलक्षणं च रत्नमालायाम्-"यत्रैकः स्पृशति तिथिद्वयावसानं वारश्चेदवमदिनं तदुक्तमार्यैः । यः स्पर्शाद्भवति तिथित्रयस्य चाह्नां त्रिद्युस्पृक्कथितमिदं द्वयं च नेष्टम् "॥ एते च सर्वे निषेधाः प्रथमारंभविषयाः मध्ये तु सति संभवे ज्ञेयाः । व्रतस्य षोडशाब्दसाध्यत्वेन मध्ये त्यागायोगात् । इयं चन्द्रोदयव्यापिनी ग्राह्या । तत्रैव पूजाद्युक्तेः । परदिने चन्द्रोदयादूर्ध्वं त्रिमुहूर्त्तव्यापित्वे परैव कार्या । अन्यथा पूर्वैव ॥ "पूर्वा वा परविद्धा वा ग्राह्या चन्द्रोदये सदा । त्रिमुहूर्तापि सा पूज्या परतश्चोर्ध्वगामिनी " इति मदनरत्ने निर्णयामृते च संग्रहोक्तेः । "अर्धरात्रमतिक्रम्य वर्तते योत्तरा तिथिः । तदा तस्यां तिथौ कार्यं महालक्ष्मीव्रतं सदा" इति वचनाच्चेति संक्षेपः । इति महालक्ष्मीव्रतनिर्णयः ॥ अन्वष्टकाश्राद्धनिर्णयः । अथ नवम्यामन्वष्टकाश्राद्धम् । तत्र कात्यायनः-"अन्वष्टकासु नवभिः पिण्डैः श्राद्धमुदाहृतम् । पित्रादिमातृमध्यं च ततो मातामहांतकम् ॥" । पृथ्वीचन्द्रोदये ब्रह्माण्डे-"पितॄणां प्रथमं

ऋतुमें लक्ष्मीका अष्टमीको पूजन करना चाहिये । वह अष्टमी संपदा करनेवाली है किन्तु जिसमें चार दोष हैं, तैसेही पुत्र, सौभाग्य, राज्य, आयु, नष्ट करनेवाली वह अष्टमी कही है उससे सम्पूर्ण यत्नसे कन्यार्कमें त्यागने योग्य है, और नवमीसे दूषित हो तो विशेषकर त्यागने योग्य है, अष्टमीको चार दोष वहांही लिखे हैं. तीन दिनमें और अवममें व्रत न करे। नवमीसे विद्धा अष्टमी पुत्रको मारती है, आधे हस्तनक्षत्रपै जब सूर्य हो तब अष्टमी धनको नष्ट करती है, त्रिदिन और अवमका लक्षण रत्नमालामें यह लिखा है कि, जहां वार एकबार दो तिथियोंके अन्तका स्पर्श करे वह त्रिदिन कहा है, ये दोनोंही श्रेष्ठ नहीं हैं, यह सब निषेध महालक्ष्मीव्रतके प्रथम प्रारम्भके विषयमें लिखे हैं, मध्यमें संभव हो तो जानने कारण कि, यह व्रत सोलहवर्षतक होता है, उसके बीचमें त्यागना नहीं चाहिये, यह चन्द्रोदयव्यापिनी लेनी कारण कि, चन्द्रोदयके समयही पूजा आदि लिखी है, यदि परदिनमें चन्द्रोदयके उपरान्त तीन मुहूर्त व्यापिनी हो तो अगली लेनी, अन्यथा पहली ही लेनी, कारण कि मदनरत्न और निर्णयामृतमें संग्रहका वाक्य है कि, पहली या परविद्धा हो तो चन्द्रोदयके समयकी ही लेनी । यदि चन्द्रोदयके उपरान्त तीन मुहूर्त हो तो वह ही पूजन योग्य है, यह भी लिखा है कि, आधीरातके पीछे अगली तिथि वर्त्ते तो उस तिथिमें महालक्ष्मीका व्रत निरंतर करे । इति संक्षेपः । इति महालक्ष्मीव्रतनिर्णयः ॥ अब नवमीको अन्वष्टकाश्राद्ध लिखते हैं कि, उसमें कात्यायनने लिखा है कि, अन्वष्टकामें नवपिंडोंसे श्राद्ध लिखा है, पिता आदि ३, माता आदि ३, मातामह आदि ३, पृथ्वीचन्द्रोदयमें ब्रह्माण्ड-

दद्यान्मातॄणां तदनन्तरम् । ततो मातामहानां च अन्वष्टक्ये क्रमः स्मृतः ॥" श्राद्धहेमाद्रौ छागलेयः "केवलास्तु क्षये कार्या वृद्धावादौ प्रकीर्तिताः । अन्वष्टकासु मध्यस्था नान्त्याः कार्यास्तु मातरः ॥" दीपिकायां तु मातृश्राद्धमादौ कार्यमित्युक्तम् । मातृयजनं त्वन्वष्टकास्वादितः इति । हेमाद्रौ ब्राह्मेऽपि-'अन्वष्टकासु क्रमशो मातृपूर्वं तदिष्यते' इति । अत्र शाखाभेदेन व्यवस्थेति पृथ्वीचन्द्रोदयः। जीवत्पितृकविषयामिति निर्णयदीपः । इदं च जीवत्पितृकेणापि कार्यम् । तदुक्तं निर्णयामृत मैत्रायणीयपरिशिष्टे-" आन्वष्टक्यं गयाप्राप्तौ सत्यां यच्च मृतेऽहनि । मातुः श्राद्धं सुतः कुर्यात्पितर्यपि च जीवति॥" यद्यपि जीवत्पितृकस्य पञ्चान्वष्टका अवश्यं कर्तव्याः । तथाप्यशक्तस्येयमावश्यकी ॥ ' प्रौष्ठपद्यष्टका भूयः पितृलोके भविष्यति' इति हेमाद्रौ पाद्मोक्तेः । "सर्वासामेव मातॄणां श्राद्धं कन्यागते रवौ । नवम्यां हि प्रदातव्यं ब्रह्मलब्धवरा यतः " ॥ इति सूतेनावश्यकत्वोक्तेश्च । अत्र सर्वासामित्युक्तेः स्वमातरि जीवन्त्यामपि सपत्नमातृभ्यो दद्यात् । तन्मरणे सति तस्यै ताभ्यश्च दद्यादित्युक्तं जीवत्पितृकनिर्णये गुरुभिः ॥ अत्र सर्वासां नामनिर्देशेनैको ब्राह्मणोऽर्घ्यः पिण्डश्च । नामैक्ये तु द्विवचनादि-

---

पुराणका यह कथन है कि, पहले पितरोंको दे उसके पीछे माताआदिको और उसके पीछे मातामहादिको देना यह अन्वष्टका श्राद्धमें क्रम लिखा है । श्राद्धहेमाद्रिमें छागलेयका कथन है कि 'क्षयीश्राद्धमें केवल माताओंका पूजन करे, वृद्धिश्राद्धमें आदिमें, और अन्वष्टकाश्राद्धमें मध्यमें, और अन्तमें कभी न करे. दीपिकामें तो यह लिखा है कि, मातृश्राद्ध आदिमें करना. कारण कि यह कथन है कि-माताओंका पूजन अन्वष्टकामें आदिमें करे, हेमाद्रिमें ब्रह्मपुराणका कथन है कि, अन्वष्टकाओंमें क्रमसे मातृपूर्वक श्राद्ध करना चाहिये । यहां शाखाभेदसे व्यवस्था जाननी चाहिये यह पृथ्वीचन्द्रोदयमें कहा है. निर्णयदीपिकामें यह कहा है कि, जीवत्पितृक ही मातृपूर्वक श्राद्ध करे, यह श्राद्ध जीवत्पितृकको भी करना चाहिये, सो निर्णयामृतके परिशिष्ट मैत्रायणीयशाखामें लिखा है कि, गयाकी प्राप्तिके समयमें अन्वष्टकाश्राद्ध और मरनेके दिनका क्षयीश्राद्ध करना, इस माताके श्राद्धको पुत्र पिताके जीवते भी करे, यद्यपि जीवत्पितृकको पांचो अन्वष्टकाश्राद्ध अवश्य कर्तव्य हैं, तथापि असमर्थ मनुष्यको यह अन्वष्टका श्राद्ध अवश्यक है कारण कि, हेमाद्रिमें पद्म पुराणका लेख है कि, भाद्रपदकी अष्टका फिर पितृलोकमें होगी, इस वाक्यसे सूतने भी इसका आवश्यक लिखा है कि, कन्याके सूर्यमें सब माताओंका श्राद्ध नवमीको करना, जिससे उनको ब्रह्माका वर प्राप्त है, इस वाक्यमें सब माताओंका कहनेसे अपनी माताके जीवते हुए भी माताकी सपत्नीको देना । माताकी मृत्यु होनेपर माताकी और सपत्नीको दे, भी यह बात जीवत्पितृकनिर्णयमें हमारे गुरुने लिखी है । यहां सबका नाम लेकर एक ब्राह्मण, एक अर्घ्य और एक पिण्ड दे, दो माताओंको एक नाम

प्रयोगे इत्युक्तं नारायणवृत्तौ। अन्वष्टकाश्राद्धं तद्यागश्च गोभिलीयानां मध्यमायामेव, न सर्वासु। 'अन्वष्टक्यं मध्यमायामिति गोभिलगौतमौ' इति छान्दोगपरिशिष्टात्। अत्र भर्तृमरणोत्तरं पूर्वमृतमातृश्राद्धं न कार्यमिति केचिदाहुः पठन्ति च। 'श्राद्धं नवम्यां कुर्यात्तन्मृते भर्तरि लुप्यते' इति तदेतन्निर्मूलत्वान्मूर्खप्रतारणमात्रम्। श्राद्धदीपकलिकायां ब्राह्मे-"पितृमातृकुलोत्पन्ना याः काश्चित्तु मृताः स्त्रियः। श्राद्धार्हा मातरो ज्ञेयाः श्राद्धं तत्र प्रदीयते॥" इति। अत्र देशाचाराद्व्यवस्था। इदं चानुपनीतेनापि कार्यम्। तदुक्तं श्राद्धशूलपाणौ मात्स्ये-'अमावास्याष्टकाकृष्णपक्षपञ्चदशीषु च' इत्यभिधाय "एतच्चानुपनीतोऽपि कुर्यात्सर्वेषु पर्वसु। श्राद्धं साधारणं नाम सर्वकामफलप्रदम्॥ भार्याविरहितोऽप्येतत्प्रवासस्थोऽपि नित्यशः। शूद्रोऽप्यमन्त्रवत्कुर्यादनेन विधिना बुधः॥" इति। तेन साग्नेरेवेदमिति परास्तम्। अन्वष्टकातः पृथगेवेदं मातुः श्राद्धमित्यपि परास्तम्। लाघवेन मूलैक्यादष्टकापदाविशेषाच्च। तेनान्यत्रान्वष्टकाश्राद्धस्यांगस्याप्यत्र प्रधानत्वं वचनात्। अवेष्टेरिव राजसूयांतर्गतायाः। एतयान्नाद्यकामं याजयेत् इति फलार्थत्वम्। अत्र अष्टकान्वष्टका पूर्वानुरोधात्। तथाग्निपुराणे

हो तो द्विवचन आदि प्रयोग करे, यह नारायणवृत्तिमें कहा है। अन्वष्टका श्राद्ध और उसका त्याग गोभिलियोंको मध्यमामें है सब तिथियोंमें नहीं है कारण कि, छांदोग्यपरिशिष्टका यह लेख है कि, अन्वष्टकाश्राद्ध मध्यमामें करना यह गोभिल और गौतम कहते हैं, यहां पतिके मरनेके उपरान्त पहले मृतक हुई माताका श्राद्ध न करना चाहिये, यह कोई कहते और पढते भी हैं, माताका श्राद्ध नवमीको करना और भर्ता मृतक हो जाय तो उसका लोप होजाता है, सो यह सब निर्मूल होनेसे मूर्खोंको वंचनामात्र है सिद्धान्त नहीं जानना। श्राद्धदीपकलिकामें ब्रह्मपुराणका वाक्य है कि, पिता और माताके कुलमें उत्पन्न हुई जो स्त्री मरी हों, वह सब श्राद्धके योग माता जाननी चाहिये, उनको श्राद्ध नवमीको दिया जाता है इसमें देशके आचारसे व्यवस्था जाननी उचित है। यह श्राद्ध उसको भी करना चाहिये कि, जिसका यज्ञोपवीत न हुआ हो, श्राद्ध तो शूलपाणिने मत्स्यपुराणसे लिखा है कि, अमावस्या, अष्टका, कृष्णपक्षपञ्चदशीको कहकर लिखा है कि, सब पर्वोंमें यज्ञोपवीत नहीं होनेपर भी इसको करे। सब कामना और फलके देनेवाले साधारण श्राद्धको भार्यारहित परदेशमें स्थितको भी नित्य करना चाहिये। और मन्त्रोंके विना बुद्धिमान् शूद्र भी इसी प्रकारसे करे इससे इस बातका निषेध हुआ कि, अग्निहोत्री ही इस श्राद्धको करे, और अष्टकासे भिन्न ही यह मातृका श्राद्ध है, यह भी निषेध हुआ कारण कि, इसमें लाघव आता है आर सबका मूल एक है और अष्टकापदसे कुछ विशेष नहीं इससे और श्राद्धोंमें अंग (अप्रधान) अन्वष्टका श्राद्धको यहां वाक्यसे प्रधानता प्राप्त है, राजसूययज्ञके भीतर अवेष्टिके समानकी अवेष्टीयज्ञ उस करना चाहिये, जिसको अन्न आदिकी इच्छा हो, यहां पूर्ववाक्यके अनुरोधसे अष्टकासे अन्वष्टका ग्रहण करनी सोई अग्निपुराणमें कहा है कि,

"अन्वष्टकासु वृद्धौ च गयायां च क्षयेऽहनि । अत्र मातुः पृथक् श्राद्धमन्यत्र पतिना सह ॥" आपस्तम्बानाम्–'अष्टकासु च वृद्धौ चेत्' इति भाष्यकारैः पाठादष्टकायां मातृकाश्राद्धम् । छान्दोगैस्त्वत्र मातृमातामहश्राद्धे न कार्ये किन्तु त्रिपुरुषमेव । "न योषिद्भ्यः पृथग्दद्यादवसानादिनादृते । कर्षूसमन्वितं मुक्त्वा तथाद्यं श्राद्धषोडशम् ॥ प्रत्याब्दिकं च शेषेषु पिण्डाः स्युः षडिति स्थितिः ॥" इति छन्दोगपरिशिष्टात् । अन्वष्टकासु तेषां कर्षूविधानादिति शूलपाणिः । यत्तु–"तमिस्रपक्षे नवमी पुण्ये भाद्रपदे हि या । चत्वारः पार्वणाः कार्याः पितृपक्षे मनीषिभिः ॥" इति तद्देशाचारतो व्यवस्थितं ज्ञेयम् । इदं जीवत्पितृकेणापि सपिण्डं कार्यम् । हेमाद्रौ विष्णुधर्मोत्तरे–'अन्वष्टकासु च स्त्रीणां श्राद्धं कार्यं तथैव च । ' इत्युपक्रम्य 'पिण्डनिर्वपणं कार्यं तस्यामपि नृसत्तम' इति वचनं श्राद्धविधिना पिण्डदाने प्राप्ते पुनस्तत्कीर्तनं यस्य जीवत्पितृकगर्भिणीपतित्वादिना पिण्डदानं निषिद्धं तस्य तत्प्राप्त्यर्थमिति श्रीतातचरणाः । तत्र सुवासिनीभोजननिर्णयः । अत्र सुवासिनीभोजनमुक्तं मार्कण्डेयपुराणे–"मातुः श्राद्धे तु सम्प्राप्ते ब्राह्मणैः सह भोजनम् । सुवासिन्यै प्रदातव्यमिति शातातपोऽब्रवीत् ॥ 'भर्तुरग्रे मृता नारी सह दाहेन वा मृता । तस्याः स्थाने नियुञ्जीत विप्रैः सह सुवासिनीम् ॥" तत्रैवं मदालसावा-

---

अन्वष्टका, वृद्धि, गया और क्षयीश्राद्धमें माताका पृथक् श्राद्ध होता है, और अन्यत्र पतिके संग होता है। आपस्तम्बोंके मतमें तो (अष्टकासु वृद्धौ चेत्) यह भाष्यकारोंके पाठसे अष्टकामें भी मातृश्राद्ध होता है । छन्दोगोंका तो यह कथन है कि, अष्टकामें माता और मातामहके श्राद्ध न करने चाहिये, किन्तु तीन पुरुष पर्यन्त करने। कारण कि, छन्दोगपरिशिष्टमें लिखा है कि, मृत्युके दिनको त्यागकर स्त्रियोंको पृथक् न दे । कर्षूसे युक्त श्राद्धको त्याग दें उसमें सोलह श्राद्ध होते हैं । शूलपाणिका यह मत है कि, अष्टकामें उनके भी कर्षूकी विधि है जो यह किसीका कथन है कि, भाद्रपदमें कृष्णपक्षकी नवमी पवित्र है उसमें पितृपक्षके चार पार्वण बुद्धिमान् मनुष्यको करने चाहिये। यह देशाचारकी व्यवस्थासे जानना उचित है। इसको जीवत्पितृक भी सपिण्ड करे। हेमाद्रिके विष्णुधर्मोत्तरमें कहा है कि, इसी प्रकार अन्वष्टकाओंमें स्त्रियोंका श्राद्ध करे यह प्रारम्भ करके यह कथन है कि, हे नृपोत्तम ! उसमें भी पिण्डदान करे। श्राद्धविधिसे पिण्डदान प्राप्त ही था. फिर उसका कथन इस कारण है कि, जिसको पिताके जीते और गर्भिणी स्त्री आदिसे पिंडदान निषेध है उसको भी पिंडदानका अधिकार है यह हमारे पिताजीके चरण कहते हैं । यहां सुहागिनको भोजन कराना मार्कण्डेय पुराणमें लिखा है कि, माताके श्राद्ध आनेपर ब्राह्मणोंके संग सुवासिनियोंको भी भोजन देना यह शातातपने लिखा है। जो स्त्री पतिके आगे मृतक हुई हो वा सती हुई हो उसके स्थानमें ब्राह्मणोंके संग सुवासिनीको भी युक्त करना।वहां ही

क्यम्-"स्त्रीश्राद्धे पुत्रदेयाः स्युरलंकाराश्च योषिते । मञ्जीरमेखलादामकर्णिका-कंकणादयः ॥" इति । अशक्तौ श्राद्धकरणे निर्णयः । अत्राशक्तावनुकल्पमाहाश्व-लायनः-'अनडुहो यवसमाहरेदग्निना वा कक्षमुपोषेदेषामेऽष्टकेति न त्वेवानष्टकः स्यात्' इति । हेमाद्रौ पितामहः-"अमावास्याव्यतीपातपौर्णमास्यष्टकासु च । विद्वान् श्राद्धमकुर्वाणो नरकं प्रतिपद्यते ॥" अकरणे प्रायश्चित्तनिर्णयः। अकरणे च प्रायश्चित्तमुक्तमृग्विधाने-" एभिर्द्युभिर्जपेन्मन्त्रं शतवारं तु तद्दिने । आन्वष्टक्यं यदा शून्यं संपूर्णं याति सर्वथा ॥" इति । एतत्पक्षे द्वादश्यां विशेषः पृथिवीचन्द्रोदये वायवीये-" संन्यासिनोऽप्याब्दिकादि पुत्रः कुर्याद्यथाविधि । महालये तु यच्छ्राद्धं द्वादश्यां पार्वणं तु तत् ॥ " इति मघात्रयोदशीश्राद्धनिर्णयः ॥ अथ त्रयोदशीश्राद्धम् । तत्र चन्द्रिका-"त्रयोदशी भाद्रपदी कृष्णा मुख्या पितृप्रिया । तृप्यंति पितरस्तस्यां वर्षं पञ्चशतं समाः ॥ मघायुतायां तस्यां तु जलाद्यैरपि तोषिताः । तृप्यंति पितरस्तद्वद्वर्षाणामयुता-युतम् ॥ २ ॥" प्रयोगपारिजाते शंखः-"प्रौष्ठपद्यामतीतायां मघायुक्तां त्रयो-दशीम् । प्राप्य श्राद्धं तु कर्तव्यं मधुना पायसेन च । प्रजामिष्टां यशः स्वर्ग-मारोग्यं च धनं तथा । नृणां श्राद्धे सदा प्रीताः प्रयच्छंति पितामहाः ॥ २ ॥"

मदालसाने कहा है कि, स्त्रीके श्राद्धमें स्त्रीको भूषण, मञ्जीरे, मेखला, कर्णिका, ककंण आदि देना उचित है । इसमें शक्ति न हो तो आश्वलायनने अनुकल्प लिखा है कि, आठवें प्रहरमें बैलके निमित्त घास लावे, वा अग्निसे तृणको जलावे, इनसे भी अष्टकाश्राद्ध होता ह । हेमा-द्रिमें पितामहने कहा है कि, अमावस्या, व्यतीपात, पौर्णमासी, अष्टकामें श्राद्ध न करनेसे नरकमें जाना होता है । न करनेमें प्रायश्चित्त भी ऋग्विधानमें लिखा है कि, जब अन्वष्टका श्राद्ध न हो सके तब उसदिन (ऐभिर्द्युभिः) इस मंत्रको सौवार जपना चाहिये तो अवश्य पूर्ति होती है । इस पक्षकी द्वादशीमें विशेष पृथ्वीचन्द्रोदयमें वायुपुराणके वाक्यसे कहा है कि, पुत्रको संन्यासीपिताका भी वार्षिक श्राद्ध देना चाहिये और महालयमें जो द्वादशी श्राद्ध है वह पार्वण है । इसमें त्रयोदशीश्राद्ध होता है । उसमें चन्द्रिकाका कथन है कि, भाद्रपदमें कृष्णपक्षकी त्रयोदशी मुख्य और पितरोंको प्रिय है, उसमें पितर श्राद्धसे पांचसौ वर्षतक तृप्त होते हैं और मघानक्षत्रसे युक्त उसको पानयि आदिसे भी प्रसन्न किये पिता लक्षों वर्षतक तृप्त होते हैं । प्रयोगपारिजातमें शंखका वाक्य है कि, भाद्रपदकी पूर्णिमाके बीतनेपर मघायुक्त त्रयोदशीको मधु और पायससे श्राद्ध करना चाहिये तो इच्छित प्रजा, यश, स्वर्ग,

---

१ एभिर्द्युभिः सुमनाएभिरिन्दुभिर्निरुन्धानो अमतिंगोभिरश्विना इन्द्रेण दस्युंदरयन्तइन्दु-भिर्युतद्वेषसः समिषारभेमहि ऋ० १ । ४ । १५ ॥

एतन्नित्यमपि पृथ्वीचन्द्रोदये विष्णुधर्मे-"प्रौष्ठपद्यामतीतायां तथा कृष्णत्रयोदशी" इत्युक्त्वा । "एतांस्तु श्राद्धकालान्वै नित्यानाह प्रजापतिः । श्राद्धमेतेष्वकुर्वाणो नरकं प्रतिपद्यते" इत्युक्तेः । एतच्चाविभक्तैरपि पृथक्कार्यम् । तथा च हेमाद्रौ "विभक्ता वाविभक्ता वा कुर्युः श्राद्धं पृथक् सुताः । मघासु च ततोऽन्यत्र नाधिकारः पृथग्विना" इति ॥ तत्र गजच्छायानिर्णयः । अपरार्के वायवीये-"हंसे हस्तस्थिते या तु मघायुक्ता त्रयोदशी । तिथिर्वैवस्वती नाम सा छाया कुञ्जरस्य तु ॥" अत्र च । "अपि नः स कुले भूयाद्यो नो दद्यात्त्रयोदशीम् । पायसं मधुसर्पिर्भ्यां प्राक्छाये कुञ्जरस्य च ॥" इति विष्णुमनुवचने । केवलत्रयोदशी श्रुतेर्मघागुण इति कल्पतरुः । शूलपाणिस्तु-केवलवाक्यानामर्थवादत्वाद्विधौ च मघायोगश्रुतेर्विधिलाघवात् विशिष्टमेव निमित्तमित्याह । वस्तुतस्तु-"मधुमांसैश्च शाकैश्च पयसा पायसेन च । एष नो दास्यति श्राद्धं वर्षासु च मघासु च ॥" इति वसिष्ठवचने केवलमघाश्रुतेर्विनिगमकाभावादुभयं भिन्ननिमित्तम् । पूर्वोक्तवचनाच्च योगाधिक्ये फलाधिक्यम् । अत एव याज्ञवल्क्यः-'तथा वर्षात्रयोदश्यां मघासु च विशेषतः' इति । त्रयोदशीश्राद्धं नित्यम् । अन्यत्काम्यम् । अत्र त्रयोदश्यां बहुपुत्रा युवमारिणस्तु भवंतीत्यापस्तंबोक्तेर्युवमारित्वमपत्यदोषं सहिष्णोरपत्यमात्रार्थिनः स्मृत्यन्तरोक्तधनार्थिनो वाधिकार इति कल्पतरुः । अपत्यनिंदया तदर्थिनां नाधिकारात् । 'फलान्तरकामस्यैवाधिकारः' इति हलायुधः । एतत् पिण्डरहितं

आरोग्य उनको प्रसन्न हुए पितामह देते हैं । पृथ्वीचन्द्रोदयके विष्णुधर्ममें यह नित्य भी लिखा है कि, भाद्रपदकी पूर्णिमाके उपरान्त कृष्णपक्षकी त्रयोदशी है यह लिखकर कहा है कि, श्राद्धके इतने नित्यकाल ब्रह्माने कहे हैं इनमें श्राद्ध न करनेसे नरक होता है, इसको इकट्ठे रहते भी भ्राता भिन्न २ करें । सोई हेमाद्रिमें लिखा है कि, विभक्त हों वा इकट्ठे हों पुत्र मघानक्षत्रमें भिन्न २ श्राद्ध करे अन्यत्र भिन्न २ अधिकार नहीं है । अपरार्कमें वायुपुराणका वाक्य है कि, हस्तके सूर्यमें मघायुक्त त्रयोदशी वैवस्वती नाम तिथि है और गजच्छाया है, और हमारे कुलमें जो वह हो तो उसमें और गजकी प्राक्छायामें मधु और घीसे युक्त पायस देनी । इस मनुवाक्यमें त्रयोदशी लिखी है इससे मघा गौणपक्ष है यह कल्पतरुमें कहा है । शूलपाणिने तो यह लिखा है कि, केवल तिथि वाक्योंको अर्थवाद होनेसे और विधिमें मघायोगके सुननेसे और विधिमें लाघवसे, मघा और त्रयोदशी दोनों ही श्राद्धमें निमित्तभूत हैं । सिद्धान्त तो यह है कि-मधु, घी, दूध, पायससे यह पुत्र हमको वर्षा और मघानक्षत्रमें श्राद्ध देगा इस वसिष्ठके कथनमें केवल मघाही श्रवण किया है विनिगमनाके अभावसे और पूर्वोक्त वाक्यसे दोनों भिन्न २ ही निमित्त हैं. कारण कि, प्रयोगकी अधिकतासे फल भी अधिक मिलता है, इसीसे याज्ञवल्क्यने कहा है कि, तैसे ही वर्षा त्रयोदशी और विशेषकर मघामें श्राद्ध देना, त्रयोदशीका श्राद्ध नित्य है, और श्राद्ध काम्य हैं, इस त्रयोदशीमें उसको अधिकार है जिसके निर्दोष बहुतसे

कार्यम् । "मघायुक्तत्रयोदश्यां पिण्डनिर्वपणं द्विजः । ससंतानो नैव कुर्यान्नित्यं ते कवयो विदुः" इति बृहत्पराशरोक्तेः । इदं मलमासेऽपि कार्यम् । मघात्रयोदशी-श्राद्धं प्रत्युपस्थितिहेतुकम् । अनन्यगतिकत्वेन कर्तव्यं स्यान्मालिम्लुचे ॥" इति काठकगृह्योक्तेः । यानि तु अंगिराः—"त्रयोदश्यां कृष्णपक्षे यः श्राद्धं कुरुते नरः । पंचत्वं तस्य जानीयाज्ज्येष्ठपुत्रस्य निश्चितम् ॥" 'वामनपुराणे—"त्रयोदश्यां तु वै श्राद्धं न कुर्यात्पुत्रवान् गृही" इत्यादीनि वचनानि, तानि पुत्रवद्विषयाणि वा महालयस्य भिन्नत्रयोदशीविषयाणि वा काम्यश्राद्धविषयाणि वा सपिण्डकश्राद्ध-विषयाणि वेति केचित् । हेमाद्रिप्रमुखास्त्वेकवर्गश्राद्धविषयाणि--"श्राद्धं नैवैकव-र्गस्य त्रयोदश्यामुपक्रमेत् । न तृप्तास्तत्र ये यस्य प्रजा हिंसंति तस्य ते ॥" इति कार्ष्णाजिनिस्मृतेः । यद्यपि–'पितरौ यत्र पूज्यन्ते तत्र मातामहा अपि' इति धौम्योक्तेर्न केवलपितृवर्गस्य प्राप्तिस्तथापि व्यामोहादिप्राप्तनिषेधोऽयमित्याहुः । वयं तु पश्यामः । पुत्रवद्विषयाण्येवेति । "असंतानस्तु यस्तस्य श्राद्धे प्रोक्ता त्रयोदशी । संतानयुक्तो यः कुर्यात्तस्य वंशक्षयो भवेत् ॥" इति हेमाद्रौ नागर-खण्डोक्तेः । पूर्ववाक्यमप्यसंतानस्यैवैकवर्गनिषेधकमिति । अत्र मघात्रयोदशी महालययुगादिश्राद्धानां तन्त्रेण प्रयोगः । न तु प्रसंगसिद्धिरित्यन्यत्र विस्तरः ।

पुत्र हों, इस आपस्तम्बके कथनसे जो संतानके दोषको सहसके और संतानमात्रकी इच्छावाला वा केवल धनकी इच्छावाला है. हलायुधमें तो यह कहा है कि, सन्तानके निन्दासे संतानार्थीका अधिकार नहीं है और फलकी कामनावालेका अधिकार है । यह श्राद्ध पिंडरहित करना चाहिये. कारण कि, बृहत्पराशरने कहा है कि, मघायुक्त त्रयोदशीको सन्तानसहित ब्राह्मण पिण्डदान न करे यह नित्य कविजन जानते हैं. इसको मलमासमें भी करना कारण कि, काठकगृह्यमें लिखा है कि, मघात्रयोदशी श्राद्धमें प्रत्युपस्थिति (मिलना) ही कारण है इससे अनन्यगति होनेसे मलमासमें भी श्राद्ध करना, जो ये अंगिरा आदिके वाक्य हैं कि, जो मनुष्य त्रयोदशी कृष्णपक्षमें श्राद्ध करता है, उसके ज्येष्ठ पुत्रका निश्चय मरण जानना. वामनपुराणमें लिखा है कि, पुत्रवाला गृहस्थी त्रयोदशीको श्राद्ध न करे, ये वाक्य पुत्रवाले गृहस्थीके वा महालयसे भिन्न त्रयोदशीके काम्यश्राद्धके वा सपिण्डक श्राद्धके विषयमें हैं, कोई यह कहते हैं कि, हेमाद्रि आदिका तो यह कथन है कि, एकवर्गके श्राद्ध विषयमें कारण कि कार्ष्णाजिनिकी स्मृतिमें लिखा है कि, त्रयोदशीमें एकवर्गके श्राद्धका प्रारम्भ न करे, करे तो तृप्त न होनेसे पितर उसकी प्रजाकी हिंसा करते हैं । यद्यपि जहां पितरोंका पूजन होता है वहां माता-महोंका भी होता है इस धौम्यकी उक्तिसे केवल पितृवर्गकी प्राप्ति नहीं तथापि व्यामोह (भ्रम) से प्राप्तका यह निषेध है । किन्हीका यह कथन है. हम तो यह कहते हैं कि, पुत्रवाले गृहस्थीके विषयमें है. कारण कि, हेमाद्रिमें नागरखण्डका वाक्य है कि, जिसके सन्तान न हो उसके श्राद्धमें त्रयो-दशी लिखी है और जो सन्तानयुक्त करे तो उसके कुलका क्षय होता है, पूर्व वाक्य भी सन्तान-हीनकोही हो एकवर्गका निषेधक है इसमें मघा, त्रयोदशी, महालय युगादि श्राद्धको एकतन्त्रसे (इकट्ठे) करे क्रमसे नहीं (इत्यन्यत्र विस्तरः) इसका और जगह विस्तार है ।

कृष्णचतुर्दश्यां शस्त्रादिहतानां श्राद्धनिर्णयः। अथ चतुर्दशी—पृथ्वीचन्द्रोदये प्रचेताः—"वृक्षारोहणलोहाद्यैर्विद्युज्जलविषाग्निभिः। नखिदंष्ट्रिविपन्ना ये तेषां शस्ता चतुर्दशी॥" ब्राह्मे—"युवानः पितरो यस्य मृताः शस्त्रेण वा हताः। तेन कार्यं चतुर्दश्यां तेषां तृप्तिमभीप्सता॥" नागरखण्डे—"अपमृत्युर्भवेद्येषां शस्त्रमृत्युरथापि वा। श्राद्धं तेषां प्रकर्तव्यं चतुर्दश्यां नराधिप॥" एतच्च—'प्रायोऽनाशकशस्त्राग्निविषोदकोद्बन्धनप्रपतनैश्चेच्छताम्' इति गौतमोक्तदुर्मरणोपलक्षणम् एकयोगनिर्देशात्। "सर्वेषां तुल्यधर्माणामेकस्यापि यदुच्यते। सर्वेषां तत्समं ज्ञेयमेकरूपा हि ते स्मृताः" इत्युशनसोक्तेश्च॥ तच्च कृतक्रियाणामेवेति वक्ष्यामः। मरीचिः—"विषशस्त्रश्वापदाहितिर्यग्ब्राह्मणघातिनाम्। चतुर्दश्यां क्रियाः कार्या अन्येषां तु विगर्हिताः॥" अत्र ब्राह्मणघाती तेन हतो, न तु ब्रह्महा। तस्य पतितत्वादिति शूलपाणिः। अत्रोद्देश्यविशेषणस्याविवक्षितत्वात्। स्त्रीणामपि शस्त्रादिहतानामेकोद्दिष्टं कार्यं, न पार्वणमिति श्रीदत्तोपाध्यायः॥ 'इदं विषादिहतानामेव न प्रसवादिमृतानाम्' इति वाचस्पतिः। यत्तु शाकटायनः—"जलाग्निभ्यां विपन्नानां संन्यासे वा गृहे पथि। श्राद्धं कुर्वीत तेषां वै वर्जयित्वा चतुर्दशीम्" इति। तत्प्रायश्चित्तार्थजलादिमृतविषयमित्याकरे उक्तम्। अत

पृथ्वीचन्द्रोदयमें प्रचेताका कथन है कि, जो मनुष्य वृक्षपर चढनेसे, लोह, बिजली, जल, विष, अग्नि, नख और दाढवाले जीवोंसे मरे हों उनके श्राद्धमें चतुर्दशी श्रेष्ठ है। ब्रह्मपुराणमें लिखा है कि, जिसके युवा पितर मरे हों वा शस्त्रसे मरे हों उनकी तृप्तिकी इच्छा करता हुआ मनुष्य उनका श्राद्ध चतुर्दशीको करे। नागरखण्डमें लिखा है कि, जिनकी अपमृत्यु या शस्त्रसे मृत्यु हुई हे राजन्! उनका श्राद्ध चतुर्दशीको करना, यह पूर्वोक्तकथन गौतमके कहे इन दुर्मरणोंके भी उपलक्षणवाला है कि, अनशनव्रत, शस्त्र, अग्नि, विष, जल, बंधन, वृक्षआदिसे गिरना जानकर जो इनसे मरे हों, कारण कि, एक योग (इकट्ठे) से सब लिखे हैं, और उशनाने भी लिखा है कि समानधर्मवाले सबके बीचमें एकको भी जो कहाजाय वह सबको तुल्य जानना, कारण कि, सब लिखे हैं वह उनका ही होता है जिनकी क्रिया हो चुकी है, वह आगे लिखेंगे, मरीचिने कहा है कि, विष, शस्त्र, भेडिया, तिर्यग्योनि, ब्राह्मणसे जो मरे हों उनकी क्रिया चतुर्दशीको करनी इनसे अन्योंकी निंदित है, इस श्लोकमें ब्राह्मणघाती पदसे ब्रह्महत्यारेका ग्रहण नहीं है कारण कि, वह पतित है यह शूलपाणिने कहा है, यहां उद्देश्यके विशेषण पुँल्लिंगकी अविवक्षासे शस्त्रआदिसे मृतक हुई स्त्रियोंका भी एकोद्दिष्ट करना, पार्वण न करना। यह श्रीदत्तोपाध्यायका कथन है, विषआदिसे मृतक हुई स्त्रियोंका यह श्राद्ध करे और जो जननसे मृतकभी हों उनका नहीं यह वाचस्पतिमिश्रका कथन है. जो शाकटायनने यह लिखा है कि, जल, अग्नि, संन्यास घरसे जो मरे हों उनका श्राद्ध चतुर्दशीको त्याग कर करे, यह प्रायश्चित्तके निमित्त जलआदिसे मृतक हुओंके निमित्त है, यह आकरमें कथन है, इसी प्रकार हेमाद्रिने लिखा है कि

एव वैधत्वात् सहगमनेऽपि न कार्यमिति हेमाद्रिः। एतच्च दैवयुक्तमेकोद्दिष्टं कार्यमित्युक्तं प्रयोगपारिजाते—"प्रेतपक्षे चतुर्दश्यामेकोद्दिष्टं विधानतः। दैवयुक्तं तु तच्छ्राद्धं पितॄणामक्षयं भवेत्। तच्छ्राद्धं दैवहीनं चेत्पुत्रदारधनक्षयः। एकोद्दिष्टं दैवयुक्तमित्येवं मनुरब्रवीत्" ॥ २ ॥ भविष्येऽपि—"समत्वमागतस्यापि पितुः शस्त्रहतस्य च। चतुर्दश्यां तु कर्तव्यमेकोद्दिष्टं महालये ॥ चतुर्दश्यां तु यच्छ्राद्धं सपिण्डीकरणे कृते। एकोद्दिष्टविधानेन तत्कार्यं शस्त्रघातिनः ॥ २ ॥" इति ॥ संवत्सरप्रदीपे हारीतः—"विश्वेदेवांश्च तत्रापि पूजयित्वादितोऽमलान्। ये वै शस्त्रहतास्तेषां श्राद्धं कुर्यादतंद्रितः ॥" अत्रैकोद्दिष्टवचनानां निर्मूलत्वम्। समूलत्वेऽपि पार्वणाशक्तपराणि ॥ विष्ण्वादिवचनैः प्रकरणात् कृष्णपक्षीयपार्वणावगतेरिति शूलपाणिः। तन्न। वाक्येन प्रकरणस्य बाधात्। पित्रादीनां पार्वणं भ्रात्रादीनामेकोद्दिष्टमिति गौडार्वाञ्चः ॥ तन्न ॥ पितुरित्यनेन विरोधात्। विशेषवाक्यवैयर्थ्यापत्तेश्च। अत्र शस्त्रहतस्यैव चतुर्दश्यामिति नियमो, न तु चतुर्दश्यामेव शस्त्रहतस्येति। 'श्राद्धं शस्त्रहतस्यैव चतुर्दश्यां महालये' इति कालादर्शात् वार्षिकादीनामकरणापत्तेश्च। तेन महालये एव दिनांतरे पार्वणं मातामहादि-

---

सती होनेमें शास्त्रोक्त होनेसे भी न करे। यह श्राद्ध विश्वेदेवाओंसे युक्त एकोद्दिष्ट करना चाहिये, यह प्रयोगपारिजातमें लिखा है। मनुने भी लिखा है कि, यदि वह श्राद्ध दैवहीन हो तो पुत्र, दारा, धनका क्षय करता है, प्रेतपक्षकी चतुर्दशीको विधिसे दैवयुक्त एकोद्दिष्ट श्राद्ध करे तो पितरोंको अक्षय प्राप्त होता है, एकोद्दिष्ट दैवयुक्त होता है। भविष्यपुराणमें लिखा है कि, समताको प्राप्त हुए- और शस्त्रसे मृतक हुए पिताका महालयकी चतुर्दशीको एकोद्दिष्ट करे, सपिंडी करनेके पीछे चतुर्दशीमें जो श्राद्ध है वह एकोद्दिष्टविधिसे उसका करना, जो शस्त्रसे मृतक हुआ हो। संवत्सरप्रदीपमें हारीतने कहा है कि, वहां भी निर्मल विश्वदेवाओंकी पूजा करके जो शस्त्रसे मरे हैं उनका आलस्यको त्यागकर श्राद्ध करे, इसमें एकोद्दिष्टश्राद्धके बोधक वाक्य निर्मूल हैं. और मूलसहित भी मानो तो उसके निमित्त हैं जो पार्वणश्राद्ध करनेमें समर्थ नहीं है, कारण कि, विष्णुआदिके वाक्योंके प्रकरणसे कृष्णपक्षमें पार्वण ही प्रतीत होता है यह शूलपाणिका कथन है, सो उचित नहीं कारण कि वचनसे प्रकरणका बाध हो जाता है, पिछले गौड तो यह लिखते हैं कि पिताआदिकोंका पार्वण, भ्राता आदिकोंका एकोद्दिष्ट होता है सो उचित नहीं ॥ कारण कि (पितुः) इस पूर्वोक्तवाक्यसे विरोध है, और विशेषवाक्य भी व्यर्थ हो जाँयगे। यहां शस्त्रसे मृतकका ही चतुर्दशीको करना यह नियम है, और चतुर्दशीको ही शस्त्रसे मृतकका यह नियम नहीं. कारण कि, महालयमें शस्त्रहतका ही चतुर्दशीको श्राद्ध करना कहा है,

तृप्त्यर्थं कार्यमेव। पितामहोऽपि शस्त्रहतश्चेदेकोद्दिष्टद्वयं कार्यम्। तदुक्तं हेमाद्रौ स्मृत्यन्तरे-'एकस्मिन् द्वयोर्वैकोद्दिष्टम्' इति। त्रिशस्त्रहतेषु पार्वणमेव कार्यम्। यत्तु देवस्वामिनोक्तं त्रिष्वपि शस्त्रहतेषु पृथगेकोद्दिष्टत्रयं कार्यम्। न तु पार्वणमाहत्य वचनाभावादिति। तदयुक्तम्। "पित्रादयस्त्रयो यस्य शस्त्रैर्यातास्त्वनुक्रमात्। स भूते पार्वणं कुर्यादाब्दिकानि पृथक्पृथक्।" इति बृहत्पराशरोक्तेः। "एकस्मिन्वा द्वयोर्वापि विद्युच्छस्त्रेण वा हते। एकोद्दिष्टं सुतः कुर्यात्त्रयाणां दर्शवद्भवेत्॥" इति स्मृत्यन्तराच्चेति पृथ्वीचन्द्रोदये उक्तम्। अपरार्के हेमाद्रौ चैवम्। यस्तु अत्रैव शस्त्रादिना हतस्तस्य वार्षिकमेव पार्वणमेकोद्दिष्टं वा कार्यं न तु श्राद्धद्वयम्। प्रसङ्गसिद्धेरिति पृथ्वीचन्द्रोदये। श्राद्धाकरणे निर्णयः। अत्र श्राद्धाकरणेऽग्रिमापरपक्षे दिनान्तरे पार्वणेनैव कार्यमिति तत्रैवोक्तम्। यद्यपि- "शस्त्रविप्रहतानां च शृङ्गिदंष्ट्रिसरीसृपैः। आत्मनस्त्यागिनां चैव श्राद्धमेषां न कारयेत्।" इति छागलेयाद्यैः शस्त्रादिहतानां श्राद्धं निषिद्धम्। तथापि प्रमादमृतानां श्राद्धार्हत्वात् कार्यम्। वृद्धादिभिन्नबुद्धिपूर्वमृतानां तु न कार्यम्। यत्तु- 'चतुर्दश्यां तर्पणीया लुप्तपिण्डोदकक्रियाः।' इति ब्राह्मे। तद्गौणमिति शूल-

---

पितामह भी यदि शस्त्रसे मरा हो तो दो एकोद्दिष्ट करे, सोई हेमाद्रिमें किसी स्मृतिका वाक्य है कि, एक तिथिमें दोका भी एकोद्दिष्ट होता है, यदि तीन शस्त्रसे मृतक हुए हों तो पार्वण ही करना. जो देवस्वामीमें लिखा है कि, यदि तीन शस्त्रसे मरे हों तो तीन दिन एकोद्दिष्ट भिन्न भिन्न करे पार्वण न करे कारण कि, कोई भिन्नवाक्य नहीं है, सो उचित नहीं। जिसके पिताआदि तीन शस्त्रसे मरे हों वह चतुर्दशीको पार्वण करे और प्रतिवर्ष क्षयीके श्राद्ध भिन्न भिन्न करे, यह बृहत्पाराशरने लिखा है और यह अन्यस्मृतिका भी कथन है कि, एक वा दो बिजली वा शस्त्रसे मरे हों तो पुत्र एकोद्दिष्ट करे और तीनका अमावस्याके तुल्य पार्वणश्राद्ध करे, यह पृथ्वीचन्द्रोदयमें कथन किया है। अपरार्क और हेमाद्रिमें भी इसी प्रकार लिखा है, जो किसीने यह लिखा है कि, इसी तिथिमें जो शस्त्र आदिसे मृतक है उसका वार्षिकमें पार्वण वा एकोद्दिष्ट करना और प्रसंगसे दो श्राद्ध न करने यह पृथ्वीचन्द्रोदयमें कहा है। यदि इस तिथिमें श्राद्ध न हो सके तो अगले कृष्णपक्षमें वा और दिनमें पार्वण ही करे, यह यहां ही लिखा है। यद्यपि शस्त्र, ब्राह्मण, सींगवाले और दाढवाले सर्पसे जो मृतक हुए हैं और जिन्होंने शरीरका स्वयं त्याग किया है उनका श्राद्ध न करे, यह छागलेय आदि ऋषियोंने शस्त्रआदिसे मृतक हुओंका श्राद्धमें निषेध किया है। तथापि प्रमादसे जो मृतक हुए हैं उनको श्राद्धकी योग्यता है इससे करना। वृद्धआदिसे भिन्न जो जानकर मरे हैं उनका न करना। जो ब्रह्मपुराणमें यह लिखा है कि, चतुर्दशीमें मरोंका तर्पण करे और पिंडदान न करे, यह गौणपक्ष है। यह शूलपाणिका

पाणिः। लक्षणायां मानाभावात्। "पतितेनापि कर्तव्यं कर्तव्यं पतितस्य च।" इति गयादिवद्विशेषविधिबलात् पतितानामपि कार्यमिति नव्यगौडाः। तत्त्वं तु समत्वमागतस्य इत्यादिवशात् कृतक्रियाणां कार्यं नान्येषामिति वयं प्रतीमः। यत्तु मनुः–"न पैतृयज्ञियो होमो लौकिकाग्नौ विधीयते। न दर्शेन विना श्राद्धमाहिताग्नेर्विधीयते॥" इति। अत्र पूर्वार्द्धं हेतुत्वेनोक्तम्। तद्यथाश्रुतमेव मन्वते पृथ्वीचन्द्रोदयादयः। आहिताग्नेः पिण्डपितृयज्ञकल्पेन श्राद्धनिषेधार्थमिदं न तु साकल्यादेरपीत्यस्मद्गुरवः। कृष्णपक्षश्राद्धमन्यदिनेषु प्राप्तमाहिताग्नेर्दर्शे नियम्यत इति तु वयम्। दर्शेन पार्वणेन विना श्राद्धं न। तेन क्वापि वार्षिकादावेकोद्दिष्टं नेति हरिहरः। इति चतुर्दशी। आश्विनकृष्णामावस्यायां गजच्छायानिर्णयः। अमायां विशेषमाहापरार्के यमः–"हंसे करस्थिते या तु अमावस्या करान्विता। सा ज्ञेया कुञ्जरच्छाया इति बौधायनोऽब्रवीत्॥ वनस्पतिगते सोमे छाया या प्राङ्मुखी भवेत्। गजच्छाया च सा प्रोक्ता तस्यां श्राद्धं प्रकल्पयेत्॥ २॥" भारते-"अजेन सर्वलोहेन वर्षासु नियतव्रतः। हस्तिच्छायासु विधिवत् कर्णव्यजनवीजितम्॥" श्राद्धं दद्यादिति शेषः। आश्विनशुक्लप्रतिपदि दौहित्रश्राद्धनिर्णयः।

कथन है. लक्षणामें प्रमाणका भाव नहीं है, इससे पतित भी श्राद्ध करे और पतितका भी करना इस कथनसे गयादिके समान विशेष विधिके बलसे पतितोंका भी करना यह गौडोंका कथन है। सिद्धान्त तो यह है कि, समताको प्राप्त हुए (संन्यासी) इत्यादि वाक्यके वशसे जिनकी क्रिया हो चुकी हो उनका श्राद्ध करना औरोंका नहीं यह हम जानते हैं। जो मनुने यह लिखा है कि पितृयज्ञका होम लौकिकअग्निमें नहीं करे और अमावास्याके विना अग्निहोत्रीका श्राद्ध न करे। इस मनुके कथनमें पूर्वार्द्ध हेतु लिखा है इससे मेरे मतमें पृथ्वीचन्द्रोदयका कथन यथाश्रुत है, हमारे गुरुजीका तो यह कथन है कि अग्निहोत्रीको पिंडपितृयज्ञकी विधिसे श्राद्ध निषेधके निमित्त यह कथन है, संकल्पके निमित्त नहीं। हमारा तो यह कहना है कि, अग्निहोत्रीका कृष्णपक्षका श्राद्ध जो और दिनोंमें प्राप्त है वह अमावस्याको ही करना चाहिये, यह इस वाक्यसे नियम करते हैं। हरिहरका तो यह कहना है कि, दर्शपदसे पार्वणका ग्रहण है इससे अग्निहोत्रीको पार्वण ही करना, एकोद्दिष्ट वार्षिक आदि कभी भी न करने। इति चतुर्दशी॥ अपरार्कमें यमने आमावस्याको विशेष लिखा है कि, हस्तनक्षत्रके सूर्यमें जो हस्तनक्षत्रसंयुक्त अमावस्या है वह गजच्छाया जाननी यह बौधायनने लिखा है। वनस्पतिमें प्राप्त चन्द्रमामें जो छाया पूर्वमुखी हो वह गजच्छाया लिखी है उसमें श्राद्ध करना भारतमें लिखा है कि, अज और सर्वलोहसे वर्षाके दिनोंमें सावधान होकर गजच्छायामें विधिसे बीजनेसे वायु करके श्राद्ध दे। आश्विनशुक्ल प्रतिपदाको दौहित्र। मामाके जीवित होते भी आश्विनशुक्ल १ को मातामहका श्राद्ध

आश्विनशुक्लप्रतिपदि दौहित्रस्य मातामहश्राद्धमुक्तम् । हेमाद्रौ संग्रहे च—"जातमात्रोऽपि दौहित्रो विद्यमानेऽपि मातुले । कुर्यान्मातामहश्राद्धं प्रतिपद्याश्विने सिते॥" इति। इयं संगवव्यापिनी ग्राह्येति निर्णयदीपे उक्तम् । "प्रतिपद्याश्विने शुक्ले दौहित्रस्त्वेकपार्वणम् । श्राद्धं मातामहं कुर्यात्सपिता संगवे सदा ॥ जातमात्रोऽपि दौहित्रो जीवत्यपि च मातुले । प्रातःसंगवयोर्मध्ये आर्यस्य प्रतिपद्भवेत् ॥ २ ॥" इति वचनात्। अत्र समूलत्वं विमृश्यम्। इदं च मलमासे न कार्यम् । "स्पष्टमासविशेषाख्याविहितं वर्जयेन्मले।" इति निषेधात् । इदं च जीवत्पितृकेणैव कार्यमिति शिष्टाः। इदं च शिष्टाचारात्सापिंडकं कार्यमिति केचित् । पिंडरहितं तु युक्तं जीवत्पितृकस्य—"मुंडनं पिंडदानं च प्रेतकर्म च सर्वशः । न जीवत्पितृकः कुर्याद्गुर्विणीपतिरेव च ॥"इति दक्षेण पिण्डनिषेधात् आन्वष्टक्यवद्विशेषवचनाभावाच्चेति संक्षेपः ।इति श्रीकमलाकरभट्टकृते निर्णयसिन्धौ महालयनिर्णयः॥

अथ नवरात्रारंभस्तन्निर्णयः । अथाश्विनशुक्लप्रतिपदि नवरात्रारम्भस्तन्निर्णयः । तत्र भार्गवार्चनदीपिकायां देवीपुराणे सुमेधा उवाच—"शृणु राजन् प्रवक्ष्यामि चंडिकापूजनक्रमम्। आश्विनस्य सिते पक्षे प्रतिपत्सुशुभे दिने ॥" इत्युपक्रम्योक्तम्। 'शुद्धे तिथौ प्रकर्तव्यं प्रतिपच्चोर्ध्वगामिनी । आद्यास्तु नाडिकास्त्यक्त्वा षोडश द्वादशापि वा ॥ अपराह्णे च कर्तव्यं शुभसंततिकांक्षिभिः ॥ " इदं चापराह्णयो-

---

करे, यह संगवव्यापिनी लेनी, यह निर्णयदीपमें लिखा है। कारण कि यह कथन है कि, आश्विन शुक्ल १ प्रतिपदाको दौहित्र १ एक पार्वणश्राद्ध मातामहका संगव कालमें सदैव करे, उत्पन्न हुआ भी दौहित्र मामाके होते भी प्रातःकाल और संगवके मध्यमें प्रतिपदामें श्राद्ध करे, इसमें मूल नहीं मिलता, यह मलमासमें न करना चाहिये। कारण कि, यह निषेध है—जहां मासविशेषका नाम स्पष्ट हो उसको मलमासमें त्याग दे, इसको जीवत्पितृक ही करे।यह शिष्टोंका कथन और शिष्टोंके आचारसे यह पिण्डसहित करना । कोई यह कहते हैं कि, पिण्डरहित करना तो युक्त है। कारण कि, जीवत्पितृकको इस दक्षके वाक्यसे पिण्डका निषेध है और अन्वष्टका श्राद्धके तुल्य कोई विशेष वाक्य नहीं कि, मुण्डन, पिण्डदान और सम्पूर्ण प्रेतकर्मको जीवत्पितृक और गर्भिणीका पति न करे, यह संक्षपसे कहा है ।। इति श्रीकमलाकरभट्टकृते निर्णयसिन्धौ पं० ज्वालाप्रसादमिश्रकृतभाषाटीकायां महालयनिर्णयः । इसके पीछे आश्विनशुक्ल प्रतिपदाको नवरात्रका आरम्भ और उसका निर्णय कथन करते हैं—सोई भार्गवार्चनदीपिकामें देवीपुराणमें सुमेधाका कथन है कि, हे राजन्! सुनो चण्डिकाके पूजनका क्रम वर्णन करते हैं—आश्विनके शुक्लपक्षमें प्रतिपदा और शुभदिनमें यह प्रारम्भ करना चाहिये. प्रारम्भ करके लिखा है कि, शुद्धतिथिमें करना जब प्रतिपदा ऊर्ध्वगामिनी हो तो प्रथम सोलह और बारह घड़ियोंको छोड़ दे और शुद्ध सन्तानकी इच्छावालेको अपराह्णमें करनी चाहिये, यह

गिन्याः प्राशस्त्यं द्वितीयदिने प्रतिपदाभावे ज्ञेयम् । तथा तत्रैव देवीपुराणे डामरतंत्रे च देवीवचः–"अमायुक्ता न कर्त्तव्या प्रतिपत्पूजने मम । मुहूर्तमात्रा कर्तव्या द्वितीयादिर्गुणान्विता ॥ आद्याः षोडशनाडीस्तु लब्ध्वा यः कुरुते नरः । कलशस्थापनं तत्र ह्यरिष्टं जायते ध्रुवम् ॥ २ ॥ " मार्कंडेयदेवीपुराणयोः–"पूर्वविद्धा तु या शुक्ला भवेत्प्रतिपदाश्विनी । नवरात्रव्रतं तस्यां न कार्यं शुभमिच्छता देशभंगो भवेत्तत्र दुर्भिक्षं चोपजायते । नंदायां दर्शयुक्तायां यत्र स्यान्मम पूजनम् ॥२॥" इति । स्कांदेऽपि–"प्रतिपद्याश्विने मासि सा शुद्धा शुभदा भवेत् । भाद्रपश्चदर्शी कृष्णा तथा युक्ता न शस्यते ॥ विरुद्धफलदा सा हि पुत्रदारभयावहा॥"इति । तथा– "वर्जनीया प्रयत्नेन अमायुक्ता तु पार्थिव । द्वितीयादिगुणैर्युक्ता प्रतिपत्सर्वकामदा ॥" तथा देवीपुराणे–"यो मां पूजयते नित्यं द्वितीयादिगुणान्विताम् । प्रतिपच्छारदीं ज्ञात्वा सोऽश्नुते सुखमव्ययम् ॥ यदि कुर्यादमायुक्तां प्रतिपत्स्थापने मम । तस्य शापायुतं दत्त्वा भस्मशेषं करोम्यहम् ॥ आग्रहात्कुरुते यस्तु कलशस्थापनं मम । तस्य संपद्विनाशः स्याज्ज्येष्ठः पुत्रो विनश्यति ॥ अमायुक्ता न कर्तव्या प्रतिपच्चंडिकार्चने । धनार्थिभिर्विशेषेण वंशहानिश्च जायते ॥ न दर्शकलया युक्ता प्रति-

---

वाक्य उस प्रतिपदामें जानना जो सन्ध्या समय श्रेष्ठ हो और दूसरे दिन प्रतिपदा न हो। इस प्रकार वहां ही देवीपुराणमें डामरका वाक्य है कि, मेरे पूजनमें अमावस्यायुक्त प्रतिपदा न ग्रहण करनी और द्वितीया आदि गुणोंसे युक्त मुहूर्त्तमात्र भी ग्रहण करनी । जो मनुष्य प्रथम सोलह घडीमें कलशको स्थापन करता ह उसको अवश्य अरिष्ट होता है । मार्कण्डेय और देवीभागवतमें लिखा है कि, आश्विन शुद्धप्रतिपदा पूर्वविद्धामें शुभकी इच्छावाले मनुष्यको व्रत न करना चाहिये, अमावस्यासे युक्त नन्दामें जहां मेरी पूजा होती है वहां देशका भंग और दुर्भिक्ष होता है । स्कन्दपुराणमें भी लिखा है कि, आश्विनमासकी प्रतिपदा शुद्ध हो तो शुभ फलदायक होती ह और भाद्रपदकी अमावस्या प्रतिपदासे युक्त हो तो उत्तम नहीं । कारण कि, वह विपरीत फलकी दाता और पुत्र और स्त्रीको भयदायक होती है । इसी प्रकार कहा है कि, जो अमावस्यासे युक्त प्रतिपदा प्रयत्नसे छोड़ दे और द्वितीयाआदि गुणोंसे युक्त प्रतिपदामें जानकर पूजा करता है वह अविनाशी सुखको भोगता है । जो मनुष्य अमावस्यासे युक्त प्रतिपदाको मेरी पूजा करता है उसको मैं सहस्रों शाप देकर भस्म कर देती हूं, जो आग्रहपूर्वक मेरे कलशको स्थापन करता है उसकी सब सम्पदा नष्ट हो जाती है और ज्येष्ठपुत्रकी मृत्यु हो जाती है।चण्डिकाके पूजनमें अमावस्यासे युक्त प्रतिपदा धनके अर्थियोंने विशेषकर न करनी । कारण कि, वंशकी हानि भी होती है और द्रव्य भी नष्ट हो जाता है । चण्डिकाके पूजनमें अमा० (३०)

पच्चंडिकार्चने। उदये द्विमुहूर्तापि ग्राह्या सोदयदायिनी ॥" इति । देवीपुराणे- "या चाश्वयुजि मासे स्यात्प्रतिपद्भद्रयान्विता । शुक्ला ममार्चनं तस्यां शतयज्ञफल- प्रदम् ॥" रुद्रयामले-"अमायुक्ता सदा चैव प्रतिपन्निंदिता मता । तत्र चेत्स्था- पयेत्कुंभं दुर्भिक्षं जायते ध्रुवम् । प्रतिपत्सद्वितीया तु कुम्भारोपणकर्मणि ॥" इति । यद्यपि रुद्रयामलं डामरं च निर्मूलं तथाप्यविरोधात् प्रचाराच्च तद्वचनानि लिख्यन्ते तिथितत्त्वे देवीपुराणेऽपि-"प्रातरावाहयेद्देवीं प्रातरेव प्रवेशयेत् । प्रातः प्रातश्च सम्पूज्य प्रातरेव विसर्जयेत् ॥" तत्रैव-"शरत्काले महापूजा क्रियते या च वार्षिकी । सा कार्योदयगामिन्यां न तत्र तिथियुग्मता ॥" तथा "कुहूकाष्ठोपसं- युक्तां वर्जयेत्प्रतिपत्तिथिम् । राज्यनाशाय सा प्रोक्ता निंदिता चाश्वपूजने ॥" इति । एषु वचनेषु कलशस्थापनग्रहणात् तदेव प्रथमदिने निषिध्यते । न तूपवासादि । तस्य-'प्रतिपद्यप्यमावास्या' इति युग्मवाक्यात् । 'शुक्ला स्यात् प्रतिपत्तिथिः प्रथमतः' इति दीपिकोक्तेः । 'शुक्लपक्षे दर्शविद्धा' इति माधवोक्तेश्च । पूर्वदिने प्राप्तस्य बाधे मानाभावादिति केचित् । वस्तुतस्तु पूर्वोक्तवाक्येषु चण्डिकार्चन- पूजाग्रहणादुपवासादेश्चाङ्गत्वात् प्रधानदेवीपूजादावपि परेति युक्तम् । कलश-

---

की कलासे भी युक्त प्रतिपदा न ग्रहण करनी और उदयकालमें दो मुहूर्त भी हो तो ग्रहण करनी। देवीपुराणमें लिखा है कि, द्वितीयासे युक्त आश्विनशुक्ल प्रतिपदामें जो मेरा पूजन करता है उसको सौ १०० यज्ञका फल प्राप्त होता है। रुद्रयामलमें लिखा है कि, अमावास्यासे युक्त प्रतिपदा सदा निंदित मानी है, उसीमें घटका स्थापन करे तो अवश्य दुर्भिक्ष होता है। द्वितीयासे युक्त प्रतिपदा घटस्थापनमें उत्तम है। यद्यपि रुद्रयामल और डामर ये दोनों ग्रन्थ निर्मूल हैं तथापि अविरोधसे और प्रचारसे उनके वाक्य लिखते हैं। तिथितत्त्व और देवीभागवतमें लिखा है कि, प्रातःकाल देवीका आवाहन करे और प्रातःकाल ही प्रवेश करे और प्रभात ही पूजन करके विसर्जन करे। वहां ही कहा है कि, शरत्कालमें जो वार्षिकी महापूजा की जाती है वह उदयकालकी तिथिमें करनी चाहिये। उसमें दो तिथिके योगका नियम नहीं है। कहा भी है कि, अमावस्याकी एक घड़ीसे युक्त भी प्रतिपदा तिथिको त्याग दे। कारण कि, वह राज्यनाशके निमित्त कथन की है इससे अश्वोंके पूजनमें निन्दित है इन वाक्योंमें कलश स्थापनके ग्रहणसे घटस्थापनका ही प्रथम दिन निषेध है, व्रत आदिका नहीं। कारण कि, व्रतकी प्रतिपदामें भी अमावस्या हो तो इस युग्मवाक्यसे और व्रतमें शुक्लकी पहली तिथि होती है यह दीपिकाके कथनसे है और शुक्लपक्षमें अमावस्यास विद्धा प्रतिपदा ग्रहण करनी, इस माधवके कथनसे पूर्वदिनमें प्राप्त उस व्रतके न करनेमें प्रमाण नहीं है यह कोई लिखते हैं। सिद्धान्त तो यह है कि, पूर्वोक्त वाक्योंमें चण्डिकाके पूजनका ग्रहण है और व्रत भी पूजनका अंग है, इससे प्रधान देवीपूजा आदिमें भी अगली लेनी यह युक्त है, घटके स्थापनका ग्रहण तो उपलक्षण है.

स्थापनग्रहणं तूपलक्षणम् । अत एव देवलः-"व्रतोपवासनियमे घटिकैकापि या भवेत् । सा तिथिस्तद्दिने पूज्या विपरीता तु पैतृके ॥" इति । अत्र घटिका मुहूर्त्त इति गौडाः । यदा तु पूर्वदिने सम्पूर्णा शुद्धा च भूत्वा परदिने वर्धते तदा सम्पूर्णत्वादमायोगाभावाच्च पूर्वैव । यानि च द्वितीयायोगनिषेधकानि वचनानि केचित् पठन्ति तान्यपि शुद्धाधिकानिषेधपराणि । परदिने प्रतिपदोऽत्यन्तासत्त्वे तु दर्शयुतापि पूर्वैव ग्राह्या । तदाह लल्लः-'तिथिः शरीरं तिथिरेव कारणं तिथिः प्रमाणं तिथिरेव साधनम् ।' इति । यानि तु-'अमायुक्ता प्रकर्तव्या' इत्यादीनि नृसिंहप्रसादे वचनानि तानि समूलत्वे सत्येतद्विषयाणि । अत्रेदं तत्त्वम् । पूर्वोक्तवाक्यानां सर्वेषां हेमाद्र्याद्यलिखितत्वेन निर्मूलत्वात्तैश्चान्यानिर्णयस्यानुक्तेः सामान्यनिर्णयात् । पूर्ववत् प्राप्तावपि गौडनिबन्धेषु विशेषनिर्णयादौदयिकी ग्राह्या । तत्रापि 'घटिका' इत्यस्य द्विमुहूर्त्तस्तुतित्वोक्तेर्द्विमुहूर्ता ग्राह्या । 'उदिते दैवतं भानौ' इत्यत्र 'द्विमुहूर्ता त्रिरह्नश्च' इति औदयिक्या द्विमुहूर्तत्वनियमात् तेन 'उदये द्विमुहूर्तापि' इत्याद्यनुसारेणापि 'मुहूर्तमात्रा कर्तव्या' इति द्विमुहूर्तस्तुतिः अन्यथा द्विमुहूर्तविधिवैयर्थ्यात् । केचित्तु-'मुहूर्तमात्रा' इति वचनात्ततो न्यूनत्वे परा नेत्याहुः । गौडा

इसीसे देवलने लिखा है कि, व्रत और उपवासके नियममें जो एक घडी भी हो वह तिथि उस दिन पूजने योग्य है और इससे विपरीत पितृकर्ममें पूज्य है, यह घटिकाके मुहूर्त्तसे ग्रहण करना यह गौडोंका कथन है। जब प्रथम दिन सम्पूर्ण और शुद्ध होकर पर दिनमें प्रतिपदा बढ़ जाय तब सम्पूर्ण होनेसे अमावस्यायोगके न होनेसे पहली ही ग्रहण करनी, और जो कोई द्वितीया योगके निषेध करनेवाले वाक्योंको पढ़ते हैं वे भी शुद्धासे अधिकके निषेध करनेवाले हैं। यदि दूसरे दिनमें प्रतिपदा सर्वथा न हो तो अमावस्यासे युक्त प्रथम ही लेनी। सोई लल्लने लिखा है कि, शरीर, कारण, साधन, प्रमाण तिथि ही है और जो अमावस्यासे युक्त प्रतिपदा करनी इत्यादि नृसिंहप्रसादके वाक्य हैं वे भी समूल हों तो उसी प्रतिपदाके विषयमें हैं। यहां यह तत्त्व है कि, पूर्वमें कहे सब वाक्योंको हेमाद्रिआदिमें न लिखनेसे निर्मूल होनेसे और उन्होंने भी और निर्णय नहीं करा इससे सामान्य निर्णयसे पहलेके समान प्राप्ति हो तो भी गौड ग्रन्थोंमें विशेष निर्णयसे उदयकालकी ग्रहण करनी और वहां भी एक घड़ी हो उसे द्विमुहूर्त्त कहना चाहिये। यह स्तुतिके निमित्त है, इससे द्विमुहूर्त ग्रहण करनी। कारण कि, सूर्यके उदयपर देवकर्म करना, यहां दिनके दो मुहूर्त लेनी इससे दो मुहूर्त्तका नियम है इसमें उदयमें दो मुहूर्त्त लेनी इसका भी अनुसार है, मुहूर्तमात्र करनी यह तो दो मुहूर्त्तकी प्रशंसा है, अन्यथा दो मुहूर्त्तकी विधि व्यर्थ पडेगी। कोई तो यह कहते हैं कि, मुहूर्त्तमात्र हो इस कथनसे इससे न्यून हो तो अगली न करनी, गौडोंका भी यह कथन है। यह

अप्येवम्। अत्र देवीपूजैव प्रधानम्। उपवासादि त्वंगम्। "अष्टम्यां च नवम्यां च जगन्मातरमम्बिकाम्। पूजयित्वाश्विने मासि विशोको जायते नरः॥" इति हेमाद्रौ भविष्ये तस्या एव फलसंबन्धात्। 'नवमीतिथिपर्यंतं वृद्ध्या पूजाजपादिकम्।' इति तत्रैव देवीपुराणात्। 'शरत्काले महापूजा क्रियते या च वार्षिकी।' इति मार्कण्डेयपुराणाच्च। पूर्ववचनादष्टमीपूजैव, प्रधानमन्यत्सर्वमंगमिति गौडाः। एकाहपक्षोऽपि कालिकापुराणे-"यस्त्वेकस्यामथाष्टम्यां नवम्यामथ साधकः। पूजयेद्वरदां देवीं महाविभवविस्तरैः॥" इति। तत्त्वं तु-राजसूयेऽन्ययागैः समप्रधानायाः सहिताया अप्यवेष्टेः एतयान्नाद्यकामं याजयेदित्येकत्वान्मध्ये विधानाच्च यथा फलार्थो बहिः प्रयोगस्तथा नवरात्रमध्यस्थाया अष्टम्या नवम्या वा फलार्थः पृथक् प्रयोगः। रूपनारायणधृतदेवीपुराणे-"महानवम्यां पूजेयं सर्वकामप्रदायिका। सर्वेषु वत्स वर्णेषु तव भक्त्या प्रकीर्तिता॥ कृत्वाप्नोति यशोराज्यपुत्रायुर्धनसंपदः॥" सा च काम्या नित्या च। "एवमन्यैरपि तथा देव्याः कार्यं प्रपूजनम्। विभूतिमतुलां लब्धुं चतुर्वर्गप्रदायिकाम्॥" इति। "यो मोहादथवालस्याद्देवीं दुर्गां महोत्सवे। न पूजयति दम्भाद्वा द्वेषाद्वाप्यत्र भैरव। क्रुद्धा भगवती तस्य कामानिष्टान्निहन्ति वै॥" इति कालिकापुराणे फलनिन्दाश्रुतेः।

देवीकी पूजा ही प्रधान है, व्रत आदि उसके अंग हैं, कारण कि, हेमाद्रिमें इस भविष्यपुराणके कथनमें पूजाका ही सम्बन्ध है कि, अष्टमी वा नवमीमें जगत्की माता अंबिकाका पूजन करके मनुष्य शोकसे रहित होता है। देवी और मार्कण्डेय पुराणमें लिखा है कि, नवमी तिथि पर्यंत वृद्धिसे पूजा और जप आदि करना, शरत्कालमें जो मेरी वार्षिकपूजा की जाती है प्रथमके वाक्यसे अष्टमी वा नवमीमें पूजा करना ही प्रधान है और सब अंग हैं, यह गौडोंका कथन है। एक दिनकी पूजाका पक्ष भी कालिकापुराणमें लिखा है। साधक मनुष्य अष्टमी वा नवमीको वरकी दात्री देवीका अपने धनके अनुसार पूजन करे। सिद्धान्त तो यह है कि, जैसे राजसूययज्ञमें और यज्ञोंके तुल्य और प्रधानअवेष्टि यज्ञका अन्नकी इच्छावाला अवेष्टियज्ञ करे, इस वाक्यसे एकवाक्यता और मध्यमें विधि होनेसे फलके निमित्त प्रयोग है। वैसे ही नवरात्रमें अष्टमी नवमीका फलके निमित्त पृथक् प्रयोग है। रूपनारायणमें लिखा देवीपुराणका कथन है कि, हे पुत्र! सब कामनाओंकी दायक यह पूजा भक्तिसे तुमसे वर्णन की है इसको करके यश, राज्य, पुत्र, आयु, धन, सम्पदाको प्राप्त होता है। यह व्रत काम्य और नित्य जानना। कारण कि, कालिकापुराणमें इन वाक्योंके फल और निन्दा दोनों सुनी हैं कि, इसी प्रकार और मनुष्य भी अतुलधनके लिये धर्म, अर्थ, काम, मोक्षकी दाता देवीके पूजनको नवरात्रमें करे। जो मनुष्य मोह, आलस्य, दम्भ, द्वेषसे महोत्सवमें देवी दुर्गाका पूजन नहीं करता तो उसपर क्रुद्ध हुई भगवती उसके मनोवांछित कार्योंको नष्ट करती है। तिथितत्त्वमें देवीपुराणका कथन है कि, वर्षवर्षमें देवीका

'वर्षे वर्षे विधातव्यं स्थापनं च विसर्जनम् ।' इति तिथितत्त्वे देवीपुराणाच्च । तत्रोपवासादिनिर्णयः । अत्रोपवासादिकमुक्तं हेमाद्रौ भविष्ये-"एवं च विंध्यवासिन्यां नवरात्रोपवासतः । एकभक्तेन नक्तेन तथैवायाचितेन च ॥ पूजनीया जनैर्देवी स्थाने स्थाने पुरे पुरे ॥ गृहे गृहे शक्तिपरैर्ग्रामे ग्रामे वने वने ॥ स्नातैः प्रमुदितैर्हृष्टैर्ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्नृपैः । वैश्यैः शूद्रैर्भक्तियुक्तैर्म्लेच्छैरन्यैश्च मानवैः ॥ ३ ॥ " इति । यत्तु रूपनारायणीये भविष्ये-'एवं नानाम्लेच्छगणैः पूज्यते सर्वदस्युभिः ।' इति । तत्तामसपूजापरम् । 'विना मन्त्रैस्तामसी स्यात्किरातानां तु संमता ।' इति तत्रैवोक्तेः । मदनरत्ने देवीपुराणेऽपि-"कन्यासंस्थे रवौ शक्र शुक्लामारभ्य नन्दिकाम् । अयाची ह्यथवैकाशी नक्ताशी वाथवाम्बुदः ॥ भूमौ शयीत चामन्त्र्य कुमारीर्भोजयेन्मुदा । वस्त्रालंकारदानैश्च सन्तोष्याः प्रतिवासरम् ॥ बलिं च प्रत्यहं दद्यादोदनं मांसमाषवत् । त्रिकालं पूजयेद्देवीं जपस्तोत्रपरायणः ॥ ३ ॥ " इति नन्दिका प्रतिपत्तिथिः इति मैथिलाः । षष्ठीति गौडाः । रात्रौ पूजानिर्णयः । तच्च पूजनं रात्रौ कार्यम् । " आश्विने मासि मेघान्ते महिषासुरमर्दिनीम् । निशासु पूजयेद्भक्त्या सोपावासादिकः क्रमात् ॥" इति देवीपुराणात् । संग्रहेऽपि-"आश्विने मासि मेघान्ते प्रतिपद्या तिथिर्भवेत् । तस्यां नक्तं प्रकुर्वीत रात्रौ देवीं च पूजयेत् ॥

स्थापन और विसर्जन करे । इसमें व्रत आदि भी हेमाद्रिमें भविष्यपुराणके वाक्यसे लिखे हैं कि, इसी प्रकार विन्ध्यवासिनीमें नवरात्रके व्रतसे एक वार भोजन रात्रिभोजन अथवा अयाचितभोजनसे स्थान स्थान, पुर पुर, घर घर, ग्राम ग्राम, वन वनमें शक्तिमान् प्रसन्न और आनन्द हुए ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, शूद्र और भक्तिसे संयुक्त म्लेच्छ और दूसरे भी मनुष्य देवीका पूजन करें । जो रूपनारायणीयग्रन्थमें भविष्यपुराणका वाक्य है कि, इसी प्रकार देवीको सम्पूर्ण म्लेच्छोंके गण और सब चौर पूजते हैं । वह वाक्य तामसीपूजाके विषय जानना । कारण कि, वहां ही लिखा है कि, मंत्रोंके विना तामसी पूजा होती है, वह भीलोंके योग्य है । मदनरत्नमें देवीपुराणका वाक्य है कि, हे इन्द्र ! कन्याके सूर्यमें शुक्लपक्षकी नन्दासे लेकर विना मांगे प्राप्त हुए अन्नको भोजन कर एकवार भोजन, रात्रिभोजन अथवा जलपान करे, भूमिपर सोवे, न्योतकर कुमारियोंको आनन्दसे भोजन करावे और उनको वस्त्र, अलंकार देकर प्रतिदिन प्रसन्न करना चाहिये और भात, उर्द, मांसकी प्रतिदिन बलि दान करे, जप और स्तुति करता हुआ त्रिकाल देवीका पूजन करे । इन वाक्योंसे नन्दासे प्रतिपदा मैथिल ग्रहण करते हैं और गौड षष्ठी । यह पूजन रात्रिमें करना । कारण कि, देवीपुराणमें लिखा है कि, आश्विनमास और वर्षाके अन्तमें महिषासुरमर्दिनी देवीका व्रत करके भक्तिसे रात्रिमें पूजन करे । संग्रहमें भी लिखा है कि, आश्विनमास और वर्षाके पीछे जो प्रतिपदा तिथि है उसमें रात्रिव्रत करे और रात्रिमें देवीकी पूजा करे । कारण कि, देवी

रात्रिरूपा यतो देवी दिवारूपो महेश्वरः। रात्रिव्रतमिदं देवि सर्वपापप्रणाशनम् ॥ सर्वकामप्रदं नृणां सर्वशत्रुनिबर्हणम्। रात्रिव्रतमिदं तस्य रात्रौ कर्तव्यतेष्यते ॥ नक्तव्रतमिदं यस्मादन्यथा नरके गतिः।" इत्यादिवचनाच्च रात्रिव्रतत्वमेवाभिप्रेत्य माधवेनोक्तम्–तस्य नक्तव्रतत्वादिति। न तु रात्रिभोजनात्। ननु–"मासि चाश्वयुजे शुक्ले नवरात्रे विशेषतः। संपूज्य नवदुर्गां च नक्तं कुर्यात्समाहितः ॥ नवरात्राभिधं कर्म नक्तव्रतमिदं स्मृतम्। आरंभे नवरात्रस्य" इत्यादिस्कान्दात् माधवोक्तेश्च नक्तमेव प्रधानमिति चेन्न। 'नवरात्रोपवासतः' इत्यादेरनुपपत्तेः। तेन पाक्षिकनक्तानुवादोऽयम्। 'नित्यानित्यसंयोगविरोधात्। न ह्यग्निहोत्रे दशमपक्षे प्राप्तस्य दध्ना जुहोतीत्यस्येंद्रियकामहोमेऽनुवादो घटते। नित्यवदनुवादायोगादि-त्युक्तं वार्तिके तथात्रापि। तेनात्र तद्वदेव गुणात् फलमिति ज्ञेयम्। ननु रात्रेः कर्मकालत्वे तद्व्यापिनी पूर्वैव प्रतिपत् प्राप्नुयात्। मैवं न्यायतः प्राप्तावपि पूर्वोक्तवचनैर्बाधात्। यथा पूर्वेद्युः कर्मकालव्यापिनीमपि त्यक्त्वा स्वल्पापि परैव रामनवमीति प्रागुक्तम्। यथा वा निशीथे सतीमपि पूर्वां जन्माष्टमीं त्यक्त्वा रोहिणीयुक्ता परैवेति माधवेनोक्तं तथात्रापि। वस्तुतस्तु रात्रेः कर्मकालत्ववचसां हेमाद्र्याद्य-

---

रात्रिरूप है और महेश्वर दिनरूप है। हे देवी! यह रात्रिका व्रत मनुष्योंके सब शत्रुओंको और सब पापोंको नष्ट करता है और सब कामनाओंको प्रदान करता है, जिससे यह रात्रिव्रत है इससे यह रात्रिमें करे, यदि न करे तो नरकमें पडे, रात्रिव्रतको ही जानकर माधवने यह रात्रिव्रत लिखा है कुछ रात्रिभोजनसे नहीं। यदि कोई शंका करे कि, आश्विन मासके शुक्लपक्षमें विशेषकर नवरात्रमें नवदुर्गाकी पूजा करके सावधानीसे रात्रिव्रत करे, यह नवरात्रका कर्म नवरात्रके प्रारम्भमें नक्तव्रत माना है,इस स्कन्दपुराणके वाक्यसे और माधवके कथनसे रात्रिही प्रधान है व्रत नहीं सो ठीक नहीं। कारण कि, नवरात्रका व्रत करे इत्यादि वाक्यसे असंगत हो जायँगे। यदि कोई कहे कि, पाक्षिक (कभी) नक्तव्रतका यह अनुवाद है, सो उचित नहीं। नित्य और अनित्यके संयोगका विरोध है जसे अग्निहोत्रके दशमपक्षमें (दश दिनका) दहीसे भोजन करके इन्द्रियोंकी इच्छावाला हवन करे इसका अनुवाद नहीं घटता है। सोई वार्तिकम लिखा है कि, नित्यके तुल्य अनुवादका योग नहीं है इसी प्रकार यहां भी जानना, इससे यहां उसी प्रकार गुणसे फल होता है, यह जानना। यदि कोई शंका करे कि, रात्रिही यदि कर्मका समय है तो रात्रिव्यापिनी ही प्रतिपदा प्राप्त होगी सो उचित नहीं। कारण कि, न्यायसे प्राप्त भी है तो भी पूर्वोक्तवाक्योंसे इसका बाध होता है। जैसे प्रथम दिन कर्मकालव्यापिनीको भी छोडकर थोडी भी पहली ही नवमी पहिले कही है और जैसे अर्धरात्रव्यापिनी जन्माष्टमीको छोडकर रोहिणीसे युक्त अगली ही माधवने लिखी है वैसे ही यहां भी जानना चाहिये। सिद्धान्त तो यह है कि, रात्रिको कर्म कालके वाक्य

लिखनात् । समूलत्वं विमृश्यमेव । 'त्रिकालं पूजयेत्' इत्यादिपूर्वविरोधाच्च माधवोक्तिस्तु पाक्षिकनक्तानुवाद इत्युक्तम् । तस्मात्सर्वपक्षेषु परैव प्रतिपदिति सिद्धम् । अत्र केचिन्नवरात्रशब्दो नवाहोरात्रपरः "वृद्धौ समाप्तिरष्टम्यां ह्रासेऽमाप्रतिपन्निशि । प्रारम्भो नवचण्ड्यास्तु नवरात्रमतोऽर्थवत् ॥" इति देवीपुराणादित्याहुः । तन्न । अतिह्रासवृद्ध्योर्न्यूनाधिकत्वापत्तेः । अत्र मूलाभावाच्च तेन तिथिवाच्येवायम् । तदुक्तं—"तिथिवृद्धौ तिथिह्रासे नवरात्रमपार्थकम् । अष्टरात्रे न दोषोऽयं नवरात्रतिथिक्षये ॥" इति । सच नवरात्रशब्दः क्वचिल्लक्षणया कर्मवाची । यथा—'प्रारम्भो नवरात्रस्य' इत्यत्रेति दिक् । प्रतिपदि च वैधृत्यादियोगनिषेधो भार्गवार्चनदीपिकायां देवीपुराणे—"त्वाष्ट्रवैधृतियुक्ता चेत् प्रतिपच्चण्डिकार्चने । तयोरन्ते विधातव्यं कलशारोपणं गृह ॥" इति । चित्रावैधृतियुक्तापि द्वितीयायुक्ता चेत्सैव ग्राह्येत्युक्तम् । दुर्गोत्सवे—"भद्रान्विता चेत्प्रतिपत्तु लभ्यते विरुद्धयोगैरपि सङ्गता सती । सैवापराह्णे विबुधैर्विधेया श्रीपुत्रराज्यादिविवृद्धिहेतुः ॥" इति । यदा तु वैधृत्यादिपरिहारेण प्रतिपन्न लभ्यते तदोक्तं तत्रैव कात्यायनेन—"प्रतिपद्याश्विने मासि भवेद्वैधृतिचित्रयोः । आद्यपादौ परित्यज्य प्रारभेन्नवरात्रकम् ॥" इति ।

हेमाद्रि आदिमें नहीं लिखे इससे उनका मूल खोजना चाहिये । और त्रिकाल पूजा करे इत्यादि पूर्वोक्तवाक्योंसे इसका विरोध भी आता है । माधवका कथन तो पाक्षिक रात्रिका अनुवाद है यह प्रथम कह आये हैं इससे सब पक्षोंमें पहली ही प्रतिपदा ग्रहण करनी यह सिद्ध हुआ । इसमें कोई इस देवीपुराणके वाक्यसे यह कहते हैं कि, यहां नवरात्रशब्द नौरातादिनका कथन करता है । कोई तिथि बढ़जाय तो अष्टमीको व्रतकी पूर्ति करे और घट जाय तो अमावस्याको रात्रिमें प्रतिपदाके समय नवचंडीका प्रारम्भ करे, इसीसे नवरात्रशब्द सार्थक है सो उचित नहीं । कारण कि, अत्यन्त घटनेसे वा बढ़नेसे न्यूनता प्राप्त हो जायगी और इस वाक्यमें कोई मूल भी नहीं, इससे नव तिथिके कहनेवाला यह नवरात्र शब्द है सोई लिखा है कि, तिथिकी वृद्धि वा घटनेमें नवरात्रशब्दका कुछ अर्थ नहीं । इससे नवरात्र तिथिके क्षयमें आठ तिथिका दोष नहीं, वह नवरात्रशब्द लक्षणासे कर्मका कथन करता है । जैसे नवरात्रका प्रारम्भ करे यहां है, यही मार्ग है । प्रतिपदामें वैधृति आदि योगका निषेध भार्गवार्चनदीपिकामें देवीपुराणके वाक्यसे लिखा है कि, चण्डिकाके पूजनमें चित्रा और वैधृतिसे युक्त प्रतिपदा हो तो उनके उपरान्तमें घटस्थापन करे । चित्रा वैधृतिसे युक्त भी, द्वितीयासहित हो तो वही ग्रहण करनी । यह दुर्गोत्सवमें लिखा है कि, विरुद्ध योगोंसे भी युक्त द्वितीयासे युक्त प्रतिपदा मिल जाय तो बुद्धिमान्को लक्ष्मी,पुत्र,राज्य आदिके बढानेवाली है उसको ही अपराह्णमें करना चाहिये । जब वैधृति आदिके विना प्रतिपदा न प्राप्त हो उस समय वहां ही कात्यायनने लिखा है कि, आश्विनमासकी प्रतिपदाको वैधृति, चित्रा हो तो आदिके दो चरण छोड़कर नवरात्रका आरम्भ करे,

भविष्येऽपि–" चित्रावैधृतिसम्पूर्णा प्रतिपच्चेद्भवेन्नृप । त्याज्या ह्यंशास्त्रयस्त्वाद्यास्तु-रीयांशे तु पूजनम् ॥" इति । रुद्रयामलेऽपि–"वैधृतौ पुत्रनाशः स्याच्चित्रायां धन-नाशनम् । तस्मान्न स्थापयेत्कुंभं चित्रायां वैधृतौ तथा ॥ सम्पूर्णा प्रतिपद्देव चित्रायुक्ता यदा भवेत् । वैधृत्या वापि युक्ता स्यात्तदा मध्यंदिने रवौ ॥ अभिजित्तु मुहूर्ते यत्तत्र स्थापनमिष्यते ॥ ३ ॥" इति चित्रा-दिनिषेधे मूलं चिन्त्यम् । रात्रौ कलशस्थापननिषेधनिर्णयः । इदं कलशस्थापनं रात्रौ न कार्यम् ' न रात्रौ स्थापनं कार्यं न च कुम्भाभिषेचनम् ' इति मात्स्योक्तेः । " भास्करोदयमारभ्य यावत्तु दश नाडिकाः।प्रातःकाल इति प्रोक्तः स्थापनारोप-णादिषु ॥" इति विष्णुधर्मोक्तेश्च । रुद्रयामले—"स्नानं माङ्गलिकं कृत्वा ततो देवीं प्रपूजयेत् । शुभाभिर्मृत्तिकाभिश्च पूर्वं कृत्वा तु वेदिकाम् ॥ यवान्वै वापयेत्तत्र गोधूमैश्चापि संयुतान् । तत्र संस्थापयेत्कुंभं विधिना मन्त्रपूर्वकम् ॥ सौवर्णं राजतं वापि ताम्रं मृन्मयजं तु वा ॥ ३ ॥ " इति । अथ पूजाविधिनिर्णयः । स च जय-न्तीमन्त्रेण नवाक्षरेण कार्यः । तदुक्तं दुर्गाभक्तितरङ्गिण्यां देवीपुराणे—'कुर्याद्दे-व्यास्तु मन्त्रेण पूजां क्षीरघृतादिभिः ।' इत्युक्त्वा—"जयन्ती मङ्गला काली भद्र-काली कपालिनी । दुर्गा क्षमा शिवा धात्री स्वधा स्वाहा नमोऽस्तु ते ॥ अनेनैव तु मन्त्रेण जपहोमौ तु कारयेत् ॥ " इति । " ॐ दुर्गे दुर्गे रक्षिणि स्वाहा" इति नवा-

---

भविष्यपुराणमें भी लिखा है कि, हे राजन्! चित्रा वैधृति पूर्ण प्रतिपदा हो तो आदिके तीन अंशको छोडकर चौथे अंशमें पूजन करे । रुद्रयामलमें भी कहा है कि, वैधृतिमें पुत्रका नाश, चित्रामें धनका क्षय होता है इससे चित्रा और वैधृतिमें घटका स्थापन न करे इसी प्रकार यदि संपूर्ण प्रतिपदा ही चित्रा वा वैधृतिसे युक्त हो तो मध्याह्नमें अभिजित् मुहूर्त्तमें घटस्थापन करना श्रेष्ठ है, चित्रा आदिके निषेधमें प्रमाण नहीं है । यह कलशका स्थापन रात्रिमें न करे। कारण कि,मत्स्यपुराणमें लिखा है कि, रात्रिमें घटका स्थापन और पूजन न करे। सूर्योदयसे १० घडीतक स्थापन और प्रारंभमें प्रातःकालमें ही लिखा है यह विष्णुधर्ममें कहा है, रुद्रयामलमें कहा है कि, मांगलिक स्नान करके देवीकी पूजा करे, पहले शुभ मिट्टीसे वेदी निर्माण करे, वहां गेहूंसे मिले यव बोवे, वहां मन्त्रोंसे विधिपूर्वक घटका स्थापन करे, वह घट सुवर्ण, चांदी, तॉंबा वा मृत्तिकाका होना चाहिये । वह जयन्ती मन्त्रसे वा नवाक्षरमन्त्रसे करनी चाहिये । सोई दुर्गाभक्तितरंगिणीमें देवीपुराणके वाक्यसे लिखा है कि, देवीके मन्त्रसे दूध वा घृत आदिसे देवीकी पूजा करे यह कहकर इस मन्त्रसे जप और होम करे कि, जयन्ती, मंगला, काली, भद्रकाली, कपालिनी, दुर्गा, क्षमा, धात्री, स्वधा, स्वाहारूपा आपको नमस्कार है । "ॐ दुर्गेदुर्गेरक्षिणि स्वाहा" यह नव अक्षरोंका

क्षरः । तत्र प्रतिपाद् प्रातरभ्यङ्गं कृत्वा । देशकालौ सङ्कीर्त्य ममेह जन्मनि दुर्गाप्रीतिद्वारा सर्वापच्छान्तिपूर्वकदीर्घायुर्विपुलधनपुत्रपौत्राद्यनवच्छिन्नसन्ततिवृद्धिस्थिरलक्ष्मीकीर्तिलाभशत्रुपराजयसदभीष्टसिद्ध्यर्थं शारदनवरात्रप्रतिपादि विहितकलशस्थापनदुर्गापूजाकुमारीपूजादि करिष्ये " इति सङ्कल्प्य । 'मही द्यौः' इति भूमिं स्पृष्ट्वा । 'ओषधयः सम्' इति यवान्निक्षिप्य । 'आकलशेषु' इति कुम्भं संस्थाप्य । 'इमं मे गङ्गे' इति जलेनापूर्य, 'गन्धद्वाराम्' इति गन्धम्, 'या ओषधीः' इति सर्वौषधीः 'काण्डात् काण्डात्' इति दूर्वाः, 'अश्वत्थे' इति पञ्चपल्लवान् ' स्योना पृथिवि' इति सप्तमृदः, याः फलिनीः' इति फलं, 'सहिरत्नानि' इति पञ्च रत्नानि, हिरण्यं क्षिप्त्वा । 'युवा सुवासाः' इति वस्त्रेणावेष्ट्य । ' पूर्णादर्वि' इति पूर्णपात्रं निधाय तत्र वरुणं सम्पूज्य जीर्णायां नूतनायां वा प्रतिमायां दुर्गामावाह्य पूजयेत् । तद्यथा । पूर्वोक्तं मन्त्रमुक्त्वा– 'आगच्छ वरदे देवि दैत्यदर्पनिषूदनि । पूजां गृहाण सुमुखि नमस्ते शंकरप्रिये । सर्वतीर्थमयं वारि सर्वदेवसमन्वितम् । इमं घटं समागच्छ तिष्ठ देवगणैः सह । दुर्गे देवि समागच्छ सान्निध्यमिह कल्पय । बलिं पूजां गृहाण त्वमष्टाभिः

मंत्र है तथा प्रतिपदाके दिन अभ्यंगपूर्वक स्नान करके और देश और समयका संकीर्त्तन (संकल्प) करे कि मेरे इस जन्ममें दुर्गाकी प्रीतिसे सम्पूर्ण आपत्तियोंकी शान्ति हो, दीर्घआयु, अवस्था, विपुल धन, पुत्र पात्र आदिकी निरन्तर संतानकी वृद्धि, स्थिरलक्ष्मी, कीर्त्तिका लाभ, शत्रुका पराजय, श्रेष्ठ अभीष्टकी सिद्धिके निमित्त शरत्कालके नवरात्रोंकी प्रतिपदाको कहा घटस्थापन, दुर्गापूजा और कुमारीपूजाआदि करता हूं इस प्रकार संकल्प करे। महीद्यौः० इस मंत्रसे भूमिको स्पर्श करे, ओषधयः सं० इस मन्त्रसे यव बखेरकर, आकलशेषु० इस मन्त्रसे घटस्थापन करके, इमंमेगंगे० इस मंत्रसे घटको जलसे पूर्ण करके, गन्धद्वारां० इस मंत्रसे गंध, या ओषधीः० इस मंत्रसे सर्वौषधी, काण्डात् काण्डात्० इस मंत्रसे दूर्वा, अश्वत्थे० इस मंत्रसे पंचपल्लव, स्योनापृथिवी० इस मन्त्रसे सात स्थानोंकी मट्टी, याः फलिनी० इस मन्त्रसे फल, सहिरत्नानि० इस मंत्रसे पंचरत्न और सोना घडेमें डालकर, और युवासुवासाः० इस मन्त्रसे वस्त्रसे लपेटकर पूर्णादर्वि० इस मन्त्रसे घडेके ऊपर पूर्णपात्र रखकर इस घटको वरुणकी पूजा करके पुरानी वा नवीन प्रतिमामें दुर्गाका आवाहन करे। उसका प्रकार यह ह कि, पूर्वोक्त मन्त्रको उच्चारण कर इस प्रकार आवाहन करे कि, हे वरदायक ! दैत्योंके अभिमान खण्डन करनेवाली तुम आओ और पूजाको ग्रहण करो। हे सुमुखि ! हे शंकरकी प्रिया ! तुमको प्रणाम है, सब तीर्थोंका इसमें जल है और सब देवता हैं, सब देवताओंके गणोंसहित तुम इसमें आकर टिको। हे देवि दुर्गे ! तुम इसमें आओ और आठों शक्तियोंसहित बलि ग्रहण करो। इस प्रकार